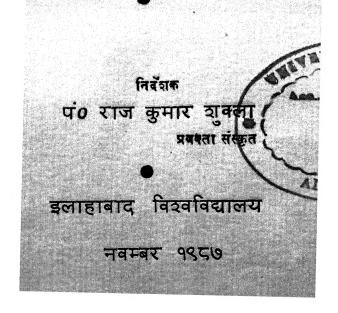
कवि उमापति द्विवेदी विश्वित पारिणातहरण महाकाव्य का साहित्यिक अध्ययन

A Literary Study of Parijatharan Maha Kavya Written by Kavi Umapati Diwedy

(इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डिo फिल उपाधि हेतु प्रस्तुत) शोध प्रबन्ध

> प्रस्तुत कर्त्री मंजरी वर्मा एम॰ ए॰ संस्कृत



 "भाषातु मुख्या मधुरा दिव्या गीवाण भारती शवच्य संस्कृत नाम देवी वागन्वाख्याता महर्षिभ" इत्यादि । विस्दावित्यों से प्रशंसित इस सुरभारती के साहित्य के प्रति मानवमात्र का सहज अनुराग होना स्वाभाविक ही है । संस्कृत साहित्य अत्यन्त विशालकाय शवं वैभवपूर्ण है । बाल्यकाल से ही मेरी संस्कृत के प्रति स्वाभाविक रुधि थी । इसी कारण मैने शम०२० की परीक्षा भी इसी विषय में उत्तीर्ण की ।

जीवन के उच्चावच परिस्थितियों के इंझावातों तथा आर्थिक वैद्यम्य से समय-समय पर पीड़ित किये जाने पर भी धेर्य मात्र धन तथा पूज्य गुरूजनों के निरन्तर आर्शीवाद के कारण इस विद्या में स्नातको त्तर उपाधि प्राप्त करने में सफ्त हुई ।

हृदय में शोधकार्य की अभिनाषा उत्पन्न होने पर ही मैं अपने प्रयत्न में स्पन्न हो सकी । मैं अपना इच्छित विषय पाकर आनन्द विमार हो उठी, और यथा सम्भव प्रयास आरम्म कर दिया । इस प्रकार किसी अद्भय संस्कार की प्रेरणा प्राप्त कर एवं अपनी पूज्य माता श्रीमती शिक्षा प्रभा की संस्कृत भाषा की साधना विषयणि इच्छा का समादर करके इस भाष्मा की विशेष एवं उच्च शिक्षा हेतु मैंने अपने को समर्पित करने का प्रयास किया । स्नातकौत्तर कक्षा उत्तीर्ण के अनन्तर नियति की विदम्बना के वात्म में भूमित होना भी स्वाभाविक था और ऐसे समय में पूज्य मां ने अपनी प्रेरणा प्रदान कर शोधकार्य के प्रति अपने अनुराग को प्रवर्शित किया । शोधकार्य के प्रारम्भिक चरण में वर्षा प्रतास हमें लगन होने के कारण कार्य में आने दिस्त तीवृता रही ।

संस्कृत के काट्यों का यह वैदिष्ट्य है कि वे अपनी मनोहर पदावली दारा सहृदय के हृदय को हठात् आकृष्ट कर लेते हैं। किन्तु आलोचक उसमें अलंकार, रस गुणादि का मनी-मांति विवेचन करने में तत्पर रहते हैं। यही कारण है कि किसी रचना के साहित्यक विवेचन को प्रस्तुत करने के लिए ये तत्व अनिवार्य हैं।

इसके अतिरिक्त किसी विद्या के साहित्यिक अध्ययन के पूर्व उसकी प्रारम्भिक त्थिति का ज्ञान भी रखना चाहिए। इसी कारण से निबन्ध को विविध अध्यायों में विभक्त किया गया है। प्रतृत शोध प्रबन्ध का विद्या कि उमापति दिवेदी विरचित पारिजातहरण महाकाट्य पर साहित्यिक अध्ययन है। इस निबन्ध में कुल मिलाकर पांच अध्याय हैं।

इत निबन्ध को लिखते तमय जिन ग्रन्थ रत्नों की तहायता मिली है उन तबके प्रति में हृदय ते आभारी हूँ। जिन विद्वद्वजनों एवं तहयो नियों के तहयोग ते आज यह इत रूप में तमक्ष आया उनका उल्लेख करना में अपना पावन कर्तव्य तमझती हूँ। तर्वप्रथम में अपने मार्गदर्शक एवं निर्देशक पंछ राजकुमार शुक्ला के प्रति अपनी हार्दिक भावनाएं तमर्पित करती हूँ तथा उनके प्रति विशेष आभार व्यक्त करती हूँ, जिन्होंने मुझे हर तम्भव प्रयात द्वारा मेरी तहायता पर कार्य में पर्याप्त श्रम का मुस्तर भार उठाया तथा विशेष्ठ तहायता प्रदान की है। शोध निर्देशक पंछ राजकुमार शुक्ला के विस्तृत ज्ञान एवं शिष्ट्यों के प्रति दयानुता भाव के कारण ही में अपने शोध-प्रबन्ध को पूर्ण कर तकी हूँ। उनके तथा अन्य विभागीय गुरुजनों के प्रति में आभार प्रदर्शित करती हूँ।

इसके अतिरिक्त घर के शैक्षिक वातावरण एवं पूज्या मां के अनुराग, वात्सल्य और सुविधाओं में भी यह शोध प्रबन्ध पनप सका है। शोधनिर्देशक पं0 राजकुमार शुक्ला के सहज एवं कुशन निर्देशन में मुझे निरन्तर कार्यरत रहने की प्रेरणा मिलती रही है। उनके व्यक्तित्व की उदारता मधुर भाषण तथा शब्दोदगार एवं स्नेहिल पर्यवेक्षक की याद दिलाते रहेंगे।

पुस्तकीय सर्वं हस्तलेख सहायता विशेष्ट्रतः साहित्य सम्मेलन गंगानाथ इस केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ प्रयाग, प्रयाग विश्वविद्यालय पुस्तकालय के परिसर में ही प्राप्त हुई हैं। अतः मैं पुस्तकालयों सर्वं संग्रहालयों के अधिकारियों सर्वं कर्मचारियों के प्रति विशेष्टा रूप से आभारी हूँ जिन्होंने शोध सामग्री के संकलन में अपेक्षित सुविधा प्रदान की।

विद्या अपार निधि है। अतः इस विद्या के प्रस्तुतीकरण में कुछ त्रुटियां अवश्य रह गई होंगी। शोध-प्रबन्ध एक बौद्धिक प्रयास होता है। प्रयास में त्रुटियां सम्भावित हैं। टंकणकार्य में भी त्रुटियां अपिक्षत हैं कहीं-कहीं विचार असंगत भी हो सकते हैं। अतः विभिन्न सुधीजनों द्वारा प्राप्त होने वाले परामर्श एवं विचारों का सदैव स्वागत है तथापि मुझ अकिंडिचना द्वारा जो कुछ प्रयास किया गया है वह सदसद विदेकी विदय्ध सहृदय मनी दियां सिवनय प्रस्तुत हैं।

कवि उमापति द्विवेदी विरचित पारिजातहरण महाकाच्य के प्रथम अध्याय में किव का परिचय तथा कवि का व्यक्तित्व और कृतियों का मूल्यांकन है। दितीय अध्याय में पारिजातहरण महाकाच्य के कथानक का वर्णन किया गया है साथ ही यह भी बताया है कि इक्कीस सर्गात्मक पारिजातहरण एक पूर्ण काच्य है। तृतीय अध्याय में "कथानक का मूल होत" तथा "कथानक लिखने का मूल उद्देशय क्या है" यह बताया है तथा कथानक के औ चित्य पर भी प्रकाश हाला है। चतुर्थ अध्याय में पारिजातहरण महाकाट्य के शास्त्रीय पाण्डित्य का वर्णन है। पारिजातहरण महाकाट्य में कवि उमापित का पाण्डित्य अत्यन्त विस्तृत है। इस सबका विवेचन इस अध्याय में किया गया है। पंचम अध्याय में काट्य के काट्यात्मक सौन्दर्य का वर्णन है, जिसमें प्रकृति-वर्णन, गुण, दोष, रीति, अलंकार, रस, छन्द आदि का विवेचन है।

और अन्त में --

"कृता त्मनां तत्त्वदृशां च मादृशो" जनो अभित्तनियं कडवावभो त्स्यते"

- "आचार्य भामह"

निवेदिका नंजरी वर्मा + मंजरी वर्मा

कवि उमापति द्विवेदी विरचित पारिजातहरण महाकाच्य

				ਧੂਠਰ ਜੰਢ ਧ ======
प्रथम अध्याय ::	::	::	::	1 - 12
। कवि परिचय				1 12
2. काट्य में किव का ट्यक्तित्व व	कृतियाँ			
द्वितीय अध्याय ::		• •	::	13- 94
।. कथानक				
2. आधिकारिक तथा प्रातंत्रिक वृत्त				
3. इक्कीत सर्गात्मक पारिजातहरण स	क पूर्णका	व्य है		
तृतीय अध्याय ::	::		::	95-152
 कथानक का मूल झोत 				
2. कथानक का मूल उद्देशय				
3. कथानक का औधित्य				
चतुर्थ अध्याय ::				153-258
। पारिजातहरण महाकाच्य में कवि उ	मा पति	दिवेदी का		
शास्त्रीय पाणिडत्य				
पंचम अध्याय ::				259-407
। पारिजातहरण महाकाच्य में काट्या	त्मक सौ	न्दर्ग		
क. वस्तु वर्णन तथा प्रकृति धित्रण				
क लोकजीवन की झाँकी				
ग- अलंकार सौन्दर्य				
घ रत और भाव अभिव्यक्ति				
ड. भाषा रैली		.		
य. गुणदोष सर्वे रीति				
छ. छनद - योजना				

प्रथम अध्याय

कवि-परिचय

"जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीशवराः । नास्ति येषां यशः काये जरामंरणजं भयम् ।।

देवरिया ज़िले के पकड़ी नामक गाँव में कश्यप गौत्रीय पं0 बच्चूराम दिवेदी के छोटे भाई पं0 कान्ताराम दिवेदी के पुत्र पं0 उमापति दिवेदी का जनम हुआ । इनकी मां का नाम मर्सादा देवी था । इन्होंने श्री पं0 नच्छेदराम शर्मा उपनाम से प्रसिद्ध गुरु पं0 उमापति से काशी में रहकर शिक्षा प्राप्त की । इसके अनन्तर श्री भवानीदत्त दीक्षित श्री रामभवन उपाध्याय रवं अन्त में अनन्त श्री स्वामी मनीव्यानन्द के चरणों में बैठकर भी शिक्षा प्राप्त करने का अवसर उन्हें मिला । इसी समय 1921 ई0 में देश में असहयोग आन्दोलन जब प्रारम्भ हुआ तो अपने गुरदेव पं० नच्छेदराम शर्मा के मतीजे तथा अपने सहपाठी काशीनाथ दिवेदी के साथ आचार्य परीक्षा के अन्तम भाग को त्याग कर आंदोलन में सम्मिलित हो गए । इसी बीच उनके पिता का अपने परिवार में बंटवारा हो गया । अपने पिता के एकमात्र पुत्र होने के नाते धरेलू तहायता के लिए पिता ने इनको घर बुला लिया । वहीं रहकर क्षेत्रीय श्री कुबेरनाथ विद्यालय में अध्यक्ष श्री जगदानन्द ब्रह्मचारी द्वारा नियुक्ति पाकर अध्यापन करने लगे और उसके बाद तमकुही नरेश जिल्प्रतापशाहि ने उनको अपने यहां बुलाकर उनका पर्याप्त सम्मान किया और अपने यहां ही रखा । तमकृही नरेश के स्वर्गवाही हो जाने के बाद वापिस अपने घर आ गए और वहीं रहकर पारिजातहरण महाकाच्य की रचना की । महाभारत के समान इस काच्य का अंगीरस भिक्त अथवा शान्त है। अन्य रस अंग रूप में यहां वहां निष्यन्न हुए हैं। गौडीय और वैदर्भी रीति का काव्य में दर्शन होता है। ओजस्वी शब्द विन्यास उदार अलंबार - योजना सर्वथा अभिनव-भाव सर्वथा अनवदर्सवाद इस काट्य की विशेषताएं हैं।

"अनेक अनेक अर्थ देने वाले पदों से युक्त जो वचन है अगर उसमें जगत् को पिवत्र करने वाले भगवान हिर का गुणगान नहीं किया और मानव का यशोगान किया है तो व्यास के अनुसार यह वाणी पाप है " ऐसा मानकर ही किव उमापित ने अपने काव्य के लिए इस विषय को चुना । इसके अतिरिक्त सन् 1921 के असहयोग आन्दोलन के बाद देश में बढ़ते हुए भूष्टाचार को रोकने के लिए तथा मानव का मन हिर में लगाने के लिए ही उन्होंने परिजातहरण महाकाव्य की रचना की । इसके अतिरिक्त पुत्र प्राप्ति के लिए उन्होंने हरिवंश पुराण का अध्ययन किया था, तभी से उन्होंने इस विषय पर विचार किया और महाकाव्य लिखने को सोचा ।

अपनी वाणी रूप संतान को भी प्रसन्न करने के लिए उन्होंने कुछ स्तोत्र तथास्तुति की रचना की । इन्होंने सुप्रभात् नाम का एक संस्कृत पत्र भी प्रका जित किया अपने अध्ययनकाल में ही इन्होंने विद्वानों को प्रसन्न करने वाली जिससे इन्हें "कविषति" की पदवी से विभूषित किया गया । इन सबके अतिरिक्त पारिजातहरण महाकाच्य की रचना की जिसके पलस्वरूप बहुत प्रसिद्धि मिली और अन्त में कवि उमापति द्विवेदी के शब्दों में :-

श्री पं0 सुरति नारायण मणित्रिपाठी \{सदस्य लोक सेवा संघ, उत्तर प्रदेश दम्पत्ति के कर कमलों में निम्नांकित पद्य के द्वारा सादर यह पारिजातहरण महाकाच्य समर्पित करता हूं।

"पदस्थाः तन्त्यन्ये कवि न तुहृदः के न तुध्यः ।
परन्त्वेतैरस्मित्स्थितिलनुसत्त्रीं न विदिता ।।
मयाइतस्त्वत्संगा दिविध्सुणहार्दाहृतहृदा ।
प्रसादोऽयं दत्तस्तव तुरितनारायण करे ।।

"कविपतिः"

काव्य में कवि का व्यक्तित्व तथा कृतियाः -

किव का हृदय उसके काट्य में इलकता है । छिपाने का लाख प्रयत्न करने पर भी किव का अपना सच्या व्यक्तित्व काट्य में प्रकट हो ही जाता है और यदि प्रयत्न करके कोई किव अपने स्वभाव के विरुद्ध कोई काट्य रचना करें भी तो यह उसकी अत्यन्त निम्न श्रेणी की कृति होगी क्यों कि वह उसके हृदय के सच्चे भावों से रहित होगी । उत्तम काट्य तो वही है जिसमें किव के हृदय का सच्चा स्वर सुनाई पड़ता है । राजप्रशस्तियां इसलिए अधिक लोकप्रिय न हो सकीं कि उन्हें किवगण धन कीत्यांदि की लिप्सा से दूसरों को प्रसन्न करने के लिए १विशेष स्वार्थवश१ लिखा करते थे । सच्चे काट्य में यदि सूक्ष्मदृष्टित से देखा जाय तो किव का सच्चा स्वरूप दिखाई देता है । किव-उमापित के पारिजातहरण महाकाट्य में वैसे तो भगवान श्रीकृष्टण की कथा है किन्तु काट्य की सूक्ष्म समीक्षा करते समय किव के निजी व्यक्तित्व की कथा भी मिल जाती है ।

उनके ग्रन्थों को देखने से ज्ञात होता है कि उन्होंने वेदों, दर्शनों, उपनिष्दों, रामायण, महाभारत, गीता, पुराण ज्यो तिष्, व्याकरण, का व्यशास्त्र आदि का गम्भीर अध्ययन किया था, उनके पारिजातहरण महाकाव्य में नीति संबंधी कहावतें भरी पड़ी हैं तथा जीवन की अनेक समस्याओं पर उन्होंने विचार किया है। दान, व्रत, धर्म, गृहस्थाश्रम, जीवन की क्षण-मंगुरता, यज्ञ, जीवन-मुक्ति, प्रेम-भावना, भक्ति-भावना, संस्कृत भाषा, सतीत्व आदि अनेक विषयों पर उन्होंने महत्वपूर्ण प्रकाश डाला है।

कवि उमापति बड़े धार्मिक एवं गम्भीर प्रकृति के व्यक्ति थे। सांसारिक सुखों को वे हेय समझते थे। पारिजातहरण महाकाव्य के कई सर्गों में ऐसे उदाहरण मिलते हैं, जिससे किव की इस भावना का पता चलता है।

हे मुक्तिनाथ ! अपने शरीर पर रेंगते क्षुद्वातिक्षुद्ध कीटों के समान संसार के सारे जीवों को विशेष आस्था न होने के कारण जब तक आप उपेक्षित किए रहते हो, तब तक ये संसार में आते जाते बन्धनों में पड़े रहते हैं । जब अपनी इच्छा से ही आपकी दृष्टिट के वे लक्ष्य बन जाते हैं, तब बन्धन रहित मुक्त हो जाते हैं, यही उनका मोक्ष है ।

कित उमापित दिवेदी की रचनाएँ उनके व्याख्या पर प्रकाश डालती हैं। वे उच्चकोटि के दार्शनिक थे और ईश्वर में तथा उसकी भिवत में उनका विश्वास था। परन्तु वे किसी एक देवता के कद्दर भक्त नहीं थे। उन्होंने "शिवास्तुति" ग्रन्थ लिखा जिसमें शिव की स्तुति की गई है। उनके पारिजातहरण महाकाच्य के पंचम तथा द्वादश सर्ग में भगवान कृष्ण की स्तुति की गई है। अतः सभी देवताओं के प्रति उनमें आदर की भावना थी। इससे उनके जीवन

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - पैचम सर्ग - 3-20

² पारिजातहरण महाकाच्य - पंचम तर्ग - 21

³ पारिजातहरण महाकाच्य - पंचम तर्ग -3-32 पारिजातहरण महाकाच्य -अष्टमदश तर्ग -

की आस्तिक्य वृति का परिचय मिलता है। शास्त्रों के प्रति उन्हें श्रद्धा थी। उन्होंने अपने पारिजातहरण महाकाच्य में नीतिशास्त्र तथा धर्मशास्त्रों के कई उदाहरण सिद्धान्तों को लेकर कई शलोक उद्धृत किए हैं।

"साधन शक्ति रूप तीन शक्तियां, छः गुण, चार साधन, तीन सिद्धियां एवं तीन उदय इत्यादि विषयों को एकस्थ करने वाली उक्तियों के संग्रह ग्रन्थ ही नीतिशास्त्र कहे जाते हैं। अच्छे लोग साम, दान, दण्ड, भेद चार रूप उपायों से ही सारे पारस्परिक जगद व्यवहारों का पालन करते हैं, ऐसा नीतिशास्त्र में कहा गया है।

अतः किव ने मोक्ष रूपपरम पुरखार्थ को श्रेष्ठ माना है, मोक्ष देने वाली सप्तपुरियों में मोक्षोत्पादन में यह मुख्य द्वार है। लौकिक सुखों का उपभोग कर मानव-अलौकिक सुख हमोक्षह की प्राप्ति कर लेता है। इसके सेवन से मनुष्य संसार बंधन से रहित हो मुक्ति के भागी हो जाते हैं।

किव उमापित को जीवन में मुनियों, सत्पुरुओं तथा महात्माओं की सी भान्त एवं निरपराध वृत्ति प्रिय थी। पारिजातहरण महाकाच्य के चतुर्थ सर्ग में किव ने बताया है – सन्तों का दर्शन निष्पाप ही प्राप्त करते हैं। जिसे सज्जन अनुगृहीत करते हैं या अपनी सेवा सत्कारादि गुणों से जो स्वयं महात्माओं को अपनी ओर खींच लेते हैं वही वास्तव में गृह हैं। महात्माओं का भुम दर्शन देव का दिया शुजन्मित का प्रमाण रूप पुरस्कार है। निरपेक्ष

[।] पारिजातहरण महाकाच्य – दशमसर्ग – 42, 43 पारिजातहरण महाकाच्य – एकादशं सर्ग – 53, 54

² पारिजातहरण महाकाच्य - स्कादश सर्ग

³ पारिजातहरण महाकाच्य - दशम सर्ग -73

⁴ पारिजातहरण महाकाच्य - प्रथम सर्ग - 38 - 41

महात्मा जिसकी अपेक्षा कर दर्शन दे तब तो कहना ही क्या है। सज्जनों का सभाजन ही उस उन्निति का प्रमाण है। तेजस्वियों के दर्शन से तो बाह्य मालिन्य दूर हो जाता है सबका अगम्य आन्तर मालिन्य दूर करने वाला आपका दर्शन विलक्ष्ण है।

कृटिम्बियों को महात्माओं के दर्शन से बद्ध दूसरी वस्तु कमनीय
नहीं होती। प्रस्ताव के बिना सन्तों का दर्शन कराने वाला कर्म स्य बीज ही
सर्वोत्तम है। इनका कर्तव्य सरस तथा सभी लागों के द्वारा सरलतापूर्वक समझा
जा सकता है। वे अतिथि-सत्कार को गृहस्थ का सबसे प्रथान कर्तव्य मानते हैं।
गृहस्थ से इतर कुछ भी अपेक्षा जिसे है, वह अतिथिमात्र भिक्षु हैं। जो मनुष्य इस
गृहस्थ आश्रम के सभी सुख दूसरों को न भुगाकर अपने भोगते हैं वे इस लोकोपकारिणी
संस्था के सर्वस्व हड़प जाने वाले महान पापी हैं। गृह की कृतार्थता प्रत्येक
जीवों की सेवा से होती है।

कित उमापित में उदात्त वृतियां थीं तथा वे गुणों के प्रमंतक थे।
सर्वथा प्रसन्न करने वाली सुन्दर गन्धवाली, सरस भावों के विकास से रमणीय,
सन्दर्भ शुद्धि, पद-विन्यास की स्वच्छता पक्ष में सम्यक् गुथन की सुरीति तथा
पूर्णरूपेण पुष्ट श्रमाधुर्या दिश्रगण, सूत्र से युक्त, प्रसादवाली, भनी-भाँति अलंकृत
तथा संस्कार से शोभित माला के समान आपकी यह वाणी हृदय में रख लेने से
किसकी श्री को नहीं बढ़ा देगी।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - चतुर्थ सर्ग - ।।। - ।।७

² पारिजातहरण महाकाच्य - चतुर्थ सर्ग - 105-- 108

या रिजातहरणे महाकाच्य – चतुर्थ तर्ग – 104

⁴ पारिजातहरणं महाकाट्य - चतुर्थं सर्ग - 113 - 115

⁵ पारिजातहरण महाकाट्य - दशम सर्ग - 57

वे उत्कृष्ट गुणों वाली वस्तु की खुनकर प्रशंसा करने के पक्ष में थे।
उन्होंने पारिजातहरण महाकाच्य में कृष्ण तथा रुक्मिणी के गुणों की प्रशंसा
की है। भगवान कृष्ण तो सर्वेश्वर है और समस्त जगत् का पालन तथा
नियंत्रण करने वाले हैं। उन्हीं की इच्छा से यह संसार चलता है। संसार में
सभी प्राणी उन्हीं की इच्छा से पैदा होते हैं तथा मरते हैं।

भगवान की ज्येष्ठा पत्नी रुक्मिणी की प्रशंसा नारद के द्वारा की गई है - हे चितिद्धे। तू महान ईश्वर को भाँपने वाली माया हो। सारे शिक्तिधारियों की सर्वसाधारणं शिक्त हो। हे ईश्वरि! इस परम पुरुष को यदि तुम चेतना न दो तो यह निर्मुण पुरुष अपनी गित किसी से विणित नहीं करा सकता है। यह सारे जीव-लोक इस जगती तल में चेतना रूपिणी तुम्हीं को अवलिम्बत की जा रही है अझित सबकी चेतना की मूलाधार तुम्हीं हो।

कि उमापित का पाणिडत्य प्रशंसनीय है। उनके द्वारा सम्पूर्ण भारतीय दर्शनों का गम्भीर अध्ययन किया गया था। सांख्य के तो वे पणिडत थे। सांख्य, वेदान्त, न्याय, ज्ञानयोग तथा कर्मयोग आदि अन्य मतों से उनके पाणिडत्य का पता चलता है। पारिजातहरणमहाकाच्य के कई सर्गों से किव के इस पाणिडत्य का बोध होता है। सांख्य की प्रकृति सत्त्व, रजस, और तमस, तीनों गुणों को धारण किये हुए है। यह जड़ा प्रकृति सांख्य मतानुसार 24 तत्त्व रूप में फैली हुई है। पृथ्वीआदि, पंचभूतों के रहते हुए भी प्रपंच के

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - घठ तर्ग

² पारिजातहरण महाकाच्य - बार्क तर्ग - 36, 37, 38

³ पारिजातहरण महाकाच्य - दशम तर्ग - 13

⁴ पारिजातहरण महाकाच्य - पंचम सर्ग - 10

विचित्रता का जो भान है इसका आदि कारण आपकी इच्छा है। संतार की पृकृति जन्म मिलनता यमुना को और परमपुरस्य की बवेत विभूति गंगा को उनके पदारविन्द की प्रेमिका सरस्वती एक में मिला रहीं है। नारायण की मूल प्रकृति तथा नारायण की आठ पटरानियों को आठ प्रकृतियों के समान कहा गया है।

न्याय सिद्धांतों के अनुसार पारिजातहरण महाकाच्य में कहा गया है असाध्य संसार के अद्भूत विधान उत्पत्ति, विनाशाली कार्य बिना कारण नहीं हो सकते। कारण गुणानुरूप ही कार्य सिद्धि प्रसिद्धि है। किसी भी कार्य के कारणों की लघुता या गुस्ता जीव के चित्तगत बोध का अनुसरण करती है।

वेदांत के अद्भैतवाद का सिद्धांत पारिजातहरण महाकाच्य के सप्तम्, सर्ग में बताया गया है जैसे रज्जु में सर्पज्ञान भूमात्मक है वैसे ही अदितीय ब्रह्म में सारा दैत प्रपंच भूमात्मक है। ये अन्नमय कोष्ठ को प्रचुर मात्रा में उत्पन्न करते हैं। कृष्ण को मायावी कहा गया है। इस काच्य में कृष्ण को निर्लेप अदैत बताया गया है।

- । पारिजातहरण महाकाच्य पंचम सर्ग 15
- 2 पारिजातहरण महाकाच्य पंचम तर्ग -44
- उ पारिजातहरण महाकाच्य षठ तर्ग 18
- 4 पारिजातहरण महाकाच्य पंचम सर्ग 7
- 5 पारिजातहरण महाकाच्य दशम तर्ग 63, 64
- 6 पारिजातहरण महाकाच्य सप्तम सर्ग 38
- 7 पारिजातहरण महाकाच्य दशम सर्ग 20
- 8 पारिजताहरण महाकाच्य एकादश सर्ग 82
- ९ पारिजताहरण महाकाच्य एकादशं तर्ग 87

वेदों तथा उपनिषदों का भी उन्हें अच्छा ज्ञान था। उन्होंने अपने पारिजातहरण महाकाच्य में यज्ञ का विश्वद वर्णन किया है। यज्ञ की ज्ञितकर्तव्यता पर भी विस्तृत रूप से प्रकाश डाला है। वैदिक भ्रवाओं का भी वर्णन किया है तथा उदात्त, अनुदात्त, स्वरित स्वरों का भी वर्णन किया है। पारिजातहरण महाकाच्य के सत्रहवें सर्ग में योग-देम के बारे में बताया गया है जिससे पता चलता है कि उन्होंने उपनिषदों का भी अध्ययन किया था।

इसके अतिरिक्त उन्हें पाक - शास्त्र, पिक्ष-विज्ञान, ज्योतिष्यास्त्र, नीतिशास्त्र, धर्मशास्त्र पुराण शास्त्र, कामशास्त्र आदि का भी ज्ञान था। वे इन सब शास्त्रों के पण्डित थे। उनके पारिजातहरण महाकाच्य में इन शास्त्रों से संबंधित उदाहरण भरे पड़े हैं। उन्होंने इन शास्त्रों का गम्भीरतापूर्वक अध्ययन किया था।

पारिजातहरण महाकाच्य में किव उमापति के विभिन्न शास्त्रों के पाण्डित्य को बोध होता है। काच्य के बारहवें सर्ग में गस्ड़ के प्रसंग में स्थान-स्थान पर किव ने ऐसी सूक्ष्म बातों का उल्लेख किया है जो उनके पिक्ष विज्ञान की विशेष्यताओं की द्योतक है। किव ने गस्ड़ के पंखों का वर्णन, चोंच का वर्णन तथा शरीर का वर्णन किया है। उड़ते समय वह गस्ड़ चन्द्रमा तथा सूर्य को भी अपने पंखों ते छिपा लेता है। वह अपनी चोंच में सांप लटकार हुए रहता है। वह गर्इ मनुष्यों की वाणी में बोलता है। उस गर्इ ने मनुष्यों की वाणी में भगवान कृष्ण की स्तुति की।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - चतुर्थ सर्ग - 31-53

² पारिजातहरण महाकाच्य - द्वितीय सर्ग - 43

³ पारिजातहरण महाकाच्य - सप्तदश सर्ग - 20

⁴ पारिजातहरण महाकाच्य - द्वादश तर्ग - 25, 26

पारिजातहरणं महाकाच्य के विभिन्न तर्गों में ज्योतिष्ठ शास्त्र के तिद्वान्तों का उल्लेख किया गया है। नक्ष्र मण्डल का शासक, ज्योतिष्ठ शास्त्र चन्द्रमा को कहा गया है। काच्य में बाँघीं भुजा का पहकना अश्रुम उमाना गया है। श्रवणं नक्ष्म तथा आद्यभि नक्ष्म में जाना श्रुभ माना गया है। काच्य के प्रथम तथा द्वितीय सर्ग में नायक ना यिकाओं के वर्णन कि के काम शास्त्र ज्ञान को बताते हैं। द्वितीय सर्ग में रात्रि को गर्भवती स्त्री के समान विताया गया है।

पारिजातहरण महाकाच्य के चतुर्थ तर्ग में यज्ञ के प्रतंग में कि ने अपनी पाक-शास्त्र संबंधिनी कुशलता का परिचय दिया है। छः रसों के अपूर्व यज्ञागंभूत भोजन से ब्राह्मणों को ष्टुप्त किया। गो रस हुंदूध, दही, आदि है से बने पदार्थों को भोजन में दिया।

महाका व्यों और पुराणों के अनेक प्रतंगों से उनके अपरिमित पौराणिक ज्ञान का परिचय मिलता है। उनके पारिजातहरणमहाका व्य का कथानक ही पुराण पर आधारित है। हरिवंश पुराण की कथा को आधार मानकर इस काव्य की रचना की गई है। इसलिए उनका यह काव्य पुराणों से बहुत समानता रखता है। पुराणों में जिस प्रकार द्वारिका वर्णन, युद्ध का वर्णन स्थान – स्थान पर भगवान की स्तुति का वर्णन, पुण्यक—वृत का वर्णन, नदियों का वर्णन, अतुओं का वर्णन, समुद्र का वर्णन, स्वर्ग का वर्णन मिलता है बिलकुल उसी प्रकार कवि के पारिजातहरणमहाका व्य में भी वर्णन मिलते हैं। द्वारिका वर्णन प्रथम सर्ग में किया गया है सत्रहवें सर्ग में नारायण तथा इन्द्र के युद्ध का

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - द्वितीय सर्ग - 8

² पारिजातहरण महाकाच्य - दादश सर्ग - 24

³ पारिजातहरण महाकाच्य - दादश सर्ग - 58

⁴ पारिजातहरणमहाकाच्य - प्रथम तर्ग - 18, 19, 20

⁵ पारिजातहरण महाकाच्य - द्वितीय सर्ग - 4-46

⁶ पारिजातहरण महाकाच्य – चतुर्थ सर्ग – 60,61

वर्णन मिलता है। यतुर्थ तर्ग में तमुद्र का वर्णन पंचमतर्ग में त्रिवेणी का वर्णन तथा एका दश तर्ग में त्वर्ग का वर्णन किया गया है। शरद ऋतु का वर्णन दशम तर्ग में तथा वतन्त ऋतु का वर्णन एक विंश तर्ग में किया गया है।

पुराणों में भगवान के विभिन्न अवतारों का वर्णन किया है, इसी प्रकार पारिजातहरण महाकाच्य में भी भगवान के विभिन्न अवतारों का वर्णन किया गया है। कूर्मावतार का वर्णन विंश सर्ग में मिलता है। भगवान ने समय-समय पर कछुआ, सूकर, हिरण्यकश्यप आदि अवतारों का गृहण किया है।

इतना पाण्डित्य होते हुए भी किव के इस पारिजातहरणमहाकाच्य में मनोविनोद के दर्शन होते हैं। इससे उनकी मनोविनोदात्मक वृत्ति का परिचय मिलता है। काच्य के दशम सर्ग में किव ने शरद ऋतु का वर्णन किया है तथा साथ ही भगवान कृष्ण और सत्यभामा के मनोविनोद का भी वर्णन किया है -

> "इत प्रकार अपनी प्रिया तत्यभामा के मनो विनोद के व्याज ते शरद अतु की विशेष्णतारं हर्ष के साथ दिखाते हुए जब तक कुछ और सोच ही रहे थे, तब तक ही नारायण ने मुनियों के अग्रणी नारद को तामने आ गया देखा ।"

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - विंश तर्ग - 31

² पारिजातहरण महाकाच्य - पंचम तर्ग - ।।

³ पारिजातहरण महाकाच्य - दशम सर्ग - 26

काट्य जगत्में प्रतिद्धि के कारण किव उमापति द्विवेदी को "किविपति" की उपाधि मिली थी तथा पारिजातहरण महाकाट्य लिखने पर विशेष रूप से सम्मानित किया गया था।

कवि की कृतियां:

किव उमापित दिवेदी की कृतियों में कुछ स्तोत्र तथा स्तुतियों की रचना मिलती हैं। जिसमें गंगिशिरवरिणी शिवास्तुति, गणेशा पंचचामर, चिडका- घटम तथा सुप्रभात नामक सूर्य - स्तोत्र उल्लेखनीय है। इन्होंने सुप्रभात नाम का एक संस्कृत पत्र भी प्रकाशित किया, इन सबके अतिरिक्त पारिजातहरण महाकाच्य की रचना की जिसके फ्लस्वरूप इन्हें विशेष्ठ ख्याति मिली है।

दितीय अध्याय

प्रथम तर्ग

पारिजातहरण महाकाच्य के प्रथम सर्ग में द्वारिकापुरी का वर्णन किया गया है तथा रुक्मिणी के द्वारा दूती के मुख से वृतीचापन के लिए भगवान कृष्ण से अनुमित की याचना का तथा उसकी प्राप्ति का वर्णन किया गया है।

सर्वथा स्वाधीन और समस्त जगत् के नियन्ता मगवान श्रीकृष्ण ने मानव-सम्बन्धिनी समस्त सम्पत्ति को उपाधि-रूप में धारण कर लिया और कंस आदि दानवों के विनाश द्वारा स्वस्थ कर अपनी बसायी कुशस्थली ह्वारिका है को सभी सुखों से पूर्ण कर दिया । वे मगवान श्रीकृष्ण एक असाधारण नायिका के वेश को धारण करती हुई इस द्वारिका का शासन करते थे । यह पुरी समस्त ऐश्वयों से सुसज्जित थी तथा इसमें गगनचुम्बिनी अद्वालिस्कार थीं तथा इसमें विविध रत्नों की विचित्र प्रभा से द्वारिका पुरी की अपूर्ण छ्वा दिखाई पड़ती थी । यह पुरी चित्र रूप में तीनों लोकों की आकृति लिस समुद्ध से घिरी हुई थी । इसकी दीवारें अत्यन्त ही प्रकाशमान थीं । इसके चारों और तोरणों की कान्तिमण्डली फैली हुई थीं ।

इस पुरी में सदैव मन्द-मन्द शीतल तथा सुगन्धित वायु बहती रहती थी। संसार में औषध, मणि तथा मन्त्रों का प्रभाव सर्वोत्तम माना गया है, इस पुरी में वह साधारणतः सभी का प्राप्त था। यह पुरी सुवर्णमय गवाध, सोने के बने कलश-कंगूरों से अलंकृत, विभागपूर्वक बनाए गए राजमार्ग, विश्रामत्थल एवं चौराहों से युक्त थे। जलचादरों में शरदथन के अम से मयूर तथा मोती के आकार की बूंदों के अम से चातक इस पुरी के धारागृहों को सदा धेरे रहते थे।

इसमें पग-पग पर मनोहर बावड़ी और सरोवर शोभा पाते थे जो परस्पर नायक और नायिका की भाँति परस्पर रमण करने से प्रतीत होते थे। इस पुरी में कहीं कीड़ा पर्वत सुशोभित होते थे, जो बहुत ही उँचे थे तथा विविध प्रकार के पूले हुए वृक्षों और लताओं से उल्लिसित थे। इसका बाजार मनुष्यों के कोलाहल से युक्त था तथा धनी दुकानों से सुसज्जित था। इस पुरी के उत्कृष्ट कलामर्मज्ञ शिल्पी गण सूत करधा आदि के व्यवहारों और ताने-बाने आदि प्रकार - विशेष्य से विविध वस्त्रों का निर्माण करते थे। यह पुरी स्वच्छ स्फटिक मणि की भूमि पर बसायी गई थी तथा विविध प्रकार के मन्त्रों के व्यवसाय से शोभित थे।

यहाँ विशुद्ध अन्तः करण वाले वेदपाठी ब्राह्मण निवास करते हैं,
तथा निरन्तर वेदध्वनि गूँजती है । यहाँ सात तल्ले वाले मकान कमलनयन
श्रीकृष्ण की कृपा दृष्टित से लक्षित सर्व सुरक्षित हैं । यहाँ के घरों में ध्वजासं
पहरा रही हैं । इस पुरी में नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों के प्रयोग करने
वाले शूरवीरों को स्क-स्क दल रणक्षेत्र में होड़ लगाकर तीनों लोकों के साथ
युद्ध कर सकता है । इस पुरी में कहीं राजनीति सम्बन्धिनी विशेष्ण मन्त्रणार्थ
अधिकारियों की बैठक सजायी गई है कहीं योद्धाओं के युद्धकला-सम्बन्धी कौशक
का प्रदर्शन हो रहा है, कहीं कुशन शिल्पियों की कलाओं की प्रदर्शनी सजायी जा
रही है, इस प्रकार यहाँ सदा सारे दिन उत्सवमय आनन्द में ही बीतते हैं ।
यहां की विशाल सड़कों पर नाना प्रकार के रथ निरन्तर दौड़ते रहते हैं तथा
इस नगरी की रक्षा में तत्पर रहते हैं । मोक्ष देने वाली सम्बापुरियों में
मोक्षोत्पादन में यह मुख्य द्वार है इसलिए अनादिकाल से ही विद्धान इसे
"दारिका" इस सत्य नाम से पुकारते हैं । यहां के निवास करने मात्र से ही
लौकिक सुखों का उपमोग कर मानव अलौकिक सुख श्रूमोक्षा की प्राप्ति कर लेता
है । इस पुरी के दर्शन से पार्गों की राशि मी विलीन हो जाती है तथा

तेवन से मनुष्य संसार बन्धन से रहित हो मुक्ति का भागी हो जाता है। भगवान श्रीकृष्ण ने इस पुरी को अत्यन्त अवर्णनीय कहकर अपने निवास के लिए भरपूर तजाया । इसके राजमहल में कहीं प्रत्येक दिशाओं की अप्तरार नाय रही हैं तथा कहीं परम् निपुण यादवों की कौंतिल तजी है। यहां के अन्तःपुर में अपार तौन्दर्य वाली ललनाएं हैं। मल्लयुद्धादि व्यायामोपयोगी अखाड़े आदि में कर्पूर की ही धूलि भरी हुई है तथा जो अष्टागन्ध की अधिक मात्रा से सम्पादित अनेक रंगों से चित्रित तथा सर्वथा प्रिय है। यहां कहीं मयूर नृत्य कर रहे हैं कहीं कबूतर कलाबाजी कर रहे हैं। यहाँ के राजमहल बहुत उँचे तथा स्वच्छ शीशों से जड़े हैं। यहां का प्रांगण मोटर आदि विभिन्न सवारियों से भरा हुआ है। यहां का राजमहल तैंकड़ों रत्नमय वेदियों ते भूषित तथा सुधर्मा नामक देवसभा मण्डल से सुसज्जित है जिसमें मुख्य अन्तरंग मंत्रियों के साथ भगवान श्रीकृष्ण मन्त्रणा कर रहे हैं। तब तक व्रतिनी रुक्मिणी के अभिषेत सन्देश को पहुँचाने वाली उसकी प्रधान दासी ने आकर अवसर से भगवान का इशारा पाकर ेकहा कि भगवन् आपकी ज्येष्ठा पत्नी रुक्सिणी अपने किए वृत की पूर्णता के लिए कल आपके साथ ही रैवताचल पर पूजनीय देव ब्राह्मणों की पूजा करना चाहती हैं। इस प्रकार दासी के निवेदन पर भगवान ने अनुराग सहित कहा -कथ्य कलयतात्सा कामनामद्य पूर्णांसरति स जगदीशस्तामिति ब्याजहार ।

इस प्रकार पारिजातहरण नामक इस काच्य का क्षेत्र नामक प्रथम सर्ग समाप्त हुआ।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - प्रथम सर्ग - 63

द्वितीय सर्ग

पारिजातहरण महाकाच्य के द्वितीय तर्ग में प्रभात का वर्णन बहुत ही सुन्दर दंग ते किया गया है तथा साथ ही यज्ञ के लिए रैवतक पर्वत की यात्रा की तैयारी का वर्णन भी किया है।

कवि उमापति के इस महाकाच्य में रात्रि की बहुत ही सुन्दर उपमा दी गई है। रात्रि की तूलना एक गर्भवती स्त्री से की गई है। अपने संकल्पित कार्य की सिद्धि के लिए जगदीशवर भगवान श्रीकृष्ण की अनुमति पाकर रात्रि बीतने की राह देखती हुई मन ही मन अत्यन्त प्रतन्न हुई । उस समय रात्रि गर्भवती स्त्री के समान प्रतीत होती थी, उसका चन्द्रमारूपी मुख पीला पड़ गया था, उसके अंगों पर नक्ष्त्ररूपी आभूवग इने-गिने रह गर थे और उसने अपने भीतर बालरूपी तूर्य को धारण कर रखा था। वह रात्रि शीघ्र ही प्रसव करना चाहती थी अर्थात् प्रातः होने को थी । उस समय जगदीश्वर के शयन कक्ष में उनकी शय्या के समीप वैतालिक मण्डल उन्हें जगाने के लिए गीत गाने लगा । हे नाथ । निद्रा का परित्याग की जिए क्यों कि चन्द्रमा प्रभात । काल में पिक्यों के कलरव से सूर्योदय की सूचना दे ताराओं को साथ लिए चला जा रहा है। भगवान भारकर से भयभीत सी होकर मानो आकाश से भूमि पर छिपने के लिए आई हुई ताराओं जैसी कितनी अभिसारिकारं यहां भी सूर्य के पुनः आगमन की आयौका से मानों अन्यत्र छिपने के लिए भागी जा रही हैं। प्रभात के कारण दीप की प्रभा मलिन हो रही है। कितनी पतिवृता स्त्रियाँ पति के पहले जगकहर सन्ध्या पूजनादि की सामग्रीं जुटाते समय पति देव को जगाने की युक्तियां कर रही है। हे हरे। थोड़ी देर के बाद तंतार में तुर्योत्पत्ति रूप होने वाले मंगल को देखिए । पूर्व की ओर से लोक कल्याणकारी सूर्य रूप तेजस्वी पुरम्प जनम ले रहे हैं, इसलिए गौ रूपी किरणों का पूर्व-दिशा के द्वारा दान हो रहा है। उष्प्राकाल की प्राप्ति से प्रसन्न पिक्ष-मण्डल श्रवण सुखकारी

मंगलगान कर रहे हैं एवं दिगडनाएं लाल वस्त्रों ते रिज्जत हुई उक्त महोत्सव के पुनीत क्षण को सूचित कर रही हैं। प्रकाश के जाने से सभी सुन्दर वर्ण प्राप्त कर लेंगे। रात्रिका मुख उज्जवल होकर शोभायमान हो गया है। सहचरी दिशाएं भी शोभित हो उठीं, मनोहर सुगन्ध फैलाती हुई गर्व लिए वायु बह रही है। इस महोत्सव के समय वायु से इस शुभ तूचना को पाकर पृथ्वी पर सब ओर दल रूपी अपने हाथों से ओस बिन्दु रूपी मोती बरसा रहे हैं। भंवरे इस समय यशोगान कर रहे हैं कमल भी इस समय खिल गए हैं। पात: काल कोलाहल करते हुए पक्षीगण मानो यह कह रहे हैं कि दिननाथ सर्वथा अस्त हो गया यह तमझ कर क्यों निर्भय काम कीड़ा में निमग्न हो, तमय का यह कम है देखों फिर वह उगा आ रहा है अर्थात् मोह निद्रा त्यागकर जागो । भगवानकृष्ण के मुख-चन्द्र से डरा हुआ चन्द्रमा आपके उठने के भय से अभी अस्त हो रहा है । विरह रूप वृत में सारी रात बिताने वाले अपने प्रिय जोड़े से चक्रवाकी अभी आ मिलेगी सूर्योदय के समय सारी दिशाएं रिज्जत हो रही हैं। मुर्गे रूप मित्वजों का वृन्द शुम सम्पत्ति के लिए जगत् के सारे व्यसनों का तेजस्वी सूर्य में हवन कर देना चाहता है। अग्नि को दीप्त करने वाली ऋचाओं को पढ़ते हुए अग्निहोत्री ब्राह्मणगण कुशकण्डिका आदि विधि ते शोभित कुण्ड वाले मण्डप में बैठे स्वाहाकार आलापते हवन कर रहे हैं। प्राभातिक वायु का संचार प्रत्येक स्थानों में हो गया है। खिनते कमलों में तानन्द निकालते हुए मंदरे ऐसे जान पड़ते हैं जैसे भगवान कृष्ण के मुख कमल से मूर्तिधारी वेदों के अक्षर निकल रहे हों। बालकों को प्रत्येक घरों में मातायें गोद में उठा रही हैं। प्रात:काल की समुपिरधित में पिन्हाव ते थनों वाली गौरं भी उठकर खड़ी हो गई हैं एवं बार-बार रंभाती हुई अपने बछड़ों को दुध पिलाने के उतावलेपन को प्रदर्शित कर रही हैं। तमोगुणी व्यवहार वाले अन्धकार के अनुयायी उन्क आदि पक्षी जो अभी तक अपने को सुपल समझते थे, वे अपनी दुवृत्ति का दिवान्थता रूप कुपल अनुभव कर रहे हैं। रात्रि प्रातःकाल और के बहाने आंसू बहाती हुई चली जा रही हैं। सुन्दर शरीर में झलकने वाली रूपधारिणी चेतना सी इस

पित्र तोने के पिंजड़े में मंजुल मूर्ति वाली तारिका वेदमार्ग में प्रशंतित श्रवण सुखद पद-पद में मनोहर मंजलमय भगवान का नाम रट रही हैं।

इस प्रकार भगवान कृष्ण ने उष्या-काल के विकास को सुन-सुनकर, शिया को छोड़ दिया । तत्पश्चात् भगवान ने हृदय में अपने ही शुद्ध-बुद्ध स्वरूप का त्मरण किया और बैठ गए । प्रातः का लिक त्नान पूजना दि किया से निवृत, काम के पिता भगवान कृष्ण ने आदेश दिया कि रैवतक पर्वत के उभर प्रिया हिल्लिणी है की वृत किया के उद्यापन की सारी तैया रियां की जांय । इस प्रकार यदुनाथ की आज्ञा या अभिप्राय को समझने वाले परिचारक वृन्द, पर्वत यात्रा के योग्य सब सामिग्रियां स्वं सवारी तथा अन्य विविध उपर्युक्त वत्तुरं प्रस्तुत कर दिए ।

इस प्रकार पारिजातहरण नामक इस काट्य का बीज-नामक दूसरा सर्ग समाप्त हुआ।

तृतीय तर्ग

पारिजातहरण महाकाच्य के तीसरे सर्ग में द्वारिका से रैवतक पर्वत की यात्रा का वर्णन किया गया है बाद्यिप यह कोई विशेष्ट्र यात्रा न थी, किन्तु यह रीति थी कि महाराजों की सपरिवार यात्रा ससैन्य ही होती रही अतः किव ने प्रस्तुत सर्ग में मणवान कृष्ण की इस यात्रा का सांगांगांग वर्णन किया है। इसके साथ ही समुद्र का वर्णन भी इसी सर्ग में मिलता है।

शत बीत जाने पर सभी सामग्रियों सहित अन्तः पुर की रानियों को बिठा कर स्वजनों के साथ रैवतक पर्वत पर जाने के लिए भगवान श्रीकृष्ण रथ पर सवार हो गए। उसी समय विद्वान ब्राह्मणों का मण्डल यात्रा की सिद्धि के लिए मंगल पाठ करने लगा और मुदंग आदि मांगलिक बज उठे। तत्पश्चात् भगवान श्रीकृष्ण क्रम से दलबन्दी के साथ सजे सैनिकों से युक्त हो सारथी के साथ चल पड़े। उनकी तेना में तैनिक गति ते चलने वाले पैदल घोड़े. रथ, हाथी विविध प्रकार के बाजे आदि सभी थे। भगवान कृष्ण का यह यात्रोत्सव असंख्य का बुली घोड़ों से अत्यधिक शोभित हो रहा था । पैरों में जकडी लौह श्रृंखना से भी जिसकी गति में सरलता नहीं आ रही है अत्यन्त भीमकाय वाले मद की वर्षा करती हुई धनधटा के तमान गर्जों की घटा चल पड़ी। इस प्रकार सारे जगत का अभिनन्दन प्राप्त करता हुआ पुष्य नामक रथ भगवान यदुनन्दन श्रीकृष्ण को ले चल पड़ा । रथ के घोड़े ऐसे चल रहे थे मानो पृथ्वी पर पांच ही नहीं पड़ते उपर ही उमर उड़े वले जा रहे हों। पर्वत पर बैठे सिंह के समान उसे सजे रथ पर बैठे भगवान कृष्ण विशेष उत्सुकता से नगर से पहाड़ तक पहुँचने की याह में चलते कौतुक से चंचलमुग के समान चपल चेष्टा वाले लोचनों से शो भित हो रहे थे।

भगवान कृष्ण के एक-एक उपकरणों का पृथक-पृथक वर्णन बहुत ही सुन्दर ढंग से इसी सर्ग में किया गया है।

> "नभित भूरिविभातित भारवतोऽतित विभेडनुवकार स्वे श्रयम् । लितित कौरतुभकस्य तते हरेसरित तस्य तितस्य मणेश्वछवि ।।"

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - तृतीय सर्ग - 17

गले से लटकती वनमाला तथा कौ मोदकी नामक गढ़ा से भगवान कृष्ण अतुलनीय शोभा को प्राप्त हो रहे थे। भगवान के करकमल को शोभित करने वाला चक्र तारे शत्रुओं को कंपाता हुआ भगवान की तौ गुनी शोभा बढ़ा रहा था। हैंस की समानता करने वाले भगवान कूटण के कर कमल में शो भायमान भांख, कान्तिहीनों को अपूर्व कान्तिशील बना रहा था और भी भगवान कृष्ण के कर कमल पर शोभगान कमल को देखकर किसका हृदय अधिकाधिक मोद से भर नहीं आता । भगवान के ललाट पर स्फ़रित होते हुए केशों के उधर मुकूट भो भित हो रहा था । दैदी प्यमान रत्न जाल ते जड़ा हुआ कवच धारण किए हुए भगवान का अरीर नाना प्रकार के पूर्वों से लदे लताओं के जाल से आच्छा दित श्याम-तमाल तस्वर सा दिखाई दे रहा था। भगवान के कानों में हिलता मकर के आकार का कुण्डल शोभित हो रहा था सोने की कड़ियाँ पर चढ़ा, नाना-प्रकार के रंग-बिरंगे मणियाँ से जड़ा भगवान कूष्ण का मेघडम्बर छत्र सर्वथा अतुलनीय था । भगवान कृष्ण का तेजस्वी तथा सर्वहित शयाम शरीर अत्यन्त विमल तथा बहुमूल्य पीताम्बर से ढका बिजलियों से युक्त मेघों से ढके आकाश की शोभा वा रहा था। अपने शरीर का प्रभा से परम शानित प्रदान करने वाली अमृतमयी कान्ति सबकी आंखों में बरसा रहे थे। अनुपम शीभगान सुन्दर कृतियाँ ते युक्त तथा स्वाभाविक गौरव ते शाभित उन भगवान के ताथ अतुलनीय अग्नि ते तेजस्वी सुकृतियों का वृन्द, सुन्दर स्वर में यशोगान कर रहा था । भगवान श्रीकृष्ण ने जयजयकार के नारे लगाती हुई दर्शक जनता को सादर लौटा दिया और सारथी को शीघ्र पहाड़ पर पहुँच जाने के लिए आज्ञा दी उस वेगशाली रथ ने भगवान को बिना रोब-टोक दुर्गम पर्वत पर शीघ्र पहुँचा दिया ।

"भगवान कृष्ण अतुलनीय शोभा धारण करते हुए उस रैवतक पर्वत को देखीन लगे' जो नए निकले अंकुर पल्लव व पूले पलों से लदी लताओं के जाल से धिरा था । वह पर्वत परम पूज्य प्रभुत्वशाली उस भगवान कृष्ण को समीप से अध्य देता सा दिखाई देने लगा । विटपों पर बैठे विहंगमों के नामा प्रकार के मनोहारी कल कूजनों के द्वारा वह पर्वत भगवान का स्वागत भाष्मा कर रहा था । लता अंकुर कलिकाओं के द्वारा पुलकित हुआ वह पर्वत भगवान के समागम से उत्पन्न हर्षातिरेक को सूचित कर रहा था । अपने शीतल, भिन्न-भिन्न गन्धवाही मनोहर वायु से भगवान के हृदय को आकर्षित कर लिया । उस पर्वत पर कहीं-कहीं स्थान-स्थान पर छल-छल करते इसने वह रहे थे, कहीं स्वच्छन्द मदमाती विहंगमण्डली यह-यहा रही थी, कहीं भाँति-भाँति के वृक्षों की श्रेणियां थीं । जिस पर्वत की उपत्यका समुद्र की उँची उछलती तरंगों से टक्कर लेती झलक रही थी तथा अधित्यका से इर-इर करने वाले इसने इर रहे थे । पर्वत की गुफाओं में किन्नरगण सानन्द गाना गा रहे थे । देवताओं की कीड़ा स्थली होने से सुमेर पर्वत, अपना अन्यत्र असाधारण गौरव रखता था ।

भनी भाँति तोरण ध्वजा-पताका आदि ते स्जाये गए तने तम्बू वाले उस शोभा-सम्पन्न पर्वत पिछंर पर भगवान सपरिवार आ पहुँचे । पिछर पर पहुँचने के बाद भगवान सपरिवार रथ से उतरे । भगवान ने कुछ दूर तक प्राकृतिक पहाड़ की विष्म भूमि को अपने सुकोमल पाँवों से ही पार किया ।

इस प्रकार क्रम से भगवान कृष्ण बिना प्रयास रमणीय तथा विशाल गिरि शिखर पर पहुँच कर दूसरे तमुद्र के समान दुर्गम, अपनी शतु वारणी सेना के पड़ाव में प्रवेश कर गए ।

चन्द्रवंश के भूषण भगवान को गिरि शिखर पर बैठे देख जोरों में लहराता हुआ तमुद्र मानों लहरों के बहाने बढ़े आनन्दोल्लास में उछलने लगा । ताराओं के समान प्रस्पुट पेन भंगों को तथा उसी रूप श्रेष्ठ उनेत शंखों एवं सूक्तियों को धारण करता हुआ समुद्र ऐसा जान पड़ता था जैसे जल के ब्याज से पृथ्वी पर पड़ा आकाश का कोई एक भाग हो। भगवान कृष्ण ने रस के आधिक्य से गर्वित हो बहने वाली तथा राग के आधिक्य से गर्वित गिरती लड़खड़ाती समीप में आई उत्सुकता से भरी नदियों को भुजाओं के समान तरंगों से अपनी गोद में भरते हुए से समुद्र को देखा।

"हे ईश । संसार में जब तक आपका प्रसाद रूप अभ्युदय है, तब तक
मैं समुद्र अर्थात् मुद्रा सहित रका हुआ हूं अन्यथा बिना मुद्रा के १ वे रोक१ अपने
पृबल प्रवाह से सारे पृथ्वी को बहा देता ऐसा ही आप मुझे जानिए। "
अपनी विश्वुख्य हो जारों से उठती लहरों के इशारे से इस प्रकार अपने महत्व
को सूचित करते तथा जलते बडवानल की ज्वालाओं से जटिल अनन्त जलराशि
से भासमान समुद्र को देखा। उस समुद्र में कहीं कहीं लीला से जलराशि पान
करते हुए तथा उतावली उठती लहरों पर उच्च डूब खेलते हुए निर्भयता से मन्दमन्द रेंगते हुए बड़े-बड़े मीन् मुखलियों १अवतार भूत महामत्स्य की विडम्बना
कर रहे थे। कहीं भवर राशि चक्कर खा रहे थे। तरंगरूप मुजाओं को
पैलाए, दण्डवत सर्वाण से पृथ्वी पर पड़ा गम्भीर ध्वनि के बहाने स्तृति पाठ
करता हुआ समुद्र मणवान कृष्ण के प्रति साष्टाण प्रणत सा दिखाई दे रहा था।
घनी जलराशि से भरा शासमान यह समुद्र सौ - सौ हर्षध्विन के साथ मानों
उछल रहा था।

इस प्रकार कवि उमापति विरचित पारिजातहरणमहाकाच्य का संस्कार नाम का तीसरा सर्ग समाप्त हुआ।

चतुर्थ तर्ग

पारिजातहरण महाकाच्य के चतुर्थ सर्ग में समुद्र के कुछ वर्णन के बाद रुक्मिणी के यज्ञ का विशव वर्णन मिलता है।

प्रस्तुत सर्ग में समुद्र के बारे में कुछ इस प्रकार का वर्णन मिलता है कि जो हमारा तनातन रहने का स्थान है तथा स्वयुक्ट धीर एवं गम्भीर रूप में सारी पृथ्वी को चारों ओर से घेरकर स्थित है। अपना असीम गौरव रखता हुआ भी जो मर्यादा का अतिक्रमण नहीं करता एवं परस्पर टकराती लहरों के कोलहाल से सारी दिशाओं के मुख को भर के वर्तमान है। जो तटवर्ती घनी छाया से आच्छादित दोनों प्रान्तों के बीच आस-पास दोनों ओर से छाए घने बादलों से घिरे, प्राप्त आकाश के समान दिखाई दे रहा है। जिसका कोलाहल अनुक्ष्म बद्गा जा रहा है ऐसी लहरों की परम्परा से शोभित तथा भानितशील के समान जल में उठी मंवरों के रूप में चक्कर काट रहा है तथा रंग-बिरंगे रत्न एवं जल जन्तुओं से चित्रित आश्रय वाला है। इस प्रकार अपने वंश के मूल पुरुष, चन्द्रमा तथा प्रिया लक्ष्मी के पिता होने से उस पुरातन पयो निधि को भगवान ने अधिक हर्ष से सम्मानित किया ज्यों कि सारी सुष्टिट का आदिभूत महान आश्रय वाला अधिक सम्मान के योग्य, पूर्वजों की भी पूजा प्राप्त करने वाला ये तमुद्र विशेष रूप से श्लाधनीय है तथा तीनों काल में जिसका ह कभी नाश नहीं होता । जो प्रलय के आश्रय भूत भगवान का भी निवास स्थान है। भगवान कृष्ण ने प्रेमप्रवाह के तमान उसके जल प्रवाह के भीतर से उठी तरंगों का भक्ति पूर्वक, हृदय तथा तिर ते भी आ लिंगन किया । भगवान कृष्ण चन्द्र इस समुद्र से निकलते चन्द्रमा के समान दिखाई दिए ।

इस प्रकार सेना तथा परिवार तहित समुद्र का अवसाहन करके भगवान ने रुकिमणी जी के वृतोद्यापन का विधान करना प्रारम्भ किया। विधियों के पूर्ण ज्ञाता, वैदिक ब्राह्मणों को बुलाकर शास्त्र के अनुसार, कूण्ड, मण्डल वेदी आदि बनवार । कारीगरोँ द्वारा अनेक तुन्दर विभिन्न रंगशाली चांदिनयां सजायी गई तथा चारों और स्वर्ण के बने केले के खम्भे खड़े कर दिए गए। यज्ञ-मण्डप शंख, चक्र, गदा, पदम से चिहिनत था तथा मणियों की इालरों वाली यवानिकाओं से दका था। उस मण्डप में स्थान-स्थान पर सोन के पूर्ण कलश स्थापित किए गए थे। यज्ञ देखेने की इच्छा से कुछ लोग दिग्दिगन्त से बुलाए गए थे कुछ स्वयं आए थे। उस समय वह स्थल त्रिलोक के ऐश्वर्य का अतिक्रमण कर रहा था । उस रेशवर्षशाली स्थान में समासदों, अतिथियों. कर्मचारियों के अतिरिक्त दर्शकों की भी अपार भीड़ थी। तब तक ही परिष्कृत मार्गों ते शोभित उस पर्वत का भाग दिखाई दिया । यह विधि सम्पादनार्थ आए महापुरवों के तत्कार में तारे यद्वंशी व्यस्थ थे तथा उत्ताह से भरी तेना, दैत्यादि, विध्नकारियों के वारण के लिए खड़ी थी। इस प्रकार इस पर्वत पर यज्ञ स्वरूप भगवान के द्वारा अधिकार प्राप्त कर रुकिमणी जी यज्ञ करने के हेतु प्रस्तुत हुई।

प्रस्तुत तर्ग में यज्ञ की इतिकर्तव्यता पर भी प्रकाश डाला गया है -

मत्यूंलोक वासी मानवगण पृथ्वी से उपजने वाले अन्न रसादि रूप सम्पत्ति से तृष्ति पाते हैं किन्तु स्वर्ग लोकीय अट्रूष्ट देवगण की तृष्ति के लिए नियम रूप यज्ञ ही हैं, जो वेदों के द्वारा शिक्षित हैं। यह यज्ञ वेदों से अनुशासित एक कर्म विशेष्य है। सत्पुरुषों ने सतत् इसका अनुष्ठान किया है, इसलिए इसकी सफलता सिद्ध है। अतः रुक्मिणी जी का यज्ञ प्रस्ताव सहेतु है। यज्ञरूप कर्म की सफलता को प्रमाणित करता हुआ किव कहता है कि अनन्त कर्मों के होते हुए भी ये तीन रिशियों में बंटे हुए हैं जैसे – द्विष्ट, इष्ट तथा उदासीन। सिद्धान्तः इनके पल भी वैसे ही होते हैं। कर्म के अनुसार दिख्ट

आदि पल भी तीन राषियों में बंटे हुए हैं। सत्पल के विचार से जिसके करने की आज्ञा प्राप्त है वहीं इष्ट कर्म है तथा कुफ्ल के अनुसन्धान से जिसके करने की मनाही की गई है उसे द्विष्ट कर्म कहते हैं तथा हित और अहित दोनों से रहित पल की भावना से जिसके करने की कोई आजा या निषेध नहीं है वह उदासीन कहा जाता है। यज्ञों को ही इष्ट कहते हैं अतः यह इष्ट कर्म मनमाने दंग ते नहीं होने चाहिए अपित उसके विधान साधन शास्त्रीकत हैं। इच्छा विषय होने से सुख को भी इष्ट कहते हैं। उन शत्-शत् सुखों को यह यज्ञ ही फ्लते हैं। विधि होते हुए भी मन की प्रेरणा ते ही इन कर्मों में प्रवृत्ति होती है। यह विहिता-विहित साधारण कर्म जैसे अनन्त हैं. उसी प्रकार उनके फ्लस्वरूप भोगों की गणना नहीं है किन्तु इन्हीं कमों के प्रयोजनीभूत फ्लस्वरूप भोगों के विषय में जिनकी बुद्धि पूरा काम नहीं देती ऐसे लोग निषिद्ध कर्मों को भी कर बैठते हैं किन्तू कर्मों के परिणाम तक ठीक पहुँचने वाली जिन विदानों की बुद्धि होती है वे इष्ट सुख प्राप्ति के लिए इन यज्ञों को ही अपनाते हैं क्यों कि अन्ततः कर्मों के ही दारा-संचार की गति नियमित है। कर्म स्थून और सुक्षम दो प्रकार के होते हैं। स्थून कर्म लोक धन्धे जिनका भोग्यपल यहीं प्राप्त हो जाता है। जैसे भोजन बनाया खाया क्ष्या निवृत हो गई । सुक्ष्म कर्मों का पल प्रत्यक्ष नहीं ज्ञात होता । मानस व्यापाररूप, जप, तप, उपासना आदि अनेक हैं। दुष्ट पल साधक तथा अदुष्ट पल साधक, इस प्रकार यह कर्म ऐहिक, आमुष्टिमक नाम से भी दो हैं। इस शरीर के लिए क्षेडिक तथा अमर आत्मा की अपर स्थिति के लिए आमुष्मिक १पारलौ किक१ कर्म हैं। यह कर्मत्वभाव से ही शरीर मन, वाणी के द्वारा किसी न किसी रूप में होते ही रहते हैं। "नहिक विचतक्षणमि जातु तिष्ठत्यकर्मकृतकायतिह्यवद्यो जन्तुः सर्वः प्रकृतिजैगुणिः । " पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश इन पांचों तत्वों के सूक्ष्म अंशों से सम्पन्न हुआ यह यागांग हवन से उत्पन्न धूम, रस रूपजल देने वाला मेघ बन जाता है उन्हीं निजी रसों को बरसाकर भूमि रसादि रूप में परिणत हो ओध्यी रूप अन्नों को उत्पन्न कर

प्राणी के दीर्घ जीवन को बढ़ाता यह यज्ञ प्रत्यक्ष ही सुखद लिक्षत होता है।
"पुत्यक्षेकि थियो " मूढा इहत्यप्लिलि प्सवः।
बहुच्या प्रिय माणाश्चय शॅल्लभन्ते न सर्वदा ।।"

ऐसा जानकर ही शास्त्रीय विधि वाक्यों द्वारा बोधित देवताओं की वृष्पित याहती हुई रुक्मिणी यह में तत्पर हुई क्यों कि उसी को अमृत कहा गया है शुभमतन्नामयतू सन्तोमन्त्र जिहेणुजु जुह्वति श्र्या में प्रवृति हुई रुक्मिणी जी ने सभी वेदों के ज्ञाता ऋत्विक्गणों की बतलायी विधियां, अंग पूजा आदि के साथ आरम्भ कर दी । देवताओं की प्रसन्नता के हेतु अग्निदेव को सबसे अधिक वृष्त किया । यज्ञान्तस्नान के पश्चात् रुक्मिणी जी ने यथेष्ट दिशा दे ब्राह्मणों तथा अन्य सुहृद बान्धवों एवं अन्न याहने वाले नंगिन्सूंबों को भी संतुष्ट किया ।

इस प्रकार उस रैवतक पर्वत पर दो तीन दिन तक बड़ी पहल-पहल थी। इच्छानुसार यह पूरा कर, त्रिलोक को आनिन्दत करके हर्षाधिक्य से विकिततमुखी उस स्विक्षणी जी को देवताओं ने सप्रेम अभिनिन्दित किया। इस प्रकार आनन्द लक्षणों से अपनी कृतार्थता व्यंजित करती हुई रुक्षिणी जी प्रसन्तता से शोभित मुख वाले अपने पतिदेव की सेवा कर रहीं थीं और भगवान कृष्ण काँख में तिकिया रख मधुर मुस्कान की पाँदनी से अन्तः पुर के अवकाश को प्रकाशित करते, एकान्त में निःशंक प्रेमालाप में परायण पलंग पर पड़े, अनेक योद्धाओं को पराजित कर इच्छानुसार अपने हर लाने की गाथा सुना रहे थे तब तक आकाश मार्ग से देविर्षि नारद पहुँच आर । तब भगवान कृष्ण ने उनके चरणों पर सिर रख दिया।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - चतुर्थसर्ग - 50

मुनिनारद ने तिर झुकाये भगवान को उठाकर हृदय ते लगाया और उनके दिस् आतन पर बैठ भगवान को भी स्वयं आतन पर बैठाया । भगवान कृष्ण सुख्द आतन पर आतीन मुनिवर नारद का अतिथ्य तत्कार करने लगे क्यों कि अतिथि तेवा में बढ़कर गृहस्थ का दूसरा धर्म नहीं है ।

इस प्रकार देवाराधन से प्राप्त बुद्धि से प्राप्त बुद्धि से अपने आश्रितों को आनन्द पहुँचाते हुए कवि उमापति द्वारा रचित इस पारिजातहरण महाकाच्य का शुद्धि नामक चतुर्थ-सर्ग समाप्त हुआ।

पैचमसर्ग

पारिजातहरण महाकाच्य के पंचम तर्ग में नारद के द्वारा भगवान-कृष्ण की स्तुति की पथि प्रसंग के द्वारा प्रयाग-गंगा का तथा पारिजात पुष्प का नारद के द्वारा भगवानकृष्ण को उपहार रूप में देने का वर्णन किया गया है।

"पुरु के अतिरिक्त इस वंश में कोई भी राजा मूर्धा मिष्कित न होगा" इस प्रकार का जो ययाति का शाप था अपने कमण्डल से निकाले तीर्थ जला मिष्कि से मानो नारद जी ने उसका उद्धार किया — भगवान के इस आदर से तिर झुकाकर उस अभिष्केक के गृहीत कर लेने पर मुनिराज बोल पड़े —हे प्रभो ! निजभक्तों के प्रत्यक्ष उद्धारार्थ आपने ऐसा सर्वा त्कृष्ट दिव्य अवतार धारण किया । जाति इजन्म आकृति किया गुणों से आपका कोई वर्णन नहीं कर सकता । आपके कृपानुरोध निरोध के द्वारा संसार में यह आश्रचर्यात्मक लौकिक व्यवहार रूप नाटक प्रकृति से सजा हुआ है । यह तत्वा त्मिका जुड़ा प्रकृति यामाया आपके अनुगृह के बिना हटायी नहीं जा सकती । आपकी ऐहिक लीला भी प्राकृतिक नियमों से रहित सर्वधा स्वतंत्र है । अतः आपका

सर्वोत्तर प्रभुत्व लौ किक व्यवहारों में भी छिप नहीं सकता । आपने मछली बनकर वेदों का उद्धार किया । कछुआ हो कर पृथ्वी को पीठ पर धारण किया सूकर हो पृथ्वी को फैलाया सिंह बनकर हिरण्यकिष्ठापु जैसे अजेय दैत्य को मारा, वन, त्रिलोक को दो पग में ही नाप लिया । तपस्वी ब्राह्मण का अवतार धारण कर बहुत बढ़े हुए क्षत्रिय को मार उजाड़ डाला फिर स्वयं क्षत्रिय राम हो कर अपने अवतार उस परशुराम को पराजित कर दशमुख रावण को समूल उजाड़ डाला, आप किसी प्राकृत नियम के पराधीन नहीं अपितु सर्वधा स्वाधीन हैं । यही आपके अवतारों का रहस्य है ।

हे भगवन् ! इस पृथ्वी आदि पंचभूत का आदिकारण आपकी असाधारण इच्छा ही बतलाई गई है । हे तटस्थ ! किसी भी वृत्ति में आस्था न रखने वाले आपके वह प्राकृतिक दिलास हैं । हम सभी आपकी क्रीड़ा के साधन हैं । आप निर्लेप, इच्छा, देषादि रहित हैं । आप संसार के जीवों को जब तक उपेक्षित किस रहते हो, तब तक ये संसार में आते जाते बन्धनों में पड़े रहते हैं । जब आपकी इच्छा से ही आपकी दृष्टिट के वे लक्ष्य बन जाते हैं तब बन्धन रहित मुक्त हो जाते हैं । यही उनका मोक्ष है ।

अब प्रस्तुत निवेदनीय यह है कि सरस्वती नदी के तट पर इस तंशय
प्रजाओं के पिता कश्यपजी तीव्र तपस्या में लगे हुए हैं, इसी बीच इन्द्र की
माता सती आदिति के कुण्डल भौमासुर हर ले गया है जिससे देवेन्द्र सम्प्रति
बड़े शोक में पड़े हैं और उन्होंने आपके पास यह विशेष्ठ सन्देश्रे भेजा है कि
जिनके सहारे ही हमारे सभी मनोरथ उगते हैं रेसे जगत् के अन्तरात्मा भगवान
कृष्ण से कहना जब तक तपस्या में लगा हूं बाहरी भार तुम्हारे उसर है।
देवराज इन्द्र भी आपके सुदर्शन चक्र के पराक्रम को चाह रहे हैं और असुरों का
विग्रह भी आपका स्वाभाविक कार्य है।

समय के ठीक परिज्ञान की इच्छा से मुनि नारद से भगवान कृष्ण पृष्ठ पड़े, हे ऋषि ! कहिए किस मार्ग से होते सरस्वती तीर से आप यहाँ पहुँचे । इस पर नारद ने कहा -- "सरस्वती के तटवर्ती प्रदेशों को देखने की इच्छा से इसके तीर के मार्ग से जहां यह गंगा-यमुना से भीतर ही भीतर आ मिलती है उस प्रयाग क्षेत्र तक आया । कहीं तो यह सरस्वती मनोहर, जलप्रवाह वाली मन्द गति ते बह रही थी कहीं इसकी गम्भीर ध्वनि हो रही थी. कहीं उतावली सी लहरें उछाल रही थी। स्वयं लाल रंग की होते हुए भी अपनी तीर वर्तिनी जनता में विरागों को भरती जा रही थी। अपने में राय तथा संसार में विराग उत्पन्न करने वाली इस अनन्त शक्ति वाली सरस्वती की शोभा देखता हुआ मैं तीर्थराज प्रयाग में आ पहुँचा । जिस प्रयाग में यह देव नदी गंगा कलिन्द पुत्री यमुना तथा इस सरस्वती से संगत हो त्रिवेणी रूप में अनन्त महातम्य युक्त अपूर्व शोभा धारण कर रही है। इस प्रयाग भूमि में सूर्य पुत्री यमुना की धनी नील तरंगों से आकान्त तथा लाल रंग में तरंगित सरस्वती को अंक में लिए स्वभाव से ही उवेत वर्ण वाली गंगा शो भित हो रही है। यह एक और संसार की प्रकृतिजन्य मिलनता ही यमुना है और दूसरी ओर उस परम् पुरुष की श्वेतिविभृति ही गंगा है। इनके पदारविन्द की प्रेमिका यह सरस्वती इन दोनों को संहित कर रही है। संसार के उद्भव हिथति प्रलय को करने वाली, जो त्रिगुणा तिमका प्रकृति है, वही त्रिवेणी के रूप में प्रवाहित हो रही है। अपांग से विशद श्वेत तथा एक देश से लाल. म्मर के समान नीलकनी मित्र वाली ईश्वर की दृष्टिट रूपणि इसे नमस्कार है अथवा महावर से रंगे पैरों पर पड़ती देवांगनाओं के केशभार की कान्ति से भरे अम्बिका में श्वेत चरणकमलों की कान्ति के समान इस त्रिवेणी को नमस्कार है। नीलमणि मुँगे तथा मो तियों की यह माला प्रयाग-भूमि को सर्वतः शोभित कर रही है। ऐसी श्वेत रंगवाली भारतभूमि के अभ्युदय की उत्पत्ति भूमि यह भव्यरूप भगवती त्रिवेणी भूत गंगा है । जिसने नारायण के नील चरणों का शासन किया. जिसने पितामह ब्रह्मा के पवित्र कमण्डल को

भरा तथा जो शिष्य के जटा मण्डित तिर पर सवार हुई । जिसके लिए सारे देवता स्पृहा करते हैं जिसके लिए भगवान गंकर भी पार्वती कृत अवमान जा सहन करते तथा सगर की सन्तानें जिसके लिए कर्तव्य का आदेश देती हैं, वहीं गंगा यह तरणि तनुजा यमुना और सरस्वती से युक्त हो शोभित हो रही है । जिससे पृथक कोई पावन वस्तु नहीं, जिससे अतिरिक्त कोई मनोहारी नहीं वही यह ईश्वर के अनुकम्पा पात्र जगत की भाग्य विभूति है । जिसका शुभ दर्शन अखिल अनथों का हरने वाला तथा एक बार भी किया स्पर्श सकल पापपुंज्ज का विनाश करने वाला थोड़ा भी दिया अवगाहन संसार के जन्म मरणादि दुःखों को छुड़ा देने वाला होता है । वही यह त्रिवर्ग १ धर्म, अर्थ, काम को देने वाली विधाता की सुविधा है । कालदोष तथा सारे दुःख भार को दबाये हुए बंचित पूर्ण पुण्यों द्वारा प्राप्त होने योग्य इस त्रिवेणी का अवगाहन कर आपके चरणों के दर्शनार्थ आकाश मार्ग का अवलम्बन कर यहाँ आया हूँ

देवर्षि नारद ने इस प्रकार अपने आगमन को सूचित कर भगवान के
प्रेमोपहार के लिए अपनी कॉल में बंधी झोली से निकाल, सौरम से सारी
दिशाओं को प्रमोदपूर्ण करते हुए अत्यन्त ही चमकीले पारिजात पुष्प को हाथ
में लिया । नारद के हाथ में आया यह पुष्प उस समय मानो कहीं से ले आकर
अपूर्व सौरभ उड़ेल दिया जिससे उस घर के भीतर सभी जलों के मानस प्रफुल्ल हो
मोहक आनन्द में विभोर हो उठे।

इस प्रकार कवि उमापति विरिधित पारिजातहरण महाकाच्य का उपित नामक पंचम सर्ग समाप्त हुआ । पारिजातहरण महाकाच्य के घ्रष्ठवर्ग में पारिजात पुष्प की विशेष्ट्रता के निरूपण तथा पुष्पदान का वर्णन किया गया है। साथ ही रुक्मिणी के द्वारा पुष्पलाभ तथा नारद के द्वारा रुक्मिणी की प्रशंसा और उसके उत्तर के प्रशंग से रुक्मिणी के द्वारा सती धर्म का निरूपण भी किया गया है।

इस का व्य का मुख्य विषयप पारिजात पुष्प का निरूपण ही है।

प्रम्तुत सर्ग में पारिजातपुष्प का वर्णन किया है कि उस पारिजात पुष्प की

चित्र को लुभाने वाली अकथनीय का नित ने उस विशव दर्शनीय स्विमणी सहित
भगवान कृष्ण की आंखों को भी सतृष्ण कर दिया । तब नारद भगवान कृष्ण से बोले —— "हे भगवन् मेरे दिए इस पुष्प रूप र उपहार को आप स्वीकार करें। इतना कहकर नारद जी ने इस त्रिलोक गुरू भगवान कृष्ण को पारिजात का पुष्पसमर्पण किया । उस सुन्दर पारिजात पुष्प को भगवान को समर्पित करके उन्हें प्रसन्तता से पूर्ण हुए देख देविष्ठ नारद जी ने कहा-है भगवन्।परम् प्रभावशाली आपके सिवा पृथ्वीतल के रेशवर्य भोगने वाले किसी दूसरे लोगों के योग्य यह दिव्य पुष्प नहीं हैं। यह पुष्प न तो कभी कुम्हलाता है न कभी इसकी गन्ध उड़ती है। जीवों के मन की सभी अभिनाषाओं को पूर्ण करता है। सौभाग्य को चमका देता है तथा पुष्पों का उदय करने वाला है। इसकी शोभा कभी नहीं घटती। दुःखी चित्र को भी पूर्ण सुखी कर देने वाला यह त्रिलोक में अनुपम है। स्वर्ग में भी इसके समान दूसरा पुष्प नहीं है।"

सुनि के इस प्रकार कहते ही रुक्मिणी की उत्सुकता भरी आर्थें एक अतिरिक्त पुरुष के समान उस पर प्रतिविम्बित हो उठीं। सम्पूर्ण अभीष्टों के देने वाले इस सन्तान पुरुष को भगवान ने प्रेमोपहार के रूप में स्विक्मणी को दे दिया। उदार स्वभाव वाली रुक्मिणी हर्ष्णाभिष्टेक के समान पति का पुरुष रूप प्रसाद पाकर जल सेक को प्राप्त कर आनन्द में उल्लिसित हो उठीं। भगवान कृष्ण के दिए उस रूपवान प्रेम के समान पुरुष रूप उपहार को सिर इका हृदय से लगाकर कमल रूप पात्र में लेती उस पुष्पराज को लेकर सिर पर यदा हृदय से अभिनन्दन करके उन श्री रुक्मिणी से देविष्ठिं नारद ने विशेषता पूर्ण वयन कहे – इस नारायण की आठ पटसा नियों जो सांख्यशास्त्र प्रतिपा दित आठ प्रकृतियों के समान हैं उनमें प्रधान मूल प्रकृति आप ही हैं, इस निश्चय को आज भगवान ने सत्य कर दिखाया । इनसे दिया अभित मात्रा में यह सौभाग्य आज तुमने ही प्राप्त किया ।

इनके महत्व का वर्णन करते अधिराज नारद ते रुविकणी यों बोल उठी
" हे मुने में आपकी शिष्या, इन भगवान की तेविका हूं इससे बढ़कर मेरे सौभाग्य की सूचना दूसरी क्या है । यदि आपके आशीर्वाद से सर्वेश्वर भगवान के चरणा कमलों की सेवा का अवसर मुझे प्राप्त है तो पृष्ट्वी तल में जन्म लेकर भी मैं इस पृष्ठप की तो बात क्या सारे देवसौराज्य को भी तृण के समान तृच्छ मानती हूँ। हे नारद ! त्रिलोक में जो कुछ भी पृष्टिपत कितत है या स्थिर, विकासयुक्त एवं हर्षित है वह सभी क्षत्रियों के लिए पित सेवा ही प्राप्त है । अपने पित से अलग सारे जगत को भी जो कुछ नहीं समझती ऐसी सतियों के लिए यह त्रिलोक आनन्दमय हो उठता है । पित के प्रसन्न हृदय रहने पर हृदय से हिर्फित रहने वाली जो अपने पित के प्रसादरूप सुखों में स्वर्ग-नरक को भी समान ही मानती हैं तथा जो नित्य अपने पित गित का ही अनुसरण करने का निश्चय रखती हैं । इस प्रकार केवल पित के एकमात्र प्रेम मात्रगुण की चाह रखने वाली वही स्त्री है । हे अधिवर यह मेरा कथन आत्म प्रभंता परक नहीं है यह तो मैंने सितियों की साधारण स्थित बतलाई है ।

इस प्रकार रुक्मिणी देवी की यही अपने अनुरागम से रंजित चित्तवृत्ति को सुनकर सभी गुणियों से प्रशंसित रीति वाली उस रुक्मिणी में नारद जी ने आत्यन्तिक भिक्त दिखाई । नारद ने कहा – हे चितिद्धे। तू महान ईश्वर को भांपने वाली माया है। इस परम्पुरस्थ को यदि तुम चेतना न दो या अपने गुणों से लिप्त न करों तो यह निर्मुण पुरुष अपनी गति से किसी को वर्णित नहीं करा सकते । सबकी चेतना की मूलाधार तुम्हीं हो । गुणलिंग आदि उपाधियों से रहित गुद्ध ज्ञान रूप परम् ईश्वर स्वरूपिणी तुम्हीं हो । तुम्हें कोई प्रकृति कहते हैं । कोई परमेश महिष्यी पराम्बा कहते हैं । भाव यह है कि सर्वशक्ति शालिनी ईश्वरी तुम्हीं हो । सुष्टिट स्थिति प्रलय करने वाले आदि कारण की भूमिका परम् पुराण पुरम्य परमेश्वर की इच्छा अनिवर्चनीय सूक्ष्म शक्ति भी तुम्हीं हो । इसलिए आपके विनोद के लिए यह पुष्प हो सकता है यह तो कोई वस्तु ही नहीं है ।

इस प्रकार कवि उमापति विरिधित पारिजातहरण महाकाच्य का स्थान नाम का छठा सर्ग समाप्त हुआ ।

स प्तम सर्ग

पारिजातहरण महाकाच्य के तप्तम तर्ग में भगवान कृष्ण का पारिजात पुष्प को रुक्मिणी को दान रूप में दे देने ते तत्य मामा के क्रोध का वर्णन तथा नारद तत्यभामा का प्रनोत्तर और तत्यभामा के द्वारा नारद के तत्कार का वर्णन मिलता है।

भगवद्दम्पत्ति के किए अतिशय सत्कार का अनुभव कर सब तापों से रहित मुनिकेष्ठ नारद सत्यभामा के गृह में पहुँचे और आरम्भ से ही सारे वृतान्त को प्रेमपूर्वक सत्यभामा के सन्मुख जा सुना दिया । पारिजात के पुष्पदान से वर्द्धित भगवान के किए अपने को अत्यन्त कटु रुक्मिणी के सम्मानातिशय को सखी के मुख से सुनकर सत्यभामा का मानस मान से भर गया । नाना प्रकार की भावनाओं से वर्द्धित क्रोध की गर्मी से भरी सूर्य के प्रचण्डताप से तथी दिवस की प्रभा के समान उस मनस्विनी सत्यभामा को मुनिवर नारद जी ने देखा । एकान्त नीरव कोप भवन के भीतर क्रोध से भीषण सी दीख पड़ रही थी तथा जिसकी अंग-प्रत्येग की किथा सुख रही थी । क्रोध से भरी मुरारि भगवान की

प्रिया सत्यभामा जब तक मुनि को नहीं देख पाई थी तब तक नारद जी ने समीप पहुँच कर स्तृति पाठ किया । मानवश अपने आपे में न रहकर भी कर्तव्य को पानने वाली सत्यभामा नारद जी के सत्कारार्थ अपने आसन से हट अपने ही हाथ से मुनि के लिए सन्दर आसन दिया । तब नारद उनसे बोले -- हे देवि - आप ही बताएं इस नारायण के साथ आपके सिवा दूसरा कौन है जो गरुहासन पर सवार हो सकी । सारे जगत के भार दोने वाले इस महाप्रभु की जो आपके लिए तमस्त हैं वह और अन्य के लिए कहां तथा वह परस पुरन्ध भगवान कृष्ण भी तुम्हारी तेवा तथा रक्षा इदय से करते हैं। जिसके वश में अपने ऐशवर्य शक्ति से सारे विशव का जो उत्पत्ति स्थिति. संहार कर्तापरम प्रभावर्तमान है. ऐसी जगदीशवरी को कौन सा शह कृपित कर सकता है। आपकी शरीर सुकूमारता की रचना के लिए ही मानोँ विधाता ने अभ्यास करने के हेतू संसार के अनेक प्रकार के तिरित आदि सुन्दर एवं को मल लाखों पूलों की रचना कर डाली । आज वहीं तारी स्त्रियों में मिण ती आप इत प्रकार अतुलनीय रेशवर्य के रहते हुए भी यों उदास क्यों है । तब क्लेश भरे चित्त वाली मा निनी सत्यभामा मुनि नारद के ऐसा कोमल शब्दों में कह युप हो जाने पर रोध से निकलते नि: बवास के दोष से भराई आवाज में अपनी रुचि की बात बोल उठी - हे मुने - तिरस्कार ही जिनके अन्त में फलिव होता है ऐसे मेरी प्रशंसा के लिए प्रयुक्त अपने वचनों से अब अधिक मत दुखाइए । आपके प्रिय कृष्ण में जो मेरा आदर भाव या वह आज मेरा भूम तिद्ध हुआ । तारे विषयों को छोड़, इन पर ही अपने को न्योछावर करने वाली रूप, मुण्याल, चतुरता आदि से सारे जगत् में जिससे बद्कर दूसरी नहीं है ऐसी राधा को कूल क्लंकिनी बनाकर भी आज तक नहीं पृछते । निर्मल, बड़े महत्व का, निरन्तर, स्वार्थ शुन्य प्रेम चंचल चित्तवालों में टिक नहीं सकता । " हे नारद । अपने प्रति उनके सदव्यवहारों से यदि उन्हें स्नेही समझते हैं तो मना आप पर वे स्नेह क्यों न करें, जब वह दिव्य पुरुपोहार उन्हें देख रहे हैं, जिसे पाकर रुकिमणी हर्जातिरेकैं से मत्त हो उठी हैं और आपपति के परम अनुराग रूप भाग को पर्नि

वाली रुविमणी की ही प्रशंसा करें जो आपके उपहार रूप दिए सकल कामना पूरक पारिजात का फूल पाकर तौ भाग्य रूप तेज में फूली नहीं तमाती है। जो एक स्वर्धंवर विशेष से अपने ही द्वारा बलात्कार से हर लाई गई है। वहीं उन कृष्ण को प्रिय होगी हम जैसी माता-पिता से दान स्वरूप दी गई भोग की साधन, गुण रहित स्त्रियों में इनका अनुराग क्यों करें होगा । इसलिए अब वाद विवाद की आवश्यकता ही क्या है १ वे अपना मनमाना करने वाले हैं उन्हें किसी विशेष्ण की अनुमति भी नहीं चाहिए इसलिए हे मुने अब दूसरे ही किसी विषय पर कुछ कहिए। मुझ अभिवयन का जो आपके प्रति कर्तव्य है उसका आदेश दी जिए। आपकी कौन सी सेवा करूँ। क्यों कि आपने अपने चरणों का दर्शन देकर मुझे किसी गिनती के योग्य बना दिया है। "इतना कहकर ध्यानमग्न सी सत्यभामा की आधि बन्द हो गई और उनके आंखों से आंसुओं की धार बह चली वाणी रस्थ गई। ऐसे अवसर पर नारद जी बोल पड़े - देवि । आश्वस्त हों । विधाद न करें । सकलेश्वर नारायण के रहते ऐसी कौन सी वस्तु है जो आपके लिए सुलभ न हो । इच्छा करने मात्र ते ही तारी वस्तुर्ये आपके लिए उपस्थित हैं। अन्ततः आपको भी यही इष्ट है। देविषि तत्यभामा को देख शीघ्र चलने को तैयार हो बोले-अब तो मैं जा रहा हूँ। बिना विशेषकारण के बढ़ी हुई आपकी शोभावस्था बतलाकर, भगवान कृष्ण को ही आपके पास भेज देता हूं, वही अपना हुदय स्पष्ट करें गे। हमारा इस सम्बन्ध में कुछ कहना सुनना व्यर्थ है। ऐसा कहकर नारदजी अपना वां चिछत १परस्पर कलह १ सत्यभामा के द्वारा प्रा होते देख, समवेदना के भाव को सूचित करने के लिए अपनी मुख प्रभा को शोक से आच्छा दित किए हुई भीतर प्रसन्नता से भरे वहां से चल दिए । बड़ी उत्सुकता से मणवान कृष्ण के पास जा सुनने में दुखदाई सत्यभामा के क्रोध को सुनाकर फिर आपके स्मरण करने पर आ जहऊँगा । ऐसी प्रतिज्ञा कर भगवान कुष्ण के नयन कमल की का नित से कलित नारद, आकाश की ओर उड़ चले।

इस प्रकार पारिजातहरण महाकाच्य का अभिरोह नामक सातवा सर्ग समाप्त हुआ ।

अष्टम सर्ग

पारिजातहरण महाकाच्य के अष्टम सर्ग में सत्यभामा के मान को सुनकर श्रीकृष्ण का वहां आगमन तथा उसके मान के स्वरूप का वर्णन किया गया है।

विज्ञान १अखिल तत्व ज्ञान १ के आधार भगवान श्रीकृष्ण सत्यभामा को सही-सही को पयुक्त जानकर विशेष उत्सकता से उन्हें मनाने के लिए उनके घर की और वल पड़े और दरवाजे के पास छिपकर अपनी प्रियतम, की कोप हिथति को देखने लगे। नाना प्रकार के उपचारों में व्याकृत चित्तवाली विधाद भरी अपनी सिख्यों की मण्डली के बीच हिथत सत्यभामा को देखा । किसी रूप रसादि विषयों पर जिसका चित्त नहीं लग रहा है। बराबर निकलते पसीनों की बूँदों को पोंछने से आंखों का अंजन, ओटों की लाली और कपोलों पर बनी चित्र रचना भी जिसकी धुन गई है, ऐसी वह तत्यभामा कोध युक्त टेढ़ी भौँहों ते युक्त मुख को धारण किए दीखें रही थीं। वह सत्यभामा नाना प्रकार के विचारगत संकल्प विकल्प के कारण अत्यधिक मन की अहिथरता पाकर अंग-पृत्यंग के द्वारा सभी भावों के प्रदर्शन से व्यग्नता सुचित कर रही थी । अपने जड़ वस्त्र आ भूषणों में शारी रिक तंधर्ष के कारण कम्पन तथा शब्द हो जाने से उन्हें अपराधी मानकर हैं ही उन पर झिड़क उठती थी तथा कोध से मौहें तानकर कठोर शब्दों में भगवान कृष्ण को कुछ उल्टी-सीधी तुना रही थी । स्वच्छन्दता को रोक देने से कूद सिंग्णी की भाँति लम्बी लम्बी भयंकर सार्ते ने रही थी।

तिख्यों के सन्तत पंखा करने पर भी उसके पतीने का प्रवाह रकता न थां । कभी लम्बी साँसे ले रही थी, कभी चित्त की अनवधानता से नीचे मुँह किए, चरण पीठ पर हैं की अधिकता बताने वाले सांख्य शास्त्र की व्याख्या की संकेत सूचक रेखाएं चरण से खींच रही थीं । कभी ओठों पर अंगुली रख कुछ चिन्तित हो सोचने लगती थीं । कभी आंचल से अपना मुँह दक लेती थीं । अपने भूष्णा श्रृंगारादि से रहित स्वच्छ शरीर वाली सत्यभामा परम हर्ष के समय भी ऐसी जान पड़ती थी जैसे बसन्त के आरम्भ – में पतझड़ हो जाने से डंठलमात्र से बचो लता हो जाती हैं । स्नेह के निधि भगवान कृष्ण आंखों की पुतली के समान प्यारी, अत्यन्त सुकुमारी दुबली उस सत्यभामा को यों विकलता में पड़ी देख अधिक ठहर न सके ।

यद्यपि गुप्त लप से भगवान कृष्ण ने सत्यभामा की सारी परिस्थिति
जानली थी पिर भी अपने को अनजान बनाते हुए बनावटी हंसी से हंसते चिकत
दृष्टित से चारों ओर देखते हुए वक्षस्थन पर बनमाला तथा पीताम्बर धारण
करके सत्यभामा के अनुकूल करने के हेतु योग्य उपचार को चित्त से विचारते
हुए, सत्यभामा के अनुकूल करने के हेतु योग्य उपचार को चित्त से विचारते
हुए, सत्यभामा के अन्तर्गृह में प्रवेश किया । बुद्धिमती सत्यभामा जिनके आने
की कोई सम्भावना तत्काल नहीं थी, ऐसे अपने प्राण बल्लम को सामने देख,
कोध के आवेश में कर्तव्य ज्ञान स्थिर न होने से अभ्युत्थान के लिए न उठ सकीं
न पड़ीं रहीं । अब यह मुझसे क्या पूँछेंग पूछने पर मैं क्या कहूँगी या कुछ
बोलूँगी भी नहीं "इत्यादि अनिश्चित विचारों में वह थीं, तब तक ही
भगवान उनके आसन पर बैठे । तब वह सत्यभामा आसन से उत्तर अलग हो
झुककर नीचे बैठ गई तथा सात्विक शृंगार भाव के उदय से नवोदा के समान
उनका शरीर कांपने लगा । सत्यभामा ने डबडबाई आँखों से उनके चरणों
को अश्रुजल से सींच दिया । यह देखकर भगवान कृष्ण सत्यभामा के दुख से
दुखी हो स्तब्ध से जुप हो रहे और सोचने लगे यह शोक से आकुल है या
अत्यध्यक कोध के कारण संताप बरसा रही है । भगवान इस प्रकार वितर्कणा

कर ही रहे थे कि किनम्ब होते देख सत्यभामा ने उनके हाथ पर से अपनी ठुइडी हटा मुँह फेर लेना याहा फिर कृष्ण ने किसी प्रकार अपने चित्त को सिथर किया और कहा-हे देवि: अब इसके बाद मेरे चित्त को खिन्न न करो यदि तुम मेरी हृदयेश्वरी हो तो प्रतन्तता की जगह यह विष्णाद कैसा १ तुम्हीं अपने मान का रहस्य शीघ्र तमझा दो क्यों कि मैं स्वप्नादस्था में भी तुम्हारे अहित का विचार नहीं करता फिर भी तुम दया दृष्टिट न दिखा क्रोधकर रही हो किसके अपराध पर इस प्रकार विचित्त हो उठी हो । वही बड़े-बड़े भार दोने वाला मैं आज निर्जीव के समान हो गया हूँ । सबकी अधिनायिका हे सत्यभामा! तुम्हें मैं शोकग्रस्त नहीं देखना चाहता तथा इस सन्तप्त दशा में तुम्हें छूने और देखने में, मैं असमर्थ हो गया हूँ । इस समय कृद्ध हुई तुम दुर्गम अद्रिकन्दरा में बहती हुई गंगा के समान भयंकर हो रही हो । अब अपने अपराधी का नाम बता दो उसे मैं एक क्षण भी क्षमा नहीं चाहता । मेरी इन भुजाओं को देखों ये पहक रही हैं और यदि मुझते कोई अपराध हो गया है तो हे हृदेयश्वरी । तुम्हारे चरणों की आज्ञा दोने के लिए यह सिर झुका हुआ है और अंजिल बंधी हुई है ।

तरत हृदय वाले, शृंगार तमुद्र के पारंगत भगवान कृष्ण के मृगाक्षी तत्यभामा को इस प्रकार नई रीति से मनाते हुए पारिजातहरण महाकाच्य का अंकुर नाम का आठवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

नवम सर्ग

पारिजातहरण महाकाट्य के नवम सर्ग में सत्यभामा के मान का विधान किया गया है तथा पारिजात वृक्ष का एक वर्ष तक सत्यभामा के आंगन में लगाए जाने का वर्णन किया गया है।

धीर बुद्धिवासी सत्यभामा इस ,पकार अपने अनुकूल भगवान को झुकते देख, मन में अंकुरित होती प्रसन्नता को तब तक िष्पाकर उदासीन सी ही बनी यों बोल उठीं कि हे नाथ ! जिस पर आपके प्रेम का रंग चढ़ चुका है एवं देविर्धि नारद के लाए पारिजात पूष्प को आपसे प्राप्त कर जिसका महत्व आज बढ़ गया है ऐसी रुक्तिणी के रहते और किसी बिचारी को आपके प्रीति प्रणाम सहन करने का सौभाग्य कहा है । हे ! ईश्वर सभी अर्थ को सिद्ध करने वाले तथा दिव्य कुसुम रूप प्रत्यक्ष वर को देने वाले अपने कर कमल को आनन्द के लिए इस रुक्तिणी को देकर इस समय भारी भार स्वरूप खेद के लिए यह मस्तक अयोग्य स्वरूप में मेरे सम्मुख क्यों झुका रहे हैं तथा पारिजातपुष्ट के पाने से बढ़े प्रभाव वाली रुक्तिणी को छोड़कर मुझे क्यों आदर दे रहे हैं ।

पुरस्व में सामर्थ्य रहे, गुरत्त्व भी रहे समझदारी भी पूरी रहे अभीकट वस्तुओं की प्राप्ति भी हो, सारी सम्पत्ति रहे, अच्छा विवेक भी हो, यह सभी रह सकता है किन्तु उसमें अनेक प्रिय वस्तुओं में एक रसता, समान स्नेह कदापि नहीं रह सकता इसलिए आप जाएं दूसरे के आदर न सहने के कारण उत्पन्न क्रोध वाली स्विमणी को भी मेरे समान दुः खिनी न बनाएं। आपिनित्य उसी एक के अधीन होकर रहें इसमें निन्दा ही क्या है। कौन मला सबके हित का साधन कर सकता है। जन्म से ही बिना मर्यादा के बिहरने वाले आपको दूसरों से निन्दा का भय ही कहां है, क्यों कि अतुलनीय सुनी जाती राधा विषय विरह का मानसिक कष्ट आज तक सह रही हैं। मेरा कोई पूर्व जन्म का कमाया पुण्य था, जिससे इस संसार में जन्म लेकर आपकी माय्या बनी किन्तु अनेकों बुरे परिणाम वाले कुछ अदृष्ट ऐसे थे जिनसे आज अपमान का स्थान भी बन गई। यह आपकी अच्छी प्रीति वाली जो मनाने की रीति है मैं तो समझती हूं किसी छिपे गुण प्रपंच को लक्ष्य कर यह आपकी धून्तिता ही है। मैं जो कहती हूं, यही ठीक है इस कथा से क्या प्रयोजन

जैसी आपकी इच्छा से वैसा ही विचार की बिए इसमें तिनक भी दोषारोप नहीं है। मनोट्यथा से चित्त की असावधानता के कारण समय या आचार के विरुद्ध जो कुछ भी कह गई हूँ उसको क्षमा दें। इस प्रकार ट्यंग्य वचनों की रचना से चिन्त पर चढ़ी एकाग्रता से विलास रस को भुनाकर करण रस का प्रदर्शन करती सत्यभामा ने दोनों आखें आँसुओं से भरलीं।

उन आंतुओं को अपने स्माल के छोर से पाँछते हुए म्मावान सत्यमामा
से बोल उठे - बड़े दु:ख की बात है, जिस वस्तु के लिए किसी विशेष विधान
की आवश्यकता नहीं ऐसी छोटी सी बात पर इस प्रकार विरक्त होकर
वृथा विषाद क्यों कर रही हो । तुम अत्यधिक गुणों के द्वारा मेरी प्रिय
हो तुम्हारा नाम ही मेरे आनन्द के बढ़ाने वाला है तो फिर पति के हित
की सिद्धि चाहने वाली रुक्मिणी हमारी प्रिय वस्तुभूत तुम्हारे प्रति निष्ठुर
व्यवहार वाली कैसे हो सकती है । रुक्मिणी वहां उपस्थित थी इसलिए वह
पुष्प उसी को मिल गया इस छोठी सी बात पर इतना कुद्ध होना आप वैसी
बुद्धिमती के लिए उचित नहीं । यदि यह ज्ञात होता कि तुम्हारा
मनो भिलाष इस देव पुष्प के प्रति इतना जागरूक है तो न मैं उसे पूल देता और
न वह ग्रहण ही करती । यदि इस पूल के लिए ही आपकी स्पृष्टा बढ़ गई है
तो उसे दूसरे की वस्तु समझ कर दु:ख न करें । सब आप ही का है ऐसा समझें,
कहने पर रुक्मिणी बिना विचारे ही उसे आपके आधीन कर देगी ।

इस प्रकार भगवान कृष्ण के कहने पर सत्यभामा का उत्तरता हुआ कृथि फिर से बढ़ गया और कटाक्ष के साथ उन्हें देखकर फिर कुछ स्खै शब्दों में कहने लगी – देव भूमि से उत्पन्न पुष्प मेरी सौत को देकर मुझे शिक्षा देकर भिक्षा मांगने को कह रहे हैं, याचना से बढ़कर और कष्ट की क्या बात हो सकती है। याचना करने वाले का शील नहीं रहता सारे गुण दुर्गुण बन जाते हैं। कृल कलुष्मित हो जाता है एवं आकृति भी बिगड़ जाती है। कीर्ति विनष्ट हो

जाती है और जब मान ही प्रधानतया नष्ट हो गया तब बय ही क्या जाता है । वनवास में रहते भी भगवान राम ने अपराध से हरी गई अपनी प्रियतमा सीता को भी रावण से नहीं मांगा और रावण ने भी राम को पूर्ण रूप से जानते हुए अपने अभीष्ट जीवन को नहीं मांगा तो मैं अपनी सौत से पूल की याचना क्यों करने जाऊँ। इस प्रकार फिर चढ़े रोष्ट्रवाली उस सत्यभामा की अपने नये पराभव के समान पिट्ट भी वाणी सुनकर भगवान आवेश में भरे अपने उद्धिग्न मन के अनुरूष ही इस सत्यभामा के लिए जो उचित था वही बोल उठे कि पारिजात वृक्ष अभीष्ट पुष्पों को बरसाता हुए एक वर्ष तक सत्यभामा के आंगन में रहे।

"सत्यं प्रिये प्रतिशृणोिम शृणुत्वमध शृण्वनत्वमी अपि सुराः स हि पारिजातः । वर्षं तवाजिरगतो अस्तु मयाष्ठिष्ट्वतो द्वुः वर्षन्नभीष्टकुसुमानि भजाशु हर्षम्"

भगवान कृष्ण के इतना कहते ही सत्यभामा का मान और देवताओं की ध्वजा तुरन्त टूट कर गिर पड़ी । सत्यभामा के आनन्द के साथ देवताओं के मन में क्षोभ भी अकरमात् ही जाग उठा । सत्यभामा खुशी से लहलहा उठीं तथा सिद्धान्तभूत भगवान की उस प्रतिज्ञा वाणी ने सत्यभामा के हृदय में जागते संदेह को निश्चित रूप में दूर कर दिया । विकट प्रतीत होकर भी सानन्द दृष्टिट के हर्षश्रुरूप जलवृष्टिट दिखाकर उस सत्यभामा का मान भी उल्लिसित मन के लहरों के हिलीरों से निकाल बाहर कर दिया गया । भगवान ने पिर से प्रतिज्ञा की कि जब तक उस काम वर्षा करने वाले पारिजात को तुम्हारे आंगन में खड़ा नहीं कर दूंगा तब तक तुम्हारे साथ रितिरज्जन से जायमान कोई भी विनोद में नहीं करूंगा।

[।] पारिजातहरण महाकाट्य नवम सर्ग - 41

इस प्रकार मैंगवान कृष्ण उस सत्यभामा के साथ ही पर्वत शिखर पर यद यले । पर्वत शिखर पर यदने के समय ही इन्होंने यज्ञ रुक्मिणी आदि सित्रयों तथा मित्र परिवार सम्बन्धी मृत्यों को भी अपने नगर हुंद्वारिका है में लौट जाने की आज्ञा दे दी ।

इस प्रकार पारिजातहरण महाकाच्य में भगवान कृष्ण के दाम्पत्य प्रेम से सजा शाखोद्गम नामक नवां सर्ग समाप्त हुआ ।

दशम सर्ग

पारिजातहरण महाकाच्य के दशमर्ता में शरद ऋतु का सुन्दर वर्णन किया गया है साथ ही देवदूम की याचना के लिए मुनि नारद के स्वर्ग प्रेष्ण प्रसंग का वर्णन और भगवान कृष्ण से मुनि नारद के परस्पर नैतिक सम्वाद का वर्णन किया गया है।

स्मिकते गिरि शिखर पर यद नारद अधि की अभिनाधा भरी स्मृति का अभिनय करते हुए भगवान कृष्ण ने आकाश की और देखा । तब तक ही अनेकों प्रकार की कतारें बांधकर मनोहर शब्दों में शरद अतु का स्वागत गान करते, आकाश में बिहरते गंगा जल में तैरते बुल्लों के तमान आकृति वाले हंतों को देखा और अपनी प्रियतमा सत्यभामा से बोले -यह धवल हंतों की श्रेणी बरसात बीत जाने पर भी आकाश में इन्द्रध्नुष्ठ की शोभा ला रही है । शरद अतु में क्यारियों से सजी, कहीं पके धानों से पीली, कहीं कास कुसुमों से उज्जवल, कहीं हरी धात से हरी भरी इस भूमि की देखा । और भी श्रेत अम्बरवाली, हंतों की गति संयार से प्रसन्न, श्रृंगार हार के पुष्प समूह से मनोहर छटा वाली हमारे आनन्दार्थ शरद अतु उदित हो रही है ।

केतर के रंग का पूर्लों से गिरा पराग पटल जिस पर छाया हुआ है तथा हरे कमल के पत्तों से सवं लाल पीले नीले उवेत रंग बिरंगे कमल पुष्पों से सजा, कहीं रंग बिरंगे जल विहंगम पत्तों पर झूल रहे हैं, इस शरद ऋतु की विशेषता एं लिए सरोवर शोभित हो रहा है। मेधमण्डल को हटा कर सुलभ स्वच्छता से युक्त, प्रचुर पल पूल शालिधान्य को उत्पन्न करने वाली जल को विमल विधायक क्रियाओं से शुद्धकर यह शरद ऋतु मेरे हुक्षण के पाप पुंजों को गिरा कर प्रतन्तता को सुलभ बना अधिकाधिक पूल दान से शोभित ऐश्वर्य शाली विमूल बना देने वाली कियाओं से जीवन को सुधार कर वरदायिनी ईश्वर की दया के समान आ गई।

इस प्रकार अपनी प्रिया सत्यभामा के विनोद के ब्याज से शरद ऋतु की विशेष्ताएं हर्ज के समान दिखाते हुए जब तक कुछ और ही सोच रहे थे तब तक ही नारायण ने मुनि नारद को सामने आ गया देखा । भगवान कृष्ण ने पूजनीय उस महामुनि नारद का भित्त पूर्वक आदर करके कहा – हे नारद आप का दर्शन बहुत ही वांछनीय रहा । भनी-भाँति विचार कर आपको ही हन्द्र के उपदेश में समर्थ तथा हमारे हित को चाहने वाले जानकर फिर से स्मरण द्वारा आपको हमने बुलाया है । तब नारद ने कहा – वह समय बहुत ही सौमाण्यपूर्ण है तथा मनोहर होगा जिसमें आपने अनुशासन का वहन करों । तब प्रतिवचन देते नारद से भगवान बोले कि आपके द्वारा रुक्मिणी का देव कुतुम प्राप्त करना सुनकर यह आपकी पुत्रवधू सत्यभामा अपना अपमान मानती हुई कि एक बार रुद्ध हो गई थी किसी प्रकार इस समय इसे प्रसन्न पाया हूं । मैंने इसके लिए प्रतिज्ञा कर दी है इसके महल के अन्दर पारिजात रूप कल्पवृक्ष को रोप दूँमा इसलिए जाइए इन्द्र को समझाइए इस बहू को प्रसन्न करने की कामना से इएक वर्ष के लिए उसे यहां भन्न दें । इस प्रकार भगवान कृष्ण की कही कठिन उपपत्तित वाली बात सुनकर थोड़ी देर ध्यान कर महर्षि आदर के साथ बोले-

आपको जो वांछित है वह तो अवश्य होने वाला है किन्तु निदर्शन से मैं कहता हूं कि देवराज पारिजात को किसी प्रकार देना नहीं चाहते क्यों कि इस देवद्भम के अद्भुत पुष्प को देखकर कभी भगवती गिरिजा ने भगवान शंकर से स्नेहपूर्वक इसकी याचना की । उन्होंने भी देवी को सन्तुष्ट करने के लिए महेन्द्र ते याचना की थी किन्तु इन्द्र ने उन्हें भी पूल नहीं दिया । फिर उनते यदि स्वर्ग के भूष्णा स्वरूप वृक्ष को मांग रहे हैं तो इन्द्र कैसे देंगे। हे नाथ! सारे जगत के गुरू होते हुए भी आपने छोटे कारण पर इतनी बड़ी प्रतिज्ञा कैसे कर दी अब न तो हम आपको ही आगृहीत कर सकते हैं और न देवराज इन्द्र को अनुकूल बना सकते हैं। दोनों ही कठिन हैं। अपनी माता के मूल्णा के हर लेने वाले नरकासूर के विनाश के लिए यह इन्द्र जब तक अभी आपकी तहायता चाह रहे हैं तब तक ही इनके परम धन स्वरूप वृक्ष पारिजात के लिए पहले ही आपको माँग पहुँच जाय यह उचित नहीं। ईशवर होते हुए भी यदि आप प्राकृतिक उपाधि से भूषित हो कर इस ,पकार मानवों के व्यवहार के यो ग्य वेशवाला शरीर धारण करते हैं तो अनुचर होकर भी आपके स्वामित्व का हम यदि किसी विशेष प्रकार से अनुरोध करते हैं तो वह आपके विरुद्ध नहीं होना या हिए । इस प्रकार कहते हुए नारद बोले यह हमारा मत यदि हितकर हो तो आप स्वीकार करें।

इस अपनी अनुमत नीति के खण्डन में स्थित निरामा भरी नारद की वाणी सुनकर भगवान कृष्ण ने उन्हें समझाते हुए अपनी कार्य सिद्धि के लिए उपपत्ति पूर्ण वचन कहे कि आप बुद्धि में किसी की तुलना नहीं रखते सकल गास्त्र में पारंगत है और यह हमारी बुद्धि आपका आश्रय लिए हुई है। सबके उत्पादन तथा रक्षा में दक्ष होने के कारण आपने ही जगत का पितृत्व प्राप्त कर लिया है। नित्य ईश्वर के प्रति ज्ञानस्वरूप प्राकृतिक वचन विकेष रूप वेदों को आप जानते हैं। भिक्त के द्वारा आपने ईश्वर को भी जीत लिया है। यह आपकी वाणी सर्वथा प्रसन्न करने वाली सरस भावों के

विकास से रमणीय, दी प्ति से मनोहर, सन्दर्भ शुद्धि पद-विन्यास की स्वच्छता पक्ष में सम्यक गंथन की तुरीति तथा माधुर्यादिगुण से यक्त, प्रसादवाली, म्ली भाँति अलंकृत है। इस आपकी वाणी ने औ चित्य का त्याग कभी नहीं किया । किन्तु हे मुने । यह एक मत है कि कोई नीति तर्वदा के लिए तमान नहीं होती समय से रमणीय वस्तु भी त्याग योग्य हो जाती है। जिन्होंने उत्तरोत्तर वृद्धि के लिए यदि प्रकृति सम्भव शरीर धारण किया है तो प्रकृति के गुणों का अनुरोध भी बलात् उनको करना ही पड़ता है और एक ही वस्तु सबके लिए समान प्रियता या अप्रियता नहीं रखती सब अपने - अपने चित्त विकास के अनुरूप होती है। इसलिए आपने जो कहा कि छोटे कारण से बड़ी प्रतिज्ञा क्यों हुई तो उपर्युक्त कारणों से किसी भी कार्य को कारणों की लघुता या गुरता जीव के चित्तगत बोध का अनुसरण करती हैं अतः सबकी गति समान नहीं होती है। अपने 🛊 से इतर के अभिमत कार्य को यदि करना याहते हों तो पहले उसके हृदय के झूकाव को अच्छी प्रकार से निधियत कर लेना चाहिर । इन्द्रियों का राजा १मन१ जहां दृढ हो जाता है । उसमें तत्पर होने में अन्य किसी की अपेक्षा नहीं होती । जिसकी प्रतिज्ञा न की गई हो जिसके विशेष निर्णय में कहीं से रकावट आ गई हो जो विषय अनेक विरुद्ध को टि की कल्पनाओं के साथ उठता हो वहां किसी दूसरे यथार्थवादी की सम्मति से किसी एक पक्ष का शरण लिया जाता है किन्तु उसके निश्चय हो जाने पर तो उसको करना ही प्रति कर्तव्य है। इसलिए मेरे हित की मावना से यह कार्य निःसन्देह ही आपके लिए कर्तव्य है और हम इन्द्र के बन्धु हैं और माई होने के नाते उनके हानि-लाभ सबर्में समान भागी हैं अतः वह हमको वृक्ष देंगे ही। अच्छे लोग ताम, दान, दण्ड, मेंद रूप चार उपायों ते ही तारे पारम्परिक जगद व्यवहारों का पालन करते हैं। अतः आप साम के द्वारा ही इन्द्र से देव वृक्ष की याचना की जिए क्यों कि छोटे भाई पर स्वामा विक

वात्सल्य पूर्ण प्रेम होता है और इन्द्र हमारे बड़े भाई हैं। यह सब रहते हुए आप मेरा सन्देश इन्द्र के पास पहुँचाइये कि निजी प्यार से सत्यभामा को आनिन्दित करने के लिए प्रेमोपहार का सारा रूप पारिजात वृक्ष हमको दें। यदि ऐसा न हुआ तो मैं अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने के लिए परिकर बांधकर तैयार हूँ उस वृक्ष को पृथ्वी पर लाने के लिए गदा हाथ में ले आपके नन्दन वन पर आक्रमण करूँगा। इस प्रकार भगवान को कहते देख इनका मत अभिनिवेश पूर्ण जानकर नारद ने उनके अभीष्ट सिद्धि विशेष्ठ के लिए देवनगर हुस्वर्गह के प्रति प्रस्थान कर दिया।

इस प्रकार पारिजातहरण महाकाच्य में यह पल्लवन नाम का दसवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

एकादश सर्ग ======

पारिजातहरण महाकाच्य के ग्यारहवें तर्ग में स्वर्ग का तंक्षिण वर्णन किया गया है। तत्पश्चात् नारद इन्द्र तम्वाद का वर्णन मिलता है।

श्रीपति भगवान् कृष्ण के प्रिय कहने वाले वह देविष्ठि नारद आकाश में उपर स्वर्गलोक तक के बीच के लोकों को लांघते हुए पाकशासन १इन्द्र१ के नगर में पहुँच गए। कनक पर्वत के शिखर के बीच इन्द्र नीलमणि के बने प्राकार के भवन में प्रवेश किया। इस भवन के बीच मणिमय भित्ति पर रत्नों की पच्चीकारी द्वारा कदी लता पुष्पादि से अंकित नाना प्रकार के प्रतिबम्बमय सुन्दर चित्रकारी से चित्रित कल्पनातीत सजावटों से सजी देवसभा सुध्मां को देखा जिसके चारों और सुन्दर फाटक लगे थे जो अनेकों कियां से शोभित थीं तथा रत्नों से जड़े जिसमें खम्मे तथा तोरण थे।

देवराज का तिंहासन जिसमें तजा हुआ था तथा जिसके चारों और कुर्तियाँ तजी थीं और दाहिनी ओर द्वगुर का तदनन्तर देवर्षियों के और बाँयी और देवताओं के आसन सजे हुए थे। अत्यन्त सर्वोत्तर मधुर बोलने वाले सुवर्ण सार से बने पिंजरों में टंगे शुक्र सारिका आदि पिक्ष्यों से जो गूँज रही थी जिसमें कहीं क़ीड़ा, दैल के विखर पर बने महलों की चीटियों से इरने गिर कर बह रहे थे। सर्वदा सभी ऋतुओं के विनोद के उपर्युक्त साधनों से सज्जित शोभा वाली सुधर्मातभा में नारद जी ने प्रवेश किया । इसके अनन्तर रमण भूमि को महर्षि नारद ने पार किया जो भूमि मनोहर मरकत मणियों की चित्रित सब्ब भूमि में जो तजी तथा छोटे-छोटे जलाशय तथा चबूतरों से विशेष रूप से शोभमान थी जो तथा जो तैंकड़ों फट्यारों से जो मन को मुग्ध कर रही थी। जिसमें कहीं केलि - पर्वत जमे थे, कहीं चन्द्रशालायें शो भित्त हो रही थीं कहीं तजे लता मण्डप में झूले लगे हुए थे। मोतियों की झालरों वाली जवनिकाओं ते जिसका मध्य भाग दका हुआ था तथा जिल्लमें सुन्दर क्या थे, खेलने का मैदान था तथा त्रिकार के उपयोगी वन बना हुआ था । कहीं उपासना के मन्दिर थे । झीलों में जल जन्तुओं तथा सारस आदि पिक्षयों एवं दिव्य कमल आदि पुरुपों से जो मन को लुभा रही थी । सोने की लरों के रचना विशेष्य से जो शो भित थी तथा देवलनार्थे जिसके सुन्दर स्थानों में विहर रही थी जिसके शिखर पर ऐरावत के चिह्न से चिन्हित महाध्वज पहरा रहे थे ऐसे सभा के पाटक पर पहुँच कर दारपाल के द्वारा सूचना देकर सभा के भीता भाग में नारद जी ने प्रवेश किया ।

तब इन्द्र ने उनका अभिवादन किया और सब प्रकार से नारद जी की पूजा करके अपने पास बैठाकर कुश्रव प्रम किया कि अपने पिता ब्रह्मा जी के लोक से ही यदि आपका आगमन हुआ है तो उनकी कुश्रवता बताइर । श्री नारायण या भिव का यदि कोई सन्देश लार हो तो उसे सुनाइये अखिल भूवन

नायक मेरे छोटे भाई भगवान रमानाथ इस समय वसुन्धरा पर शासन कर रहे हैं उनका कुशन सुनाकर मेरी उत्कष्ठा शान्त की जिए। यदि केवल मेरे पर अनुग्रह करते यों भी आप आ गए तो मैं दर्शन से कृतार्थ हुआ फिर भी कल्याण की वर्ष्या करने वाली निजी वाणी के द्वारा अधिकाधिक कुशन की वृद्धि की जिए।

इस प्रकार कहते हुए इन्द्र ने ही जिसका प्रकरण उपस्थित कर दिया ऐसे अवसर को पाकर नारद जी ने अपने अभिनखित कार्य की सिद्धि के लिए भूमिका के समान वचन प्रबन्ध आरम्भ किया कि इस समय यह हमारा भूमण केवल आपके ही अभीष्ट कार्य सिद्धि के लिए है। आपके पिता श्री कश्यप जी से केवल आपको कुशन निवेदन क फिर उनका सन्देश भगवान कृष्ण को सुना द्वारिका पुरी ते मेरा यहां आना हुआ है । आपके अनुज म्मावान कृष्ण भी दैत्य-दानवों को दबाते हुए मानवों का शासन भनी-माँति कर रहे है। सब प्रकार से आपके हित कर कार्यों के साधवं में लगे हुए यह चक्रधारी कृष्ण भौमात्र की पराजय चाहने वाले आपका ताथ देना भी अपनी ओर ते चाह रहे हैं परन्तु इस बीच आ पड़े एक आकृत्मिक वृतान्त को सुनिए जिससे नारायण ने सम्प्रति आपके पास मुझे शीघ्र मेल दें। आपके सुरवृक्ष पारिजात का एक फूल पाकर मैंने उनको भेंट किया उन्होंने उसे रुक्मिणी को दे दिया यह सुनकर उनके बाहरी प्राण के समान प्रिय दूसरी स्त्री सत्यभामा ईष्या से कृपित हो उठी थीं, उन्होंने भी इनके मान भंग करने के उतावली में प्रति विधान के रूप में वर्षभर के लिए पारिजात वृक्ष को इनके घर में लगा देने की प्रतिज्ञा कर दी है। अतः इस कार्य की सिद्धि आपने अधीन है यदि सस्त्रीक अपने अनुज भगवान कृष्ण के उसर आपका अनुगृह हो तो वर्ष भर के लिए देववृक्ष रत्नभूत पारिजात को देदी जिए। यदुनाथ ने अपने इष्ट पारिजात को अवश्य प्राप्त कर लेने के विचार से ही हमारे मृदुल मुख से आपसे याचना किया है।

नारद जी के इतना कहने पर ही अमरनाथ इन्द्र यमक उठे और बोल पड़े "अब अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है उस छली कृष्ण के हृदय को मैं जानता हूँ देवता से लेकर असुर मनुष्यों तक अपनी प्रभुता रखना याहते हुए अपनी माया पैलाकर हम सबको जो दबा रहे हैं। पहले ही पृथ्वी पर अवतार लेते समय सब देवताओं को मनुष्य यो नि में मेज दिया अब जो स्वर्ग की उत्तम वस्तु है उसे भी हर लेना याहते हैं। प्रतिवर्ध गोपों के दारा किया जाने वाला छो मेरा इन्द्रयाग था उसको उन्होंने रोका। इन्होंने इस प्रकार एक बहाना पैदा कर हमें जीतने की इच्छा रखते हुए आपसे यह मौखिक सन्देश मेजा है। इसलिए हे नारद। जाइए श्रीकृष्ण से कहिए कि बिना यद्ध के एक पत्ता भी उस वृक्ष का नहीं हिल सकता। इस प्रकार इन्द्र के कहे जाते हुए पारिजातहरण महाकाच्य का "सेक" नाम का ग्यारहवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

द्वादश सर्ग

पारिजातहरणमहाकाच्य के द्वादश तर्ग में नारद के मुख ते पारिजात वृक्ष को देने के विषय में निषेधों कित को तुनकर भगवान-कृष्ण का इन्द्र के प्रति क्रोध का वर्णन, भगवान कृष्ण के द्वारा अपने वाहन गरूड़ को बुलाना तथा गरूड़ के द्वारा कृष्ण की स्तुति का वर्णन मिलता है।

तब देवलों क हैं इन्द्रलों क है ते लौटकर नारद ने इन्द्र के मुख ते कही गई बात को भगवान श्री कृष्ण ते कहा - इन्द्र के निष्ध्य को तुनकर अहँ कार ते भगवान की दृष्टि कृटिल हो गई। नवनीत के तमान कोमल मन वाले होते हुए भी श्रीकृष्ण अत्यध्यक परिस्फुटित कोप ते कर्कश हो गए। श्यामल शरीर वाले होते हुए भी क्रोध ते लाल शरीर वाले हो गए जैसे गोधूलि के तमय कृष्ट

काला तथा कुछ लाल हो जाता है भगवान ने नारद से कहा कि इन्द्र किस वैभव से गर्वित होकर आदेश तिरस्कृत कर रहा है। सम्पूर्ण क्रोध समुदाय को नाश करने के कारण भूत इस संसार में भेरा जन्म हुआ है क्या यह वह इन्द्र नहीं जानता।

देवलों के में भी मेरे हैं कृष्ण के हैं तथान में रहने वाली विभूति से शो भित मन की समाधि को आप हैनारद हैं जैसे तीव्र तप से प्राप्त करते हैं। विभूद्ध मन वाले वे इन्द्र अपनी समृद्धि का पालन अविवेक पूर्वक कर रहे हैं। मिदरा की सखी तथा कामदेव को जन्म देने वाली रमा हैं लक्ष्मी हैं मुझ कृष्ण के बिना कुछ भी नहीं है इसलिए सम्पत्ति की उपेक्षा करके तथा समुद्र से उत्पन्न होने वाली लक्ष्मी की उपेक्षा करके शंकर विष्य को पी गए। इस लक्ष्मी के द्वारा ही वश में किया गया मैं विविध अवतारों को धारण करता हूं। मैं कृष्ण याचक इन्द्र से पारिजात को माँग रहा हूँ।

प्रतन्तता के कारण आँसुओं से मरी हुई श्रीकृष्ण की बाँयी आँख पह्कने लगी और शुम्दिशि उनकी दाहिनी भुजा, जिसमें सुदर्शन शो मित हो रहा था, पह्कने के बहाने विजय का अनुमोदन करने लगी । बलपूर्वक इन्द्र के गौरव को निरस्त करके उन श्रीकृष्ण ने पारिजात के हरण में उद्यम किया, हिर की रक्षा करने वाले अद्भुत पराकृमशाली गरूड़ को मगवान अपनी स्मित में श्रीकृष्ण के याद करते ही मन का अनुगमन कने करने वाले मार्ग से पंखों के पहुपहाने की ध्विन से निवेदित आकाश में उड़ता हुआ गरूण अनुकरण करते हुए मेच्छ्य ड के समान दिखाई दिया । गति की मंगिमा से विविध विभ्रम करता हुआ कि स्वराहट पैदा करता हुआ पंख सहित येतन गिरि के समान वह गरूड़ दौड़ा । मारी पंखों के हिलने से आकाश में प्रचण्ड कूजन से वह गरूड़ सूर्य या चन्द्रमा को छिपाता हुआ अत्यधिक प्रसन्न होते हुए सुरों को डराता हुआ हिस् की

और दौड़ा क्या यह मगवान का रथ है अथवा तूफान से उठा हुआ यह विनध्य पर्वत अपनी हिथित से हट गया है अथवा अलका के अधिपति का विमान पुष्टपक उत्तर रहा है, ऐसा दूर से लोगों के द्वारा देखा गया । चरणों की अगुँ लियों को पुष्टियका के भीतर किए हुए बहुत बड़ी शाखा को पकड़े हुए चंचल चोच में साँप के महान शरीर को लटकार हुए महान शरीर वाला वह गरूड़ हरि के आगे उत्तरा और पहले बलराम को फिर तीथों के भी तीर्थ भगवान श्रीकृष्ण के चरण कमलों में प्रणाम किया और मनुष्यों की वाणी में बोला —

है परमपूज्य । वह मेरा शरीर और मन तुम्हारे चरण कमलों ते क्षणभर के लिए भी अलग नहीं है । हे निकृष्ट ! तुम्हारी मानव के रूप में त जो चेष्टाएं हैं वह हम लोगों को प्रसन्नता देने वाली हैं ।

हे अनन्त, नूतनता के व्यापार से नवीनता ही रमणीयता का आश्रय है। तुम्हारी प्रकृति के पंचीकरण से आकाशादि पञ्चक उत्पन्न हुए। अलग-अलग करके लाखों अद्भुत जगत् अभिन्न होता हुआ देखने वाले में मेद पैदा करता है। दूर से गिरी हुई जल की बूँदे मिद्टी में अनिल में या पृथ्वी में कहीं लीन हो जाएं। किन्तु प्रमार्थतः वह पृथक नहीं है। उसी प्रकार तुम एक ही जगत् के रचयिता हो। ,पक्टि ज्ञान १ वैतन्य। द्वारा जड़ को परिमार्जित करते हुए इस जड़ जगत् को विभिन्न जन्मों में प्रकृतित करते हो। मेरा १ मरूड़ का १ यह शरीर रूपीयन्त्र तुम्हारे अवश है।

विश्व के परमेश । तुम्हारा आज पृथ्वी पर मर्त्य रूप में विश्वम अद्भुत विनोद कौ तुक है। जैसे दीप स्वयं प्रकाशित हो कर मस्तु को विख्या है। उसी प्रकार तुम स्वयं प्रकाशित हो । तुम्हारा परिचय अलग ही सज्जनों को प्रसन्न करता है। हे ईश्वर । हम लोगों का आपसे अलग कोई अस्तित्व नहीं है। जिस भुवन में तुम अमण करना चाहते हो मुझे वहीं की आज्ञा दो। ऐसा मरुड़

के कहने पर माध्य बोले – हे विहगेन्द्र तुम्हारा मुझसे अलग रेश्वर्य नहीं है, मैं इन्द्र के नन्दनवन में विहार करने की इच्छा रखता हूँ और तुम्हारे उड़ने के लिए सूर्योदय तुम्हारा महोदय होगा । इस प्रकार अपने वाहन खग का निर्देश देकर भगवान ने अपने पुत्र कामदेव को बुलाया और कहा कि सात्यिक के साथ इन्द्रपुरी के उपवन चलो और हवहां बल से पारिजात को गृहण करके मेरी पत्नी सत्यभामा की प्रसन्तता के लिए समर्पित कर दो । माध्य के रेसा कहने पर काम कामदेव बोले – जैसी आपकी इच्छा । माता – पिता के अनुसार आचरण करता हुआ अपनी मातृभूमि का जो उत्कर्ष न करे संसार में पुत्रपद का अधिकारी वह अपने से या दूसरों से क्या तिरूहकृत नहीं है । ,पसंग में रेसा कहने पर पुत्र से सन्तुष्ट होकर वह बोले – हे पुत्र तुम्हारी विजय हो । इन्द्रपुरी में विजेता के रूप में गृक दृष्टिट से तुम्हें देखने की इच्छा रखता हुआ तुम्हारे साथा जाउँगा।

इत प्रकार यात्रा का तमुद्योग तम्पन्न करके भगवान कृष्ण ने तांयकाल साधु विधिको तम्पन्न कर दिया । इत प्रकार पारिजातहरण नामक कर महाकाच्य का पुष्टित नाम का बारहवाँ तर्ग तमाप्त हुआ ।

त्रयोदश सर्ग

किव उमापित दिवेदी विरिधित परिजातहरण महाकाच्य के तेरहवें तर्ग में सन्ध्या का वर्णन मिलता है। किव ने सन्ध्या का बहुत ही मनोहारी वर्णन आपने इस काच्य में किया है तथा साथ ही सन्ध्या का उपमा के माध्यम से भी बहुत ही मनोरम चित्रण किया है।

तन्ध्या हो जाने पर प्राक् दिशा में चन्द्रमा उदित होते हुए तथा पश्चिम दिशा में तूर्य के अस्त होते हुए एक साथ दोनों रक्त वर्ण के आकाश में दिखाई पड़े और वह दोनों आकाश में ऐसे लग रहे हैं बैसे मणि के बने हुए

पुटमाण्ड के दो खण्ड हो गए हों। और उसके पूट आने पर कामदेव की स्त्री रति के आभूष्या का सिन्द्र का प्रवाह पैल गया हो । दिन के दल जाने पर आकाश के बहुत अधिक अन्धकार से गृसित होने पर सम्पूर्ण लोक के द्वारा अस्पृश्य किन्तु आलोक्य रूप अपनी श्रेष्ठ सहित पीड़ा के कारण उत्पन्न रक्त वर्ण का दिखाई दे रहा है। सूर्य के चले जाने पर दूसरी सन्ध्या प्रदोष के आने पर मानो बहुत अधिक अनुराग के अनुसरण से अपने अध्यदान के अभिनय द्वारा कुसम के गन्ध से रक्त वर्ण के एकत्र हो जाने पर इस विमल आकाश में बिम्बायमान फैन रहा है मानों ये नान रंग का बिम्ब बहुत अधिक अनुराग ही हो । रात्रि में चन्द्रमा के उठने पर मानो तारों का हार पहने हुए बहुत अधिक रक्त वर्ण के वस्त्र से अंग को दके हुए तथा दके हुए मुख की का नित वाली सन्ध्या मानो सूर्य का अनुसरण कर रही हो अथवा रवि के द्वारा त्यागी भान को आदर देती हुई मन मैं पाप के भाव लिए हुए रोघ के कारण रक्त वर्ण के हुए वस्त्र वाली साध्वी गुरू वरण की दिशा अभिसार कर रही है। विधि के अधिकार को पूरा करके सूर्य प्रसन्न होकर दिशा की गोद में उतर रहा है इसी कारण मानों अनुरागवती पियम दिशा बहुत अधिक लाल हो गई हो । आकाश के एक भाग में अन्धकार के फैलने पर राग के जागृत होने पर और दूसरी दिशा में जो राग है वह यह सूर्य बिम्ब है, वह ऐसा लग रहा है, मानो भगवान शंकर की प्रशक्ति अम्बिका के केश में रहने वाले यन्द्रमा के यारों ओर बिन्दुओं वाल सिन्दूरका सिन्धु फैल रहा है तथा आकाश के एक भाग में अन्धकार तथा एक भाग में ,पकाश ऐसा लग रहा है जैसे प्रथ्वी पर बाल सन्ध्या अनुराग से निहार रही है। सन्ध्या कालीन अंगना का हिमत मुख चन्द चन्द्रमा के निकल आने से दक गया है। तमुद्र में तूर्य अस्त हो गया है और ऐसा लग रहा है तूर्य के अस्त होने पर जैसे कमल समूह अत्यन्त विरह के कारण अवसाद को प्राप्त हो गए हैं अर्थात सूर्य के अस्त होने पर कमल तमूह का मुख मुकुल बन्धन को प्राप्त हो गया है अस्तित् बन्द हो गया है और धवराहट ते निकलते हुए चंचल भूमर कपट काया को धारण करने वाले काजल से युक्त आंसुओं को छोड़ रही है। सन्ध्या के समय का एक बहुत ही मनोहारी चित्रण उपस्थित है --

> "प्रियतम् । यमसोष्ट प्रीतये ते प्रदोषः स हि युवितमनोभी राग राशिर्निपीतः मम हृदि तु भवत्युद्धोषितोच्यैः प्रतिज्ञे । नटित निशि सुधाशोरंकगोड्यं क्लंकः ।।"

इसी प्रकार सन्ध्या का वर्णन करते हुए कवि उमापति का पारिजातहरण महाकाच्य का प्रतिरोप नाम का त्रयोदश सर्ग समाप्त हुआ ।

चतुर्दश सर्ग ======

पारिजातहरण महाकाच्य के चतुर्दश-सर्ग में पुत्रसात्यिक, प्रद्युम्न तथा पत्नी सत्यभामा के साथ भगवान कृष्ण का स्वर्ग जाना तथा मध्यम लोक का वर्णन मिलता है।

तूर्य की किरणों से आकाश का रक्त-वर्ण का हो जाने से पृथ्वी पर यन्द्रवंश का विस्तार करने वाल सत्यलों के अधिपति वह कृष्ण जाग गए। जागकर अपने वाहन गरूड़ को बुलाया तथा साथ ही सात्यिक और पुत्रों को भी स्मरण किया। वे तीनों युद्ध करने वाली सेना सहित उपस्थित हो गए।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - त्रयोदश सर्ग - 35

किया है। गरूड की पीठ पोष पर रत्न की लड़िया हैं, उनसे युक्त
सितारों से जड़ा पदमासन गर्भ है। अष्टापद से दीप्त श्रृंगला से बंधा पलंग
है और पंलग से युक्त कुध से परिवेष्टित ऐसी वह गरूड़ की पीठ है। उस पर
हुका हुआ दण्ड का छाता लगा हुआ है दोनों तरफ पंखा झला जा रहा है।
दो धनुष चलाने वाले को बिठा दिया है। वह गरूड़ासन पूँछ तक नाना
प्रकार के तारों सहुश रस्ती से अलंकृत है और पूँछ तक कुछ हिस्सों में मणियां
लटक रही हैं और कमल सदुश वक्षस्थल रत्नों की माला से युक्त है। गरूड़ की
ग्रीवा में माला की तरह सजे हुए जितने रत्न हैं उसकी प्रभा से चारों
दिग्दगन्त प्रकाशित हो रहे हैं। पांच नूपुर से कान्त हो रहे हैं। इस
प्रकार के गरूड़ पर बैठे हुए पत्नी सत्यभामा, गुरू-वृहस्पति और पुत्रों सहित
भगवान कृष्ण को कुछ लोगों ने देखा। कांपते हुए पंखों से नष्ट कर दिया है
मार्ग की बाधा जिसने ऐसा गरूड़ चन्द्रमा, सूर्य आदि अपूर्व गृहों के सहुश अपने
को प्रकाशित करता हुआ उड़ गया।

वायु की सप्त लहरों को पार करके, पिशाचि आदि चार पुरों को पार करके यम की आश्रय-भूत नगरी को देखा जो विशाल शालाओं का आवरण हैं तथा जो गोपुरों से अलंकृत है। भगवान् श्रीकृष्ण उस पुरी को पत्नी सत्यभामा को दिखाते हुए बोले हे देवि। लोक यात्रा में लोगों का संयमन— नियंत्रण करने वाले इस पुरी के राजा यम हैं। पृथ्वी से इस पाँचवी भूमि पर आश्रय लेने वाले जो यम हैं वह समस्त मर्त्य लोक के मनुष्य की अन्तवासना से युक्त क्रियाओं का निर्णय करके उपर्युक्त मन्त्रक्या लेकर अपने अधिकार द्वारा उन-उन क्रियाओं के पल को देता है। इस नगरी में पाँच शरीर धारी हैं जो ब्राह्मणों की हत्या करने वाले हैं अथवा वे लोग जो व्यवहार सत्त्व से गिर जाते हैं उन्हें यम दण्ड देता है। ये पँचपातिक यहाँ रहने वाले उनके द्वारा

अधिक काम करने वाला लेकिन विश्वास से पाप भावना केदारा आचरण करने वाले यम की आज्ञा पाकर परलोक में होने वाले जो क्लेश हैं उन पल के भाजन बन जाते हैं। मानव-लोक के समान इस लोक में शासन होता है। अधिपति यम न्यायाधीश का भी शासन होता है । अधिपति यम न्यायाधीश का भी शासन करता है। यम नियम से स्थित इस लोक में निवास करता है। समान पक्ष वाली नीति से राजा से रंक तक की रक्षा करता है। यह यमपुरी परेत आदि को आत्मगति प्रदान करने वाली है। सज्जनों के लिए यह पुरी अच्छी है, पापी के लिए भंगकर है और ब्रह्मिध, राजिध, तुरिध ते अलंकृत तथा समान रूप से भाजित है। वहीं यह यम नगरी है, जहां देव लोग पिता लोगों का स्वधा से भरण करते हैं। कर्म के द्वारा प्राप्त उन-उन विशेष जन्मों के योग्य अर्थात् जैसे-जैसे कर्म किए हैं योग-क्षेम की उन पितरों की प्रतिभावना करते हैं। तत्पत्रचात गन्धर्म लोक में हिथत अप्तराओं को भगवान कृष्ण ने अपनी पत्नी सत्यभामा को दिखाया और बताया कि यह लोक विविध प्रकार के वाद्यों तथा संगीत कला विशेष से अलंकृत है। तब वे लोग इन्द्रपूरी पहुँच गए । वहाँ पर पहुँचकर देवतमा सुधर्मा को देखा, जिस समा मैं अपने-अपने लोकों से मन्त्रियों और पुरोहितों के साथ देवता और राजा लोग आए थे।

इस प्रकार इन्द्रपुरी के सौन्दर्य का अतिरमणीक वर्णन इस क्लोक में प्रस्तुत है —

इयं सुरसरित्प्रिये प्रतिदिशम्पुरो वर्तिनी ।
प्रतेतुपरिखायिता मणिमयावतारां चिता ।
वस्त्र तटरो हिभिस्सुरलता द्भुमत्काननैर्वृता सुरसुरर्षिभिस्सततसे विता स्तेपुर: ।।"

[।] पारिजातहरण महाकाट्य - चतुर्दश सर्ग - 78

इस प्रकार कवि उमापति दिवेदी विरचित पारिजातहरण महाका व्य का प्रतिष्ठा-नामक चतुर्दश सर्ग समाप्त हुआ ।

पंचदश सर्ग

पारिजातहरण महाकाच्य के पन्द्रहवें तर्ग में अमरावती के इन्द्रभवन का तथा नन्दनवन का वर्णन किया गया है — पारिजातवृक्ष के आहरण की कथा भी इसी वर्ग में मिलती है जो इस काच्य को लिखने का मुख्य उददेश्य है -

इन्द्र ने नारद से पारिजात-वृक्ष को देने में असम्मित प्रकट की तथा साथ मैंयह भी कहा कि बिना युद्ध के वृक्ष का एक पत्ता भी नहीं हिल सकता इस पर भावान कृष्ण बहुत ही क्रोधित हुए और युद्ध के लिए कृष्ण ने इन्द्र के महल मैं जाने के विचार से गरूड़ का आह्वान किया।

इसके बाद देवताओं के उपपुर श्रेडन्द्रलोक श्रेपहुँचकर माध्य गरूड़ ते बोले - हे । विहंगमेश । इस देवताओं की नगरी का विगाहन करो ।

यह नगरी विश्वकर्मा ने देवताओं के तपोबल से बनाया है। यह नगरी एक क्षण के लिए मुझे भी विस्मय युक्त कर देती है। देवता यहाँ अत्यन्त अद्भुत ऐश्वर्य के भागी हैं।

देवेशवर इन्द्र की सेवा से अभ्य पद को प्राप्त करते हैं। सैंकड़ों महर्षि श्रुम भावना से इन्द्र की उपासना करते हैं। देवता दिव्य बल से बढ़ते हुए लोगों के मन की भावनाओं को जान लेते हैं। अतः जबसे हम कल्पवृक्ष की अधिलम्बनावधि पान जाएं अपने शरीर को वैष्टाओं को छिपाकर धूमों यहां पर दिन में महलों में चाँद की चाँदनी रहती है रात में पृथ्वी प्रकट हो जाती है। चन्द्रमा अमावस्या की रात को इस इन्द्रलोक में अपने का नित मण्डल को छिपाकर स्थार रहता है।

है। कान्ते तुम्हारे द्वारा यह सामने बहती देवगंगा देखी जाय यह अत्यन्त श्रेष्ठ है। इस इन्द्रपुरी को चारों तरफ से घेर कर यह परिखा बनी हुई है और इस प्रकार इन्द्रपुरी को चारों तरफ से घेरकर यह हार वाली बना रही है। भगवान सत्यभामा से कहते हैं — खगाधिप पर अधिष्ठित तुम्हारे दारा पार की जाती हुई स्पर्ध सी करती हुई इसको इन्द्रपुरी को प्रणाम करों। इसकी छटा बड़ी मनोज्ञ हैं दिव्यलोक की मानों यह दिव्य माला है इस नदी के पार इस शाल को देखों जो चारों और से इससे घिरा हुआ है। यह शाल बड़ी मूल्यवान मणियों से सजा हुआ है। इसमें बाहर तो सुविधा से निकला जा सकता है लेकिन भीतर सुविधा से नहीं जाया जा सकता।

इस प्रकार नगरी का वर्णन करते हुए भगवान कृष्ण तथा सत्यभामा नगरी के द्वार तक पहुँच जाते हैं। तब भगवान सत्यभामा से कहते हैं इसकी सजावट देखकर भगा कौन होगा जो यहाँ आने के लिए स्पृष्टा न रखता हो। सुन्दर युक्तियों से छिपने वाले तथा यन्त्रों से तन्त्रित बहुत उन्धी अद्दालिकाओं वाले महान बादल का विभ्रम करने वाले का यह अत्यन्त सदुष्य प्रवेश है उनको पार करके उनके बीच तुम उपस्थित हो और इस अमृत बहाने वाली आकाश गंगा की शोमा को देखों जो अतुलनीय है।

इस प्रकार विभिन्न प्रकार से इन्द्रपुरी का वर्णन करते हुर भावान ने सत्यधामा को पारिजात वृक्ष को दिखाया और अपनी प्रिया से बोले —

"क्षीरा व्यि तम्मन्थनणेषु रत्नेष्वलं ।

प्रतिद्धी विद्या धिराज ।।

साम्राज्य सारो डयमिहा मरणाममीष्ट

सुत्येकनिदानमृतिः ।।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य-पंचदश सर्ग-69

इस इन्द्रलोक में कहीं भी सुनार और जुलाहे नहीं बसते । देवताओं के उपभोग के लिए वस्त्र, भूषण और अन्य पदार्थ यहाँ के कल्पवृक्ष उत्पन्न करते हैं। यहाँ ज्योतिषी लोग काल शुद्धि का गणन नहीं करते। रसोई बनाने वाले नहीं होते । कामधेनु अमृत का दूध देती है । समस्त रत्न भण्डार के द्वारा यह नगरी विधाता के निर्माण की सीमा है। इन्द्र की नगरी अलभ्य है। जिन्होंने पुण्य संवय न किया हो उनके द्वारा यह नगरी प्राप्य नहीं है। अन्य जो पिका नगरी है अपनी प्रशंसा के लिए अलंकृत होकर इससे तुलना करती है। इस प्रकार इन्द्रलोक की श्रीकृष्ण प्रशंसा करते हूए भगवान गरुड़ से कहते हैं जगत्रय में आगे रहने वाली, गौरव की शोभा वाली नगरी जो किसी के समान नहीं है उसको किस साधन से प्राप्त करूँ। यहां कैलाश पर्वत के बराबर शरीर वाला इन्द्र का रेरावत नाम का हाथी रहता है। उच्चश्रवा नाम का घोड़ों का सम्राट यहाँ रहता है जो मन के समान गति वाला है। यहीं पर स्त्रियों में रत्न स्वरूप अत्यन्त प्यारी इन्द्र की अप्तराओं में श्रेष्ठ उर्विष भी तिथत हैं। गौओं में रतन के तमान कामधेनु भी स्थित हैं। देवताओं की वाणी का जल सबसे श्रेष्ठ भी यहीं है। वनों में ब्रेष्ठ नन्दन वन भी यहीं है। नन्दन वन का रहन वह पारिजात वुक्ष भी यहीं है । इस प्रकार इन्द्रपुरी की प्रशंसा करते हुए भगवान क गरुड़ से कहते हैं -- हे । विहंगमेश यत्ववान हो । सुरद्भम के आहरण की सिद्धि के लिए प्रयत्न करो । तुम तो इस वृक्ष के वैशिष्ट्य को जानते हो क्यों कि इस वृक्ष से तुम्हारे द्वारा अमृत का अपहरण किया गया था । लेकिन फिर भी इस वक्ष के बारे में अपनी प्रिया सत्यभामा को खुश करते हुए वर्णन करता Ĕ I

तब मणवान कृष्ण ने पुत्र सहित द्वमेन्द्र की परिक्रमा करके हृदय से अभिनन्दन किया तथा मन्त्र विधियों का आह्वान करके नन्दन वन से उखाइ लिया । आकित्मक अद्भुत उस गरूड़ के उतरने पर विचित्र अनुचिन्तन लोगों में हुआ । प्रिय हरि का दर्शन भी हुआ तथा जितने भी अधिकारी थे सब स्तब्ध रह गर ।

उस कामरूप दिव्य तर को अपने वाहन गरूड़ के। पृष्ठ पर चढ़ाकर भगवान-कृष्ण ने कृतकृत्य होते हुए इन्द्र के दर्प के अपहार को जताने वाले तेज से युक्त शंख की ध्वनि किया।

इस प्रकार श्री मदुमापतिश्मा विरचित पारिजातहरणमहाकाच्य का प्रोहिनाम का पन्द्रहवां सर्ग समाप्त हुआ।

ष्णोडश सर्ग ======

पारिजातहरण महाकाट्य के तीलहर्वें तर्ग में इन्द्र का गुरु वृहरपति ते सलाह तथा इन्द्र का युद्ध के लिए उद्योग तथा तन्ध के लिए वृहरपति का ग्रिष्ठ कश्यप के पात जाना आदि का वर्णन मिलता है।

भगवान कृष्ण ने गरूड़ की सहायता से पारिजात वृक्ष को ही नन्दन वन से उखाड़ लिया रक्षकों के दारा ऐसी सूचना पाकर तथा विज्ञान से गरूड़ ध्वज वाले वृतान्त को जानकर और पा चजन्य से उत्पन्न ध्विन को सुनकर इन्द्र बहुत अधिक क्रोधित हो गए। तब इन्द्र ने गुरू वृहस्पति को बुलाकर पारिजात वृक्ष के चले जाने के सम्बन्ध में इष्ट सलाह को पूछा। सम्पूर्ण वृहस्पति एक क्षण के लिए ज्ञान विमूद्ध हो गए और तब अत्यन्त लाचार भाव से बोले कि मुनि नारद ने स्वयं कुछ सलाह दी थी क्या उस सलाह को आपने नहीं किया। ज्ञानी व्यक्ति भी इस संसार में सज्जनों की उपेक्षा करता है। हे इन्द्र ! बोलो उसकी रक्षा भला कौन कर सकता है। फिर भी इस वृक्ष को देकर अपने अनुकूल बनाओ और नमन करो। जिस कृष्ण ने

किए गए कमों के विपाक भोग के लिए संसार में त्वर्ग और नरका दि मेद बनाए । स्वेच्छा से विहार करने वाले जगत् के आत्मस्वरूप कृष्ण के साथ रपर्धा क्या अत्यन्त तिरस्कार योग्य नहीं है। तुम इन्द्र ने राजनीति तो किया उससे तुम्हें लज्जा ही मिलेगी। वह राजनीति तीन साधनों से सिद्धि वाली होती है। सिद्धि के पाँच अंग को भना कौन नहीं जानता उन पाँच अंगों के प्रयोग का कौन सा समय होता है क्या तुमने विचार नहीं किया क्यों कि विपक्ष बल हुकूडणह अक्षय हैं उस कुडण के प्रति अपमान धारण करते हैं दुख है तुम अपने विनिपात को पास से नहीं देख पार । अपने रेश वर्य की तथा मुझ मंत्री तीनों की उपेक्षा नहीं की जबकि अवसर था क्यों कि तुम्हारे भीतर अहँकार आ गया था जिसकी महिमा अगाध्य है उससे बैर करके हम सभी को प्रवाद का विषय बना दिया है। गुरु वृहस्पति, काट्यशुक्र कलाधर चन्द्रमा आदि तुम्हारे पास कर्मों की सिद्धि की सफलता का देने में अच्छे अच्छे ज्ञानी है किन्तु सभी का मन संग्रह करने का आज अवसर नहीं है क्यों कि मगवान का शंख बजने का अब अवसर नहीं है। तमने बहुत से लोगों का त्याग करके बहुत सारा व्यय करके तथा बहुत प्रेम करके अलभ्य राज §इन्द्र पद § को प्राप्त किया । इस धूलोक की रक्षा में भी एक ईशवर तुम्हारी सहायता करने वाला था उस ईश के साथ विरोध करके एक विटप के लिए तुमने अच्छा नहीं किया । इसलिए जो बीत गया उसमें अब विचार करने से क्या १ खेद से मेरे द्वारा जो दुर्वचन निकले मेरे उन वचनों को क्षमा करना क्यों कि सोने के ♦ मुग में राम को मोह हो गया था इसलिए विधि का विधान सुविधा ते पार करने योग्य नहीं है। अब मानतिक विषाद त्याग दो। उत्साह धारण करो यही तुख देने वाला मार्ग है। अब गुरु वृहस्पति इन्द्र को उत्साह दिलाते हुए कहते हैं कि माना तुमने अपनी लक्ष्मी पारिजात वृक्ष देकर कृपणता नहीं की अपने-अपने देश के रेशवर्य के लिए प्राणों को देकर भी कोई स्वामी दूसरोँ पर आक्रमण रूपी सागर को पार करने के योग्य बनाता है। इसलिए अब युद्ध में उद्यम करिए।

गुर-बृहस्पति इन्द्र ते सलाह करके युद्ध सन्धि के लिए ऋषि कश्यप के पास गए। इन्द्र ने भी युद्ध के लिए अपना शंख बजा दिया। इन्द्र अपने हाथी ऐरावत पर सवार हो कर युद्ध के लिए चल पड़े और वहाँ पहुँच कर माध्य नेइन्द्र को इन्द्र ने माध्य को देखा और बोले "अपि भृति सत्राद्युत्सवे दिव्य पुष्पो", "पहरणमिदमीयं प्रीतये तेडिभिविष्यत्।"

इस प्रकार पारिजातहरण महाकाच्य का विस्तार नाम का सोलहवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

स प्तदश - सर्ग

पारिजातहरण महाकाच्य के सत्रहवें सर्ग में नारायण और इन्द्र के युद्ध का वर्णन मिलता है। इन्द्र भगवान से छल के वयन बोले कि इन्द्रलोक से बलपूर्वक बहुमूल्य इस बुक्ष को ले जाने में समर्थ नहीं हो। तुम्हारा अधिकार इसमें पत्ते पर भी नहीं है हे कुजात्। पारिजात बुक्ष के प्रति इच्छा त्याग दो और इन्द्रलोक के स्वामी के इरपोक मत समझो। उस पेड़ को उखाड़ने में तुम्हारा जो साहस है वह अनुचित है। तुम हमारे अनुज हो यह मेरा बाण ले लो, यह तुम्हें में पारितोषिक दे रहा हूं। ऐसा कहने वाले महान् ओजस्वी इन्द्र ने अयानक अपने विशाल धनुष्य को हाथ से खींच कर कान तक पहुंच कर कृष्ण पर छोड़ दिया। कोध से भगवान ने भी उसके बाण को निराकृत करते हुए भेघ गर्जना के समान गम्भीर वाणी में बोले कि सम्पूर्ण सिद्धियां पराकृम में होती हैं इसलिए अपनी सफ्तता के लिए निश्चय मत करो। ऐसा कहकर भगवान ने अपने धनुष्य को तैयार कर लिया जो देदा होकर मयंकर लग रहा था। उतनी ही देर में भगवान श्रीकृष्ण के पुत्र पृषुम्न जो स्वयं कामदेव हैं तथा इन्द्र के पुत्र पुरन्दर दोनों ही परस्पर स्पर्धा से बढ़े हुए बादल के समान एक दूसरे को मारने के लिए उद्यत हो गए। दोनों हिर के

पुत्र काला तिपात के न सह सकने वाले शेष्ट्रोसे पूर्ण थे। धनुष्य से फैंके गए बाणों के समूह से कभी जीर्ण न होने वाले पिंजरे के अन्दर दोनों की काया प्रच्छन्न हो गई। उनको देखकर उन दोनों के पिता को युद्ध से अलग करने की इच्छा हो गई। उन दोनों ईश्वरों का रोष्य देखकर स्वर्ग में देवगण दिशाओं से भाग खड़ेहुए। पृथ्वी पट गई। इससे पृथ्वी में चीत्कार पैदा हो गया। इन्द्र का हाथी तथा गरूड़ दोनों ही स्तब्ध रह गए दोनों ही चीत्कार से दिशाओं को परइतेहुए से युद्ध की तैयारी करने लगे।

महर्षि देवता आदि सभी भय ते युक्त हो गए और तभी ने अभिन्नांका ते स्वस्त्ययन पाठ प्रारम्भ कर दिया ।

इन्द्र के हितवाहक ने उतनी देर में मुँह फेर देने में उद्यत सात्यिक के वक्षस्थल पर भारी गदा मार दी। जन्म ते जो तात्यिक कभी किसी ते पराजित नहीं हुआ जो भगवान की दाहिनी भुजा के समान था उसका आज अपमान अमित हुआ था । अतुलनीय उस सात्यिक ने अपने कुन्त को चुलोक में प्रका जिल किया उस कुन्त के प्रकाश ने सबको चकाचौंध कर दिया । सात्यिक ने उस भाले से इन्द्रलोक के छत्र को आकाश की और उड़ा विद्या । उस आतपत्र में जो विधित्र रत्न जड़े थे वो चारों दिशाओं में उड़ने से तारों ते युक्त चन्द्रमा के गिरने ते उत्पन्न होने वाला भ्रम जैसा प्रतीत होता था सात्यकि ने इस अद्भुत कर्म से लोकमण्डल के चित्त को आकृष्ट कर लिया । भगवान कृष्ण तात्यिक के प्रति प्रतन्न हो गए। तत्यभामा ने हर्ष के मोती बरतार तथा इन्द्र कोध से युक्त होकर हार मानने लगे। क्रोध से भरकरइन्द्र ने हाथ में बाण उठाया तभी सात्यिक ने रेरावत के हाँकने वाले के मस्तक प्रदेश को बाणों से अंकित कर डाला । साथ ही इन्द्र के ध्वज के धूनन में विचार किया । इन्द्र के पक्ष की ओर का शरप जर प्रवुम्न ने तोड़ डाला । वारिद को विदीर्ण करने वाले सूर्य के समान शिवि पुत्र सात्या कि ने बाण कों छोड़ दिया । देवताओं ने बाण से दूर हटने के लिए शीघ्रता की ।

इत ,पकार श्रीमदुमापति शर्मा विरिधित पारिजातहरण महाकाच्य का दोहदनाम का सत्रहवाँसर्ग समाप्त हुआ।

अष्टादश तर्ग

पारिजातहरणमहाकाच्य के अद्ठारहवें सर्ग में युद्ध के वैष्य्य की शान्ति के लिए भगवान कृष्ण तथा इन्द्र द्वारा स्वयं भगवान शिव की स्तुति की गई है तथा महर्षि क्रयपके द्वारा भी युद्ध सन्धि के लिए भगवान शिव की स्तुति की गई है।

नर और अनर दोनों हिर ने तांयकालीन पूजा तमाप्त करके अलग-अलग प्रतन्तता ते युद्ध के परिणाम की शुद्धि के लिए मगवान् शंकर का क्रम ते त्मरण किया । नर रूपी कृष्ण ने त्थिति मैं तदा शिव को बहुत देर तक ध्यान किया और शत्रु इन्द्र के प्राणों का तौदा करने वाली महायुद्ध की प्रतिज्ञा को सोचते हुए अपने अजेय होने के कारण पारिजात वाले निर्णय को ध्यान किया । बाण से बलपूर्वक पृथ्वी तल को मेदकर पाताल गंगा के जल को निकाल कर मालूर पल में भगवान शंकर को स्थापित करके उनकी अर्चना की । कृष्ण ने उमा के ताथ भावान शंकर को हृदय से ध्यान करके प्राणायाम पूर्वक मानी दूसरे विधाता की मुष्टिट उत्पन्न करतेहुए से हृदय पर हाथों के कमल को हिथत किया और भक्ति पूर्वक गद्दाक्षर कण्ठ से स्तुति किया - हे मगवन् । इस विष्यम परितिथिति में हमारी सिद्धि के लिए प्रसन्त हो । मेरे हुक्षणाई के हृदय में दूसरे बनकर यदि नहीं आते हो तो मेरा अहंकार निराश्रय जो जायगा - जैसे आकाश में अद्भय रहता है वैसे हमारे तुम्हारे में कोई मेद नहीं है। जलराशि से चितकबरी बनी हुई दूसरी संज्ञा को धारण करने वाली वही हम दोनों १ भगवान शंकर और भगवान कृष्ण। में भेद पैदा करता है। संतार के भीतर दिव्यता का पोष्म करने वाले अपने स्थानपर आपकी आत्मा ते युक्त हूं। और जन्म और मृत्यु के ब्याज से इस शरीर को मैं धारण कर रहा हूँ। तत्वतः मैं तुमते अलगक्षण भर के लिए भी नहीं हूँ। हे अनः ।

मेरी अजता तुम्हारे द्वारा अधिश्रित अन्तरता ते तिद्ध होती है। मेरे पास कुछ भी ऐसा नहीं है जो तुम्हारा नहीं है तुम्हीं मेरे प्रभु हो इसलिए अपने की तरह मेरी रक्षा करो । मेरे भीतर तुम हो, तुम्हारे भीतर यह संसार है। जगत् का दूसरा कोई मूल नहीं दिखाई देता है। हे अनन्त। मेरी प्रतिद्ध तमृद्धियां जो हैं वह तुम्हारे अनुगृह ते ही होने वाली है। हे भगवान्। तुम्हारा पिमलिंग रूपी पिण्ड वह पहला पिण्ड है, उसके बाद विविध अंगों वाले हम इस संसार में विस्तृत हुए। जन्म और स्थिति के उभर एक तीतरा पद है, जो किसी का आश्रय नहीं होता निराश्रय का पद प्रलयकाल में तुम्ही हो । जगत में जो रोग दारिद्रय का अभाव है वह तुम्हारी कृपा से है। तुमसे उपेक्षित संसार की गति विषय बन जाती है। हे ईशा मुझ पर अनुग्रह करो । हे । ईश्वर मुझर्में सामंजस्य पैदा करो । अब हमारी विचार पद्गति में मेरा मनकिसी आश्रय को जो तुमसे मिन्न है, उसका अवलम्ब नहीं कर रहा है अर्थात मेरा मन तुम्हीं को आश्रय बना रहा है । हे देव । अपनी विगुणता को त्यागो । सत्व, रजस, तमस् को धारण करो ।गुणवान बनो । अमेद से मेद को स्वीकार करो । मेरी और इन्द्र की प्रिय स्थिति के लिए अपनी प्रभुता ते अनुकूल बनाने वाले भेद को धारण करो ।

तत्पश्चात् गुरु बृहर्गित ने तम्पूर्ण युद्ध का तमाचार महर्षि कश्यप बताया । तब महर्षि कश्यप ने युद्ध की तिन्ध के लिए मगवान् शिव का रमरण किया —

"अयि । देव । देव । तव सेवने उथवा ।

स्तवने गुणाजिस्ति सफ्लोधमो हिकः ।।

जडमेव च त्वदुदितस्पुरं जगत् ।

परिचेष्टते कृतकयत्रवद् यतः ।।

इस प्रकार पारिजातहरण महाकाच्य का कुड्मल नाम का अद्वारहवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - अष्टाद्या तर्ग - 27

एको निवंश - तर्ग

पारिजातहरणमहाकाच्य के एकोन विंश तर्ग में ऋषि कश्यम के आगमन का तथा उनका, इन्द्र तथा भगवान श्रीकृष्ण ते परस्पर तम्वाद का वर्णन मिलता है।

सन्ध्याकालीन पूजा को समाप्त करके भगवान कृष्ण और इन्द्र शस्त्रसहित वेष को धारण करके युद्ध भूमि में गए । इन्द्र ने अपने हाथ में वज़ को धारण किया आर भगवान श्रीकृष्ण ने चक्र को धारण किया । इससे पृथ्वी कांपने लगी, पर्वत हिलने लगे तथा पृथ्वी को धारण करने वाला नाग चीत्कार करने लगा । दिशाएं नाचने लगीं तथा दिन में भी उल्काएं गिरने लगीं । बिना समय ही लोक के क्षय की शंका से दूसरे देवता आतंक से कांपने लगे । सभी देवता कहने लगे हे देवेन्द्र । प्रसन्न हो । हे कृष्ण । दया करो ।

सभी महात्माओं तथा प्रजापति के गुरू तथा तीनों लोकों के स्वामी बृहस्पति ने वहां ऋषि कश्यम के पास पहुँचकर उन्हें युद्ध के लिए सूचित किया और उन्हें प्रणाम करके युद्ध को स्थिगित करने की प्रार्थना की । उस क्षण प्रसन्नता से ऋषि कश्यप चलते हुए दिखाई दिए, उस समय ऐसा लग रहा था जैसे स्वयं आनन्द ने शरीर धारण कर लिया हो । चन्द्रमा की शीतल किरणों को पैलाते हुए सम्पूर्ण पृथ्वी तल को प्रसन्नता प्रदान करते हुए अपूर्व विस्फूर्ति को प्राप्त करते हुए वह ऋषि चल रहे थे, उस समय ऐसा लग रहा था जैसे सोई हुई चेतना को जगा रहे हों । अत्यध्कि हर्ष की वर्षा करते हुए जड़ से जीवन की उन्नति करते हुए ये अपने शरीर की निर्मल कान्ति से प्रार्थमों में शोक की स्थिति को दूर करते हुए वह ऋषि दिखाई दिए । अपनी बेटी पृथ्वी को भगवान् ने पग-पग पदों से अंकित कर दिया । इससे पृथ्वी भी अपने को धन्य समझने लगी ।

ऋषि के आगमन ते ऐता लग रहा था जैते तपस्या का पल तशरीर उपस्थित हो गया हो, मनोरथों का वृक्ष फायुक्त हो गया हो तथा समस्त सिद्धि प्र-वाह हो रहा हो और सम्पूर्ण पापों का विनिगृह हो गया हो। ऋषि का आगमन साक्षात् कृपा के समान था और ब्रह्मा की अध्यात्म शक्ति के संग्रह जसा था। ऋषि के आगमन से सभी इच्छाएं पूर्ण हो गई थीं। इस प्रकार तीनों लोकों के पिता सम्पूर्ण जगत् के गुरू के भी गुरू पदिस्थत हुए । जगत् के प्रपंच के प्रलय को जानकर उनको किसीमें आस्था नहीं थी, फिर भी वे सभी वैभव में स्थित थे। अपनी प्रजाओं में प्रमुख आदित्य की अर्चना करके, मार्ग में शान्ति की धारणा बहाते हुए ऋषि कश्यप ने अपने दोनों पुत्रों इन्द्र और कृष्ण के कल्याण की कामना करते हुए इन्द्र और कृष्ण को युद्ध में पाया उन महात्माओं के उपस्थित होने पर दोनों क्षण भर के लिए स्तब्ध हो गए उन कायप की शान्त द्विट ने रणस्थल को शान्ति का स्थल बना दिया । उनको देखकर लोक निर्माण के वैभव से सम्पन्न अत्यधिक तेज के मध्य दिखाई पड़ते हुए स्वभाव से स्नेह की रस्ती से खींचे जाते हुए नर १ृक्टणा और देवता १इन्द्र उनके चरण में गिर गए। चरण में गिरने ते दोनों अपने को भून गए। प्रतन्तता की सागार तरंगों में प्रवाहित होने वाले उन दोनों को भुजाओं में लेकर उनके पिता ने धिपका कर उनका हृदय से अभिनन्दन किया । उन दोनों के उठे हुए शिए को चूम कर यादव और इन्द्र को देखने की स्पर्धा को पीकर उस क्षम अंक में आर हुए तुधाकान्त की वर्धा करते हुए तन्तुष्ट हुए । उन दोनों को अपने पार्श्व भाग में बिठाकर स्वंय मध्य में बैठ गए । तब श्रीपति कृष्ण ने उनके चरणों को धोया और इन्द्र उनके शिर पर पंखा झलने लगे। तब क्रम से सात्यिक और मीनकेतु आए और पांचों अवयवों को भुनाकर उनको प्रणाम करके ऋषि के चरणाँ में बहुत देर तक सेवा की । सत्यभामा ने भी पहुँचकर पृभु को प्रणाम करके उनके दोनों चरणों की तेवा की । तब श्राध्य ने प्रतन्न होकर उनको आशीर्वाद दिया कि पृथ्वी पर तुम्हारी कीर्ति पैले।

er (* 1945) er fan Sylla ses

तब ऋषि कश्यप का इन्द्र और कृष्ण ते यद्ध के विषय में परस्पर तम्वाद हुआ और ऋषि ने उन लोगों को युद्ध रोकने की प्रेरणा दी और कहा —

> "वदेन्द्राते क्व प्रभुतागता दिवो । यदर्थितोडप्यर्थ्य पदाब्परेणुना ।। स जातु लक्ष्मीपतिनाअमुना मुदा त्वया स्वयं । नोपहृतः सुरद्भमः ।।

इस प्रकार श्री उमापति द्विदी विरचित पारिजातहरणमहाकाच्य का पुष्टिपत नामक उन्नीसवां सर्ग समाप्त हुआ ।

विंश - सर्ग

पारिजातहरणमहाकाच्य के विंश तर्ग में ऋषि कश्यप के द्वारा माता
अदिति की महिमा का वर्णन किया गया है। भगवान कृष्ण के द्वारा भौमासुर
राक्षम के वध की तैयारी तथा उत्तके वध का वर्णन किया गया है। ऋषि कश्यप
के द्वारा भगवान नारायण की स्तुति की गई है। भगवान का पाताललोक में
गमन है। भगवान कृष्ण के द्वारा राजकन्याओं का उद्धार का वर्णन किया गया है।
कृष्ण के द्वारा माता अदिति के कुन्डलों को लाने का वर्णन किया गया है। ऋषि
कश्यप आदि के साथ स्वर्ग आगमन का वर्णन किया गया है, उपहार स्म में
पारिजात को पाकर भगवान कृष्ण का द्वारिका को प्रस्थान है इसका वर्णन
किया गया है।

माता अदिति की महिमा के विषय मे निम्न शलोक —
"श्लोकस्त्वयाअपि जननीं स्तुवतेन्द्र गीतो
देवै:समं महिष्मर्दनद्वशा न्तिम् ।
च्यासो क्तिसम्प्रिष्तसप्तशतीस्तवे तं
सत्यं पुनश्च युवयोः स्मृतिमानयामि । 1-1-

पारिजातहरणमहाकाच्य - एकोनविंश सर्ग-34

^{2.} पारिजातहरणमहाकाच्य - विंशा तर्ग - 20

इस प्रकार प्रवचन करने वाले महर्जि कश्यप के कहने पर आवेश तहित भगवान के शरीर में लोम पंक्तियाँ प्रकट हो गई थी । भगवान कूँ छण का शरीर रकत वर्ण की कान्ति से यक्त हो गया तथा आई से अभिमृत हो गया । बढ़े हुए क्रोध से आँख कसैली और रक्तवर्ण की हो गई। शान्ति को न प्राप्त हुई तो उनकी भुजायें पड़पड़ाने लगीं। इन्द्र के क्ष्यू भौमासुर राक्ष्म जो माता अदिति के कुणडल पुरा ले गया था, उसको मारने के लिये उनका यक नाचने लगा । भगवान ने महर्षि कश्यप से कहा है जनक। क्षणमर ठहरो दुःख न करो ऐसा कहकर अपने वाहन गरमा को बुलाया और कहा अगर यह असूर मेरे द्वारा नहीं मारा गया तो आपके मौन रहते हुए भी आज से हे तात ! तुम्हारे भीतर विजाद के होते हुए भी काशयपी का पुत्र कृदण कहां ठहरेगा, इस प्रकार कहते हुए ही उठ खड़े हुए और अपने वाहन गरन्ड पर चढ़ गये और सत्यभामा ने अपने पुत्र को पिता के चरणों की सेवा के लिये तथा पारिजात वक्ष की रक्षा के लिये सम्बोधित किया । श्री कश्यप भगवान कृष्ण के बढ़े हुये कोध को देखकर मन ही मन प्रतन्न हुए और प्रतन्न मन से नारायण की स्तुति की - हे अनन्त ! तुमको नमस्कार है । तुम हम जैसे लोगों के प्रजा का पालन करने वालों के भी रक्षक हो । संसार का आश्रय हो । गदा, पदम्, शंख, वकृते मीनादि अनेक अवतारों में क्रीडा करने वाले हो । शेष्ट्रनाग के फन पर तुम्हारा अथन है। कूर्मावतार धारण करने वाले माया के तुम आन्नय हो।

प्रत्यकाल में अपनी कोख से सम्पूर्ण विश्व को एक्त्र करने वाले ईश्वर तुमको नमस्कार है, मुनि के मुख से इस गीत स्त्रोत को सुनकर अभ्य की मुद्रा को धारण करने वाले कृष्ण बोले – हे मुनि मेरी स्तुति पढ़ने वालों का अभ्य निश्चित हो जाता है। ऐसा कहकर उड़ते हुए अपने पक्षी गरह की गति से, प्रसन्न होकर शीघ्र रसातल में घुस गए। ईश के हृदय में क्या है, ऐसा सोचकर मुनि पहले शत्रु की नगरी में पहुँच गए। वहाँ पर मुनि ने चारों दिशाओं से आई हुई हजारों कन्याओं को देखा। मुनि उन कन्याओं के पास पहुँचकर दया से युक्त बोले – तुम लोग दुःखी मत हो, शीघ्र ही तुम लोग श्रेष्ठ और दुर्लम पल को प्राप्त करोगी। मुनि के वचन को सुनकर चरणों में झुकी कन्याएं प्रसन्न हो गई। उन मुनि की बात सुनकर नरकासुर के हृदय में संदेह के साथ पैदा हो गया। आतंक से शंकित मन वाले

उस राक्षम ने नारद से पूछा इन कन्याओं को कल कौन सा पल प्राप्त होगा। मुनि बोले मधुसूदन आ रहे हैं, उनके सुदर्शन चक्र से मुक्ति को प्राप्त होंगे। मेरा यह परामर्श है कि जिस सम्पत्ति को प्राप्त करके तुम योग्य बने हो वह आसुरी सम्पत्ति इस नक्ष्मी का एक अंश भी बराबर नहीं है। वह सम्पत्ति महेश पद की रेशवर्य के कण से भी निकृष्ट है। तुम भूमि के पुन हो इसलिए भूमि सम्बन्धी सुख के योग्यहें। परन्तु तुमने उसके विरद्ध जो अलौ किक आ भरण इन्द्र की माँ का हर लिया है वह एक अपराध तो भगवान कृष्ण के द्वारा तो क्षम्य है पर उसके लिए तुमने जो चेऽटा की है वह क्षमा योग्यनहीं है। वह कृष्ण तुम पर आकृमण करेंगे अतः मैं सलाह देता हूँ यदि तुम उनकी शरण में जाओंगे तो तुम्हारा कल्याण होगा अन्यथा विपत्ति तुम्हारी और आ रही है। इस प्रकार ऋषि के दारा नारायण की स्तुति किए जाते हुए ही भगवान कुडण का पाताल लोक में गमन हुआ कृष्ण के दारा आदि दुर्ग बाणों से नष्ट कर दिया गया और गदा से उसके भवन पर प्रहार किया गया । गरूड़ ने अपनी चौंच से द्वार को तोड़ दिया और शतु के सैनिकों पर करो चरण से प्रहार किया । इस प्रकार युद्ध करते हुए भगवान कृष्ण ने भौमातुर का वध करदिया पिर उसके द्वारा बन्दी बनाई गई सोलह हजार राज कन्याओं का उद्धार किया। तत्पत्रचात् भगवान कृष्ण कश्यपश्चिष आदि के साथ स्वर्ग आ गए वहाँ पर माता अदिति के कुण्डलों करा को लाकर मुरराज इन्द्र के अधीन कर दिया। इससे इन्द्र ने प्रसन्न हो कर उपहार रूप में पारिजातवृक्ष को भगवान कृष्ण को दे दिया । तब वहाँ ते भगवान ने दारिका को प्रस्थान किया ।

इस प्रकार पारिजातहरणमहाकाच्य का फ्लोदगम नामक बीसवां सर्ग समाप्त हुआ ।

एक विशा सर्ग

पारिजातहरणमहाकाच्य के एक विंशा सर्ग में सत्यभामा के घर में पारिजात वृक्ष का आरोक्ण तथा बसन्तऋतु का वर्णन, भगवान कृष्ण की रासलीला का वर्णन और अन्त में कवि की प्रार्थना का वर्णन किया गया है। सम्पूर्ण दारिकापुरी भगवान् कृष्ण का स्वागत करने के लिए बहुत उत्कंठित थी। तब पुत्र और पत्नी सहित भगवान् कृष्ण की सब प्रकार से दारिका पुरी के लोगों के दारा पूजा की गई। दारिकापुरी के प्रत्येक सदन अतुलनीय सुगन्धों से युक्त थे तथा पानी से सिक्त मार्ग थे। सदन के गवाक्ष लावा और पुष्पों से युक्त थे। पुरवासी अत्यन्त प्रसन्न थे। इस प्रकार भगवान् कृष्ण प्रसन्न होते हुए धीरे-धीरे आगे बढ़ गए और पग-पग पर चलने वाले गरह के साथ अपने आलध्य में गए।

इन्द्रलोक में यह पृथ्वी सारे बीजों की एक मात्र प्रसव स्थान है। सारी पृथ्वी का नायक वह आप विष्णु हैं। पृथ्वी को अधिकार में करके पारिजात वृक्ष का ले आना और उसका आरोपण, अपने लोगों की सुख्वृद्धि तो केवल एक बहाना है। द्वारिका के रहने वाले लोग प्रतिदिन दूर से आकर पारिजात को देखते और पूजा इत्यादि करते थे, इस तरह सत्यभामा का घर अतुलनीय तीर्थ बन गया। इस प्रकार भगवान् कृष्ण ने शीत तथा शिशिर ऋतु को सप्यभामा की प्रांता करते हुए अच्छी तरह बिताया । देवताओं के योग्यपुरूप के वृक्ष उस पारिजात को देखकर बसन्त भी प्र+थ्वी में रमण करने के लिए भगवान कृष्ण के साथ हो गया अर्थात् बसन्त ऋतु का आगमन पृथ्वी पर हो गया है । वृक्ष के पत्ते झड़ने लगे, क लियां प्रादुर्भृत हो गई। वन नए-नए किसलयों से यक्त हो गए हैं। यह ऋतुराज बसन्त पृथ्वी पर धीरे-धीरे आ गया है। इस ऋतुराज का जन्म भौरों की मधुरवाणी के द्वारा स्तूयमान हो रहा है और प्रिय कोयल की वचनाली द्वारा गाया जा रहा है। अपने मित्र के पास आने से प्रसन्न कामदेव मित्र के स्वागत के लिए जितने वर और अवर हैं तबमें ट्याप्त हो गया है। खिलती हुई वृक्षों की लताओं से सजी हुई सारी पृथ्वी आनन्द युक्त होगई है। अपने धनुष्य को धारण करते हुए कामदेव ने सकल लोगों के मन को प्रेमपूर्ण कर दिया है। विक्रित मदन पुष्प के अंगों में मल्लिका नाम की लता पुष्पों ते युक्त होकर उसके अंक मे समा गई । विकसित होती हुई आमुलता में माध्वी नाम की लता मदमत्त हो रही है। खिले हुए मौल तिरी के वृक्ष में मालती प्रतन्न हो रही है। इस प्रकार मधुमात ने जड़ और वेतन में रित को धारण किया। बतन्त की परिचर्या की पूर्ति

के लिए तभी में तहचरण के लिए जो कामदेव ट्याप्त हो रहा है, उसके विरुद्ध विरही लोगों में कूद्ध हो कर विरहियों को भेद्र कर खिले हुए पलाशों का हृदय की पंखुडियों का मानों भेद रहा है अर्थात् बसन्त ऋतु में पलाश वृक्ष नहीं खिलते हैं इसी का वर्णन किया गयाहै।

अपने-अपने स्वभाव के अनुतार बूढ़े, युवक, कुमार तभी कामदेव की आराधना कर रहे हैं। कल्पवृक्ष भी अपनी दिव्यता से उल्लिसित हो गया है। उस विकसित स्वं अदुष्ट से अपने स्प वैभव से तथा अपनी सुगन्ध से उस पूरी नगरी को अपूर्व कान्ति से भर दिया है जिस नगरी ने वैभव के द्वारा देवपुर को पहले ही जीत लिया था। वह कल्पवृक्ष दूसरे नर-नारी को भी रमण सुख प्राप्त कराता हुआ मानों कोमल पंचमस्वर में गीत गारहा है।

इस प्रकार मधुमास का मारूत विहरण करता हुआ लोगों के घर के भीतर बाहर नर्म सचिव का काम करनेलगा । स्वयं जो श्रृंगार का देवता मथुरा का स्वामी कृष्ण, जिसने शरीर रहित को अपने शरीर से उत्पन्न करके शरीर वाला बना दिया, उस प्रयुम्न से भी जो अविरुद्ध उत्पन्न हुआ है उसकी स्त्री रति को देखकर प्रेम से अत्यन्त विनोद के मोदन से रत क्यों न होगा। अर्थात् कृष्ण ने अपनी रासलीला प्रारम्भ करने की तैयारी कर ली। स्त्री-पुरूष के भाव को प्राप्त करके तारी अतुरं, परस्पर मधुमयरति का अनुभव करने लगीं। भगवान के गृहिणी-गण ने भी इकद्ठे होकर कृष्ण के बाल्यकाल में जो इस गोष्ठी आचरित थी और जो शरदातु में हुई थी, मधुमास में आज फिर रचाने के लिए कहने लगे। पीताम्बर-कृष्ण प्रियजनों के द्वारा अनुरोध किए जाने पर रास से युक्त हो गए और दाहिने रहने वाली रूकिमणी के साथ रमण करने लगे। रात शुरू करने पर मधुमात सभी स्थितियाँ अनुकूल पैला दी । भौरोँ ने मधुर गुंजन शुरू किया । अपनी-अपनी उन्दी-धीमी मीठी-मीठी ध्वनियों से उसी क्रम में तूर्यनाद को विहंगों ने धारण किया । उभर उछलते हुए फेन स्पी हास वाला वह जलाशय मानों प्रसन्न होकर नाचने लगा । भगवान ने वैशी को अधर में धारणा किया । उस बांसुरी ने मंगलायरण का नान्दीगीत गाना शुरू कर दिया और और वह बांतुरी भगवान के नाखून, दाँत और अधर की कान्ति से इन्द्र-धनुष

की आभा वाली होगई है। उन भगवान ने काम को प्रसन्न करने वाली
जितनी वेदटायें हैं उनको प्रारम्भ कर दिया और पांव तक लटकती पूनों से
धिरी माला को धारण करके अपनी त्रिमंगी स्थिति में खड़े हो मये। चन्द्रमा
कामदेव की रंगमाला को उद्दीप्त कर रहा था। भगवान सूर्य का रथ मी
स्थिर हो गया था। बसन्त के आनन्द को प्राप्त करके दिन की मोभा को
बिना समाप्त किये निमाकर और दिवाकर के होते हुये वह समय न तो दिन
या न रात थी यह बड़ा ही विधित्र समय था। कृष्ण के नखे के प्रकाश से
जिसका अंग रंग गया है रेसी बांसुरी गाने लगी। सम्पूर्ण जगत स्तब्ध हो गया।
सब एक रस हो गर भगवान की बांसुरी में डूब गर। सारा भुवन जैसे छुन्दावन
ही हो गया। कृष्ण की रासलीला का उत्सव छुलोक और पृथ्वी सर्वत्र ट्याप्त
हो गया। तीनों गुणों के स्वामी और सोलह कलाओं के निधान कृष्ण ने
अपने पास सत्यभामा को देखकर उनका आलिंगन किया। कन्हैया के मुख से
युम्बित बांसुरी पुनः गाने लगी। रस की अनुभूति में अद्वयता का आनन्द प्राप्त
होने लगा। कृष्ण एक साथ द्वितीय बनकर रमण करने लगे।

पत्येक प्राणी की प्रकृति जो स्वभाव से एक दूसरे से भिन्न भी वह प्रकृति मण्यान में लीन होकर समग्र हो गयी है। किव की यह वा ग्देवी उन मण्यान कृष्ण के मल रहित चरण कमल की स्मृति से युक्त होकर मन ही मन मगन हो रही है और कल्याणमयी हो रही है। हे मणवन मण्यान विष्णु से अलग होने का जो मेरा भय है वह हर लो। स्वभाव से निर्मित यह तुम्हारी कृति तुम्हारे चरण कमलों में अर्थित है। काशी में प्रकाशित हुई काशिनाथ मणवान शंकर को यह मेरी कृति प्रिय लगे। मेरे एक मात्र आश्रय भूत जो मेरे माता जिता के चरण है उसको बार-बार नमस्कार है। कान्ताराम पद से कहे जाने वाले जिता और मैंयादिका नाम की माता का में पुत्र हूं। रस से युक्त नया काव्य जो उमाणित ने रचा वह पारिजात से सम्बन्ध रखता है। श्री हिर जिसके नाम के पहले है वह काव्य है, उसका आखरी सर्ग बीत मया।

इत प्रकार उमापति दिवेदी विरिधित पारिजातहरण महाकाच्य का इक्जीलवाँ तर्ग तमाप्त हुआ।

"अधिकारिक तथा प्रातंगिक वृत्त "

उपादेयता की दृष्टित से कथावस्तु दो तरह से विभक्त होती है —
मुख्य कथावस्तु और उसकी अंगभूत कथावस्तु, जिससे मुख्य कथा के विकास में
सहायता मिलती है । दोनों को क्रम्माः अधिकारिक और प्रासंगिक कथावस्तु
कहते हैं अर्थात मुख्य वस्तु अधिकारिक कथावस्तु कहलाती है तथा अंग्रह्म
प्रासंगिक कथावस्तु कहलाती है । उदाहरण राक्ष्सवध्, सीताप्राध्ति,
रामराज्य की स्थापना रामायण कथा का पल है इसके स्वामी राम है ।
अतः आरम्म से रावणमध , सीता प्राध्ति तथा राज्या मिष्क तक की कथा
अधिकारिक कथावस्तु है ।

जो कथा या वृत्त दूसरे है अधिकारिक केई प्रयोजन के लिए होती है किन्तु प्रसंग से जिसका स्वयं का पल भी सिद्ध हो जाता है, वह प्रासंगिक वृत्त है।

प्रातंतिक इतिवृत्त का प्रमुख ध्येय अधिकारिक वृत्त की पत निर्वहणता में तहायता प्रतिपादित करना है किन्तु प्रतंगतः उसका स्वयं का भी पत होता है जैसे सुमीव कथा का प्रयोजन बालिवध तथा राज्य लाभ तथा

[।] अधिकारः क्लेस्वाम्यमधिकारी व तत्प्रभः। तथ्येति वृत्तं कविभिराधिकारिमुच्यते।। ताहित्यदर्पण - 6

² प्रातंभिक परार्थत्य सवार्थों यस्य प्रसंगतः । साहित्यदर्पण

विमीष्ण वृत्त का प्रयोजन लंकाराज्य प्राप्ति ।

यह प्रातंगिक इतिवृत्त भी पताका तथा प्रकरी दो तरह का होता है -

"तानुबन्धं पताकाख्यं प्रकरी च प्रदेशमाक् "

जो प्रातंगिक कथा अनुबन्ध सहित होती है तथा रूपकों में दूर तक चलती रहती है वह पताका कहलाती है तथा जो केवल एक ही प्रदेश तक सीमित रहती है वह प्रकरी कहलाती है। उदाहरण - रामायण की कथा में सुग्रीव तथा विभीषण का वृतान्त पताका है वह दूर तक चलती है वह मुख्य नायक के पताका चिह्न की तरह आधिकारिक कथा तथा मुख्य नायक की पोष्क होती है। पताका का नायक मिन्न होता है वह पताका नायक कहलाता है। रामायण में छोटे-छोटे वृत्त प्रकरी है जैसे - शबरी आदि का प्रसंग।

विभिन्न रतों के यो ग्य विभाव इत्यादि का प्लप्राप्ति पर्यन्त ठीक स्वरूप झान व्युत्पत्ति कहा जाता है और प्ल अद्भूष्टवश देवता प्रसाद से अथवा अन्य कारण से उत्पन्न होता है वह उपदेश देने यो ग्य नहीं होता उससे उपायक्रम से प्रवृत्ति की तिद्धि और अनुपाय द्वारा प्रवृत्त का नाश इस प्रकार नायक और प्रतिनायक गत अर्थ और अनर्थ की व्युत्पत्ति करा दी जानी चाहिए। कत्ता के द्वारा आश्रय लिए जाने पर उपाय पांच अवस्थाओं को प्राप्त कर लेता है।

वह इत ,पकार है - स्वरूप, स्वरूप का कुछ परियोध कार्य सम्यादन की योग्यता, प्रतिबन्ध के आ पड़ने की आशंका, प्रतिपक्ष के निवृत हो जाने पर बाधक के बाधन द्वारा तुद्ध पन पर्यन्तता कब्ट को सहन करने वाने नोगों का इस प्रकार कारण का उपादान होता है ।

^{। &}quot;तंताध्ये प्लयोगे तुट्यापारः कारणस्य यः तत्यानुषूर्व्या विद्वेषाः पंचावत्थाः प्रयोक्तृभिः । प्रारम्भद्र प्रयत्नत्व तथा प्राप्तेत्व तम्भवः नियताक्य प्लप्राप्तिः पल योगत्व पंचमः ।।

ये कारणगत पाँच अवस्थाएं भरत मुनि ने अपने नाद्य शास्त्र ते में कही है - पल योग के तिद्ध किए जाने में कारण का जो व्यापार उसकी अनुपूर्वी ते प्रयोजताओं के द्वारा पाँच अवस्थाएं ज्ञात की जानी चाहिए - १११ प्रारम्भ, १२१ अ प्रयत्न, १३१ प्राप्ति के हेतु की सम्मावना, १४१ पल प्राप्ति का नियत होना, १५१ पलयोग।

इत प्रकार जो कार्य की अवस्थार हैं उनका तम्पादन करने वाला जो कर्ता का इतिवृत्त पांच भागों में विभक्त ककिया गया है वही मुख, प्रतिमुख, गर्भ, अवमर्श और निर्वहण नामक अन्वयं संज्ञावाली पांच तन्ध्यां होती हैं।

इस प्रकार जो ये पाँच कारण की अवस्थाएँ हैं उनका सम्पादन करने वाला कर्ता का इतिवृत्त होता है वह इतिवृत पाँच मार्गों में विभक्त किया गया है इन मार्गों को पाँच सन्धियां के नाम से अमिहित किया जाता है। सन्धि शब्द सम उपसर्ग - धा धातुं से कर्म में "कि" प्रत्यय होकर बनता है। इस ट्युत्पत्ति के अनुसार इसका अर्थ होगा जिसका अनुसन्धान किया जाए उसे सन्धि कहते हैं सन्धान इति वृत्त का किया जाता है अतः इतिवृत्त खण्डों को सन्धिकहते हैं।

"मुख" का अर्थ है - प्रारम्भ अतः प्रारम्भ में बीज की उत्पत्ति को मुख सन्धि कहते है प्रतिमुख शब्द का अर्थ है जिसमें प्रतिष्ठित किया जाय या आगे बढ़ाया जार अथवा मुख के प्रतिकृत बढ़ाया जार प्रतिमुख सन्धि में एक तो मुख सन्धि के निर्दिष्ट बीज को आगे बढ़ाया जाता है दूसरे प्रयत्न के प्रारम्भ हो जाने से कर्म बीज प्रकट रहता है कभी अप्रकट यह त्थिति मुख के प्रतिकृत होती है क्यों कि मुख्यन्धि में बीज प्रकट ही रहता है। गर्भ शब्द गृथातु से मन प्रत्यय तगकर बना है जिसका अर्थ है निगरण कर लेना गृथा कर लेना इस सन्धि में बीज गर्भित हो जाता है अतः इसे गर्म सन्धि कहते हैं। "विमर्श" शब्द में "वि" उपसर्ग का अर्थ है छानबीन अतः जहाँ छानबीन से बीज का परिज्ञान हो और छानबीन से ही सफलता भी अतीत हो वहां विमर्श सिन्ध होती है निर्वहण का अर्थ है निर्वाह उसमें बीज का अर्थ है निर्वाह कर दिया जाता है अतः इसे निर्वहण सिन्ध कहते हैं इन सिन्धमों के द्वारा पन का निर्वाह किया जाता है।

बीज से तभी व्यापार बिन्दु ते अनुसन्धान तथा कार्य से निर्वाह

संक्षेपतः इस प्रकार कहा जा सकता है – कथावस्तु प्रायः मानव जीवन के किसी तथ्य की अभिन्यक्ति लेकर पल्लिवित होती है इस तथ्य का विकास कथावस्तु की अर्थ प्रकृति बन जाता है अर्थात इस तथ्य को अर्थ हुं मुख्य प्रयोजनह कहते हैं। इस अर्थ के विकास में कार्यक्रम या न्यापार की शृंखना होती है उसे अवस्था और इस अवस्था के संयोग से अर्थ प्रकृति के रूप में विस्तृत कथानक को जो पांच अंगों में विभक्त रहता है आपस में परस्पर सम्बन्ध करने को सन्धि कहते हैं। इस प्रकार अर्थ प्रकृति अवस्था और संधि के पांच – पांच मेद होते हैं जो इस प्रकार की अर्थ प्रकृतियां:-

अर्थ प्रकृतियां

\$1\$ बीज, \$2\$ बिन्दु, \$3\$ पताका, \$4\$ प्रकरी \$5\$ कार्य

अवस्था यें

त न्धियां

१। १ मुख्सन्धि, १२१ प्रतिमुख सन्धि, १३१ गर्भसन्धि, १४१ विमर्श १ अवमर्श सन्धि, १५१ निर्वहणसन्धि।

कवि उमापति विरिधित पारिजातहरण महाकाच्य में अधिकारिक तथा प्रासंगिक वृत्त मिलता है तथा अर्थप्रकृतियां अवस्थारं और सिन्ध्यां भी मिलती हैं। इनका वर्णन निम्न प्रकार से प्रस्तुत है:

मुख्य वस्तु आधिकारिक कथावस्तु कहलाती है। पारिजातहरण महाकाच्य ते पारिजात वृक्ष का हरण मुख्य अथवा आधिकारिक कथावस्तु है तथा इसके अंगरूप में और कथावस्तु प्रासंगिक कथा वस्तु है।

मुख्य पल का कारण मूत कथा भाग जिसका पहले बहुत संक्षेप में कथन किया जाता है और आगे वह क्रमशः विस्तृत होता जाता है। पारिजातहरण महाकाच्य के प्रथम सर्ग में रुक्मिणी के द्वारा दूती केमुख से वृत के उद्यापन के लिए भगवान कृष्ण से अनुमति की याचना और उसकी प्राप्ति बीज अर्थ प्रकृति है।

कारण बनकर आने वाली यह बात बिन्दु कहलाती है। जिससे तमा प्त होने वाली अवान्तर कथा आगे बदती है और प्रधान कथा अविच्छिन्न बनी रहती है। पारिजातहरण महाकाच्य में मण्यान कृष्ण ने अपनी प्रिया तत्यभामा के मनोविनोद के क्याज से शरद्शतु की विशेषताएं हर्ष के साथ दिखाया।

[।] पारिजातंहरण महाकाच्य - प्रथम सर्ग - 61

² पारिजातहरण महाकाच्य - प्रथम तर्ग - 63

³ पारिजातहरण महाकाच्य - दशम सर्ग - 26

गरदशतु के वर्णन के तमय क्षण भर के लिए वह अपने मुख्य उद्देश्य पारिजातवृक्ष को भून ही गए थे तब तक ही नारायण ने नारद को आ गया देखा ।

तमा प्त होने वाली अवान्तर कथा इस बात से आगे बद्गी है अतः यह बिन्दु अर्थप्रकृति है ।

वह प्रातंगिक कथावस्तु जो दूर तक चलती रहे इसका पन भी प्रायः वहीं होता है जो प्रधान कथा का होता है इस काट्य में इन्द्र का पारिजात वृक्ष को न देना । और उसके लिए युद्ध करना एक दूर ट्यापी कथानक हो जाता है । अतः यह प्रताका अर्थ प्रकृति है ।

प्रातंतिक कथावरत् के छोट्टे-छोटे वृतों को प्रकरी कहते हैं। पारिजात हरण महाकाच्य में नारद इन्द्र तेवाद प्रकरी अर्थ प्रकृति है।

कार्य का अर्थ पल है जिस पल की प्राप्ति के लिए यत्न किया जाता है और जो साध्य होता है वह कार्य है इसी के अन्तिम लक्ष्य या मुख्य प्रयोजन कहते हैं बारिजातहरण महाकाच्य में युद्ध में कृष्ण का जीतना तथा पारिजातवृक्ष का उपहार रूप में पाना और सत्यभामा के घर में पारिजातवृक्ष का आपोपण अगदि का प्रसंग कार्य अर्थ प्रकृति है।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - स्कादश तर्ग - 100

² पारिजातहरण महाकाच्य - सप्तदश सर्ग -

उ पारिजातहरण महाकाच्य - स्कादश सर्ग - 22-101

⁴ पारिचातहरण महाकाच्य - एकविश तर्ग - 19

जहां कार्य के आरम्म की सूचना मिले कार्य सिद्धि के लिए नायक में जो उत्सुकता होती है उसे आरम्म कहते हैं पारिजातहरण महाकाच्य में कृष्टण के पारिजात वृक्ष को पाने की उत्सुकता आरम्म अवस्था है। कार्य को सिद्ध होते न देखकर उसके लिए भी भीष्नता के साथ उपाय करना प्रयत्न है पारिजातहरण महाकाच्य में पारिजातवृक्ष न मिलने पर उसके लिए कृष्ण का इन्द्र से युद्ध यत्न अवस्था है।

उपाय और विघ्न दोनों के बीच की अवस्था, जब दोनों की खींचातानी में पल-प्राप्ति का निश्चय न किया जा सके, प्राप्तयाशा है। पारिजातहरण महाकाच्य में पारिजातवृक्ष को लाने के लिए नारद को इन्द्र के पास भेजने तथा इन्द्र का कृष्ण से युद्ध प्राप्त्याशा अवस्था है।

विध्न के नष्ट हो जाने से जहां पल प्राप्ति का पूर्ण निश्चय हो जार वहाँ नियताप्ति है। इस महाकाच्य में कृष्ण का युद्ध में जीतना नियताप्ति अवस्था है।

पूर्ण रूप ते उद्देश्य की प्रास्ति पलागम है। पारिजातवृक्ष का उपहार ४ रूप में पाना और तत्यभामा के घर में वृक्ष का आरोपण पलागम अवस्था है।

आरम्भ नामक अवस्था और बीज अर्थ प्रकृति का जहाँ संयोग होता है उसे मुख सन्धि कहते हैं। पारिजातहरण महाकाच्य में प्रारम्भ में दूती का मणवान कृष्ण के पास जाना इत के उद्यापन के लिए मणवान से अनुमति की याचना और उसकी प्राप्ति तथा नारद का इनद्र के पास जाना तथा कृष्ण के पारिजातवृक्ष को पाने की उत्सुकता मुख-सन्धि है।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य -सप्तदश सर्ग - 1-72

² पारिजातहरण महाकाच्य - एक विंश तर्ग - 22

³ पारिजातहरण महाकाच्य - तप्तदश सर्ग - 31

प्रतिमुख सन्धि प्रयत्न अवस्था और बिन्दु अर्थ प्रकृति की कार्य शृंखना को आगे बढ़ाती है पारिजातहरण महाकाव्य में नारद से इन्द्र का युद्ध के लिए संदेश मेजना प्रतिमुख-सन्धि है।

गर्मतिन्ध में प्रतिमुख तिन्ध का किंचित् आविर्मूत बीज बार-बार प्रकट, गुप्त और अन्वेषित होता रहता है। यह तिन्ध प्राप्याशा अवस्था और पताका अर्थ प्रकृति के बीच की तिथित होती है। पारिजातहरण महाकाच्य में भगवान कृष्ण का नारद को इन्द्र के पात नन्दन वन मेजना और नारद का वहां ते वापित आना इत प्रकार उपाय का हात तथा अन्वेष्ण होता है अतः यहां गर्मतिन्ध है।

विमर्श तिन्ध वहां होती है जहां बीज के अधिक विस्तृत होने पर

उसके फ्लोन्मुख होने में बिघ्न उपित्थत होते हैं इसमें नियता प्ति अवस्था
और प्रकरी अर्थ प्रकृति होती है पारिजातहरण महाकाच्य में पारिजात वृक्ष का
कृष्ण को मिलना अत्यन्त सम्भव है किन्तु इन्द्र का युद्ध करना बड़ा भारी विघन
है अतः यहां विमर्श तिन्ध है।

निर्वहण सिन्ध में पलागम अवस्था और कार्य अर्थप्रकृति होती है।
पारिजातहरण महाकाच्य में भगवान कृष्ण का युद्ध में जीतना तथा पारिजात
वृक्ष का उपहार रूप में पाना और अन्त में पारिजात वृक्ष का सत्यभामा के
घर में आरोपण निर्वहण सिन्ध है।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - एकविंश सर्ग - 17

"इक्कीत तर्गात्मक पारिजातहरण एक पूर्णकाच्य है"

साहित्य शास्त्र ग्रन्थों में महाकाट्य की परिमाधा इस प्रकार दी गई है। विश्वनाथ ने अपने ग्रन्थ साहित्य दर्पण के षठ परिच्छेद में महाकाट्य के लक्षण के सम्बन्ध में कहा है:-

जिसमें तर्गों का निबन्धन है वह महाकाट्य कहलाता है । इसमें एक देवता या सदवंश क्षत्रिय जिसमें धीरोदात्तवादि गुण हो नायक होता है कहीं एक वंश के सत्कूलीन अनेक भूप भी नायक होते हैं। श्रुंगार, वीर और शान्त रस में ते कोई एक रस अंगी होता है। अन्य रस गीण होते हैं। सब नाटक सन्ध्यां रहती है। कथा रेतिहा तिक या लोक प्रसिद्ध सज्जन संबंधिनी होती है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इस चतुवर्ग में से एक उसका पन होता है। आरम्भ में आर्शीवाद नमस्कार का गुण वर्णन होता है। इसमें न तो बहुत छोटे न बहुत बड़े आठ ते अधिक तर्ग होते हैं। उनमें प्रत्येक में एक ही छन्द होता किन्त तर्ग का अन्तिम पद्यभिन्न छन्द का होता है। कहीं-कहीं तर्ग में अनेक छन्द भी मिलते हैं। तर्ग के अन्त में अगली कथा की तूचना होनी या हिए । इसमें सन्ध्या, सूर्य, यन्द्रमा, रात्रि, प्रदोध, अन्धकार, दिन, प्रातः काल, मध्याह्न, मुगया, पर्वत, ऋतू, १७हाँ वन, समुद्र, संभोग, वियोग, मुनि, त्वर्ग, नगर, यह, तंग्राम, यात्रा, विवाह, मन्त्र, पुत्र और अभ्युदय आदि का यथासम्भव सांगोपांग वर्णन होना चाहिए । इसका नाम कवि के नाम ते १ जैते माघ । या चरित्र के नाम ते १ जैते कूमार तम्भव १ अथवा चरित्र नायक, के नाम ते १ जैते रघुवंशा होना चाहिए। कहीं इनके अतिरिक्त भी नाम होता है ईजैसे भदिटी है। सर्ग की वर्णनीय कथा से सर्ग का नाम

रखा जाता है।

पारिजातहरण में महाकाच्य के ये लक्ष्म प्रायः पूर्णत्या घटित होते हैं। इसका कथनाक हरिवंश पुराण से लिया गया है तथा इक्कीस सर्गों में कथा का निबन्धन हुआ है। भिन्न-भिन्न पुराणों में पारिजातहरण कथा मिलती है किन्तु हरिवंश पुराण में पारिजातहरण की बिलकुल वैसी ही कथा मिलती है जैसी की पारिजातहरण महाकाच्य में बताई गई है अतः पारिजातहरण महाकाच्य के कथानक का आधार हरिवंश पुराण ही है। इक्कीस सर्गों में पारिजातहरण महाकाच्य के कथानक का आधार हरिवंश पुराण ही है। इक्कीस सर्गों में पारिजातहरण महाकाच्य की कथा का निबन्धन हुआ है। जिसमें किसी सर्ग में वस्तु वर्णन है, किसी में प्रकृति वर्णन है, किसी में संवाद सूक्त हैं तथा किसी में भगवान की स्तुति की गई है।

पारिजातहरण महाकाट्य में मगवान कृष्ण नायक है। काट्य के प्रथम सर्ग में कृष्ण के नायकत्त्व का वर्णन मिलता है।

तर्वथा स्वाधीन और समस्त जगत के नियन्ता सर्वेश्वर भगवान कृष्ण ने मनु सम्बन्धिनी समस्त सम्पत्ति को उपाधि रूप में धारण कर अर्थात कपट मानुष हो कर भूतन को कंस आदि दानवों के द्वारा स्वस्थ कर अपनी बसायी कुशस्थनी को सभी सुखों से पूर्ण कर दिया । वे भगवान श्रीकृष्ण द्वारिकापुरी का शासन करते थे। भगवान कृष्ण के आदेश से विश्वकर्मा ने समुद्र के बीच समस्त

[।] १०१ "सर्गबन्धों महाकाट्यं त्त्रैको नायकः सुरः नामास्य सर्गोपादेय कथ्या सर्गनामतु ।" —साहित्यदर्पण, ष्रव्यारिच्छेद

१ष१ "तर्गबन्धो महाकाञ्यमुच्यते तस्य नक्षणम् काञ्यं कल्पोत्तरस्याधि जायेत तद्गंकृतिः" -आचार्यदण्डी का काञ्यादर्श

हुँगहुँ "सर्गबन्धो महाकाच्यमहतां च महच्चयत् युक्तंनोकत्वभावन रसेंश्च सकतैः पृथकश्च ।" —आचार्य भामह का काच्यालंकार

१६६६ साहित्य दर्पण की शालग्राम शास्त्रीकृत विमला नाम की हिन्दी टीका पृथ् 308. हरिवंश पुराण अध्याय 124-135

रत्नराधियों में इस दारिकापुरी का निर्माण किया। दाती ने आकर भगवान से कहा आपकी ज्येष्ठापत्नी रुक्मिणी अपने किए पुण्यवृत की पूर्णता के लिए कल आपके साथ ही रैवताचल पर पूजनीय देव ब्राह्मणों की पूजा करना चाहती है। भगवान कृष्ण ने अनुराग सहित कहा उसे सूचित करों कि वह अपनी कामना पूर्ण ही समझे।

भगवान कृष्ण की कथा चिरकाल से लोक विश्वत रही है रामकृष्ण
युधिष्ठिर आदि महापुर्खों के जीवन चरित भारतीय समाज के सनातन से मार्ग
दर्शक रहे हैं बाल्यकाल से ये कहा नियां हिन्दू घरों में सुनने को मिलती हैं। सुख
के समय इसमें मनो विनोद होता है दुःख के समय आइबासन । भगवान कृष्ण की
कथा को आधार मानकर बहुत से ग्रन्थ महाकाच्य आदि लिखें गए है, जिसमें उनके
बाल्यकाल से लेकर पूरे जीवन का वर्णन किया गया है। भगवान कृष्ण की
बाल लीलाओं का तो बड़ा ही मनो रंजक वर्णन कियां ने किया है। इसके बाद
के जीवन का भी बड़ा ही रोचक वर्णन काच्यों तथा ग्रन्थों में मिलता है कृष्ण से
सम्बन्धित सभी काच्यों तथा ग्रन्थों में सबसे प्रमुख ग्रन्थ श्रीमद्भगवदगीता है।
इसके अतिरिक्त कई पुराणों में भी कृष्ण चरित का उल्लेख हुआ है इन सबको
पढ़कर एक और तो सुख के समय जनमानस कामनो विनोद होता है तो दूसरी
तरफ दुःख के समय आइवासन।

पारिजातहरण महाकाच्य महाभारत की तरह शान्तरस प्रधान काच्य है। श्रृंगार वीर, करण, रौद्र, वात्सल्य आदि रस गौण है।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - प्रथम तर्ग ।-4

² पारिजातहरण महाकाच्य - प्रथम तर्ग 60-61

महाभारत का पर्यवसान सभी के विनाश में होता है । वृष्टिण वंश वाले इतने महान तथा संख्या में इतने अधिक हैं किन्तु अन्त में शाप से वे सब लड़कर ही समाप्त हो जाते हैं । पाण्डवों की कथा मुख्य है । पाण्डव सभी शहुओं का सहार कर देते हैं किन्तु अन्त में सभी को हिमालय पथ की ओर जाना पड़ता है और अनेक विपत्तियों को सहते हुए हिमरा शि में अपनी कथा समाप्त कर देनी पड़ती है । उन युगपुरूष भगवान कृष्ण का अन्त एक बहे लिये द्वारा होता है । इसमें परम पुरुषार्थ मोक्ष माना गया है पुरुषार्थ निरूपण के विषय में महाभारत में यह शलोक प्रसिद्ध है —

धर्में वार्थे व कामे च मोहो च भरतर्थम । यदिहा स्ति तदन्यत्र यन्नेहा स्ति च तत्क्वचित् ।।

पारिजातहरण महाकाच्य में तथान-स्थान पर शान्तरत अथवा मित्तरत का चित्रण मिलता है। हिर के यश का गान करना ही किव का काच्य लिखने का मुख्य उद्देश्य था अतः उनके इस महाकाच्य में रस का उतना अच्छा चित्रण नहीं हो पाया है, फिर भी जगह-जगह पर ईश्वर की भित्त और जीवों के इस संसार में बार-बार जन्म लेने और मरण के उदाहरण से ऐसा ज्ञात होता है कि यह काच्य शान्तरस प्रधान काच्य है। इनकी व्यंजना में विभाव अनुभाव तथा संचारियों की पूर्ण योजना करने का प्रयत्न नहीं किया गया है। मो स्कृप परम पुरुषार्थ की प्राप्ति शान्त रस से होती है। शान्त रस का उद्दीपन विभाव संसार की असारता है। महाकाच्य के पंचम सर्ग के नारद के द्वारा भगवान कृष्ण की स्तुति शान्तरस का उदाहरण है – हे मुक्ति नाथ अपने शरीर

[।] महाभारत - आदिपर्व - 62-53

पर रेंगते क्षुद्राति क्षुद्र की टों के समान संसार सारे जीवों को विशेष आस्था न होने के कारण जब तक आप उपेक्षित किए रहते हो अर्थात उनकी ओर ध्यान नहीं देते तब तक ये संसार में आते जाते बन्धन में पड़े रहते हैं। जब कमी उनकी क्रियाओं या अपनी इच्छा से ही आपकी द्वष्टिट के वे लक्ष्य बन जाते हैं, यही उनका मोक्ष है। इसका स्थायी भाव निर्वेद है तथा उद्दीपन विभाव जीवों का मुक्त हो जाना है।

पारिजातहरण महाकाच्य में गौण-रस श्रृंगार, बीर करण तथा रौद्र रस है। सोलहवें सर्ग में सत्यभामा का क्रोध रौद्र रस का उदाहरण है द्वितीय सर्ग में विप्रलम्भ श्रृंगार का उदाहरण मिलता है। नवें सर्ग में सत्यभामा के दुः ब की दशाओं के वर्णन में करण रस है। वीर रस का उदहारण तो महाकाच्य के कई सर्गों में मिलता है। सोलहवें सर्ग में इन्द्र तथा कृष्ण के युद्ध का वर्णन वीर रस का उदहारण है। बीसवें सर्ग में भगवान के द्वारा भौमासुर राक्ष्स का वध वीर रस का उदाहरण है।

धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इस चतुर्वर्ग में से एक उसका पल होता है। मोक्ष रूप परम पुरुषार्थ की प्राप्ति भान्त रस से होती है। चूँ कि पारिजातहरण महाकाट्य भान्त रस प्रधान काट्य है अतः मोक्ष ही इस काट्य का पल है। पारिजातहरण महाकाट्य के प्रथम सर्ग में द्वारिका पुरी को कहा गया है — भोक्ष देने वाली सम्तपुरियों में मोक्षोत्पादन में यह मुख्य द्वार है। इस पुरी में निवास करने मात्र से ही लौकिक सुखों का उपभोग कर मानव अलौकिक सुख मोक्ष की प्राप्त कर लेते हैं।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - पंचम सर्ग - 21

² पुरी घुत प्तस्वीय मोक्षदा यिनी ष्टिक्य म्पराद्वारा यवर्ग-स**र्वा**न । -पारिजातहरण महाका[®]य-प्रथम सर्ग-38

उ पारिजातहरण महाकाच्य - प्रथम सर्ग - 39

आरम्भ में आशीर्वाद, नमस्कार या वर्ण्य - वस्तु का निर्देश होता है।

परोद्दसता की अनुभूति और अन्तस्तत्त्व की सम्पन्न एकता भारतीय
विचार साधना के मेस्दण्ड है । दृश्यमानजगत के पीछे ऐसी शक्ति अन्तर्निहित है
जो चेतन विश्व की समस्तगतिविधियों पर नियन्त्रण रखती है और उसी की
प्रेरणामयी सदिच्छा मानवजीवन को संचालित किया करती है । ज्ञान तो उस
सत्ता का प्रत्यक्ष रूप है । "सत्य ज्ञानसन्तं ब्रह्म्म यही कारण है कि श्रुष्टियों की
कृति वेदमन्त्र उस महातत्त्व का निश्चवितत माने गये । हेक्वल इतना ही नहीं
शतपथ ब्राह्मण में तो साधारण श्लोक की भी ईश्वरीय निश्चवित्तही माना गया
है है अस्यमहतो भूतस्यं निश्चवित्तमेतद् यद्वग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदो उपवों इंगि
रस इतिहासः पुराण विद्या उपनिष्यद्शलोकाः स्त्राण्यनुण्याख्यानानि अस्यै वेतानि
सर्वाणि निश्चवितानि

इसी उद्देश्य से ग्रन्थ के प्रारम्भ में मंगलाचरण करने की परिपाटी प्रतिष्ठित है। मंगलाचरण के अनेक रूप हैं:-

- उस महाशक्ति को प्रणातिषूर्वक सहायता के लिये प्रेरित करना इसे इष्ट देवता नमस्कारात्मक मंगल कहते हैं।
- 2. परिशालकों की मंगला प्रशंसा करते हुये उनसे अपनी एकता स्थापित करना इसे आशीर्वादात्मक मंगल कहते हैं।
- उ. पराशक्ति सम्पन्न किसी वस्तु का निर्देश कर परमात्मा की व्यापकता की और ध्यान दिलाना यह वस्तु निर्देशात्मक मंगल है।
- 4. प्राचीन आचार्यवृद्धि तिद्ध इत्यादि मांगलिक शब्दों के प्रयोग मात्र को ही मंगलाचरण कहते हैं।

[।] शतपथ ब्राह्म्मश्र शलोक

5. कहीं-कहीं केवल अथ शब्द का प्रयोग मंगलाचरण माना गया है।

पारिजातहरण महाकाच्य का प्रारम्भ किव उमापित दिवेदी ने किसी अन्य प्रकार के देव नमस्कारादि रूप्र मंगलायरण से नहीं किया है किन्तु जब पुण्य श्लोक कृष्टण का नामोच्चारण ही मंगल है तो जितमें उन भावान कृष्टण का चिरत गान किया गया है वह पूरा महाकाच्य ही मंगल रूप है । काच्य के प्रथम श्लोक में वस्तु निदेश के रूप में अर्थात दारिका के वर्णन में कृष्ण देवता की स्तुति करते हैं । पारिजातहरण महाकाच्य का प्रारम्भ दारिका के वर्णन से किया गया है । दारिका के वर्णन के प्रसंग में उस पुरी के राजमहल तथा उस पुरी की सभा का भी वर्णन कई श्लोकों में कुलक रीति से किया गया है । भगवान कृष्णी की यह दारिका पुरी अकेली ही अपने समस्त रेशवर्यों से सुसज्जित हो त्रिलोकी से भी बद्यली । इसकी श्रुम एवं देदी प्यमान गगनवुम्बी अट्टालिकाओं की तुलना में सुमेरू भी अपने को तुच्छ मान बैठा । इस दारिका पुरी के राजमहल विशाल परिधि से युक्त खूब वमकते हुये मण्णिण से जितत एवं प्रभा से प्रज्जवित, विशेष्ट शालाओं से सुशोभित है । शस्त्रास्त्रों से सज्जित प्रहरीगण उस्थान-स्थान पर जिसकी रक्षा के लिए खड़े हैं ।

पारिजातहरण महाकाच्य में भौमासुर राक्षस की निन्दा तथा भगवान्कृष्ण की स्तुति की गई है। बीसवें सर्ग में नरकासुर के भयभीत होने के उदाहरणों से उस असुर की निन्दा की गई है – आकर्ण कर्षकिंदु शंख एवं स पाइवें, भूमि भवों उभवदवा प्तविवर्ण भावः

[।] ध्वन्यालोक - प्रथम उद्योत ।

² पारिजातहरण महाकाच्य - प्रथम तर्ग - 3

³ पारिजातहरण महाकाच्य - प्रथम सर्ग - 44

⁴ पारिजातहरण महाकाच्य - विंश्सर्ग - 54

महाकाच्य के पंचम सर्ग में नारदमुनि के द्वारा भगवानकृष्ण की स्तुति की गई है।

> "मीनेब वेदान् वहता मुच्छ्य कूर्मेण कोलेन व विभूता ताम्। दैत्यं घन्ता केशरिणा त्रिलोकी प्रमाणिवता तोपधिवा मनेन।।

पारिजातहरण महाकाच्य में न तो बहुत बड़े न ही बहुत छोटे इक्कीत सर्ग है। किसी किसी तर्ग में 100 ते अधिक श्लोक हो गए हैं। छन्द योजना का बहुत अच्छा चित्रण कि ने अपने इस काच्य में किया है। काच्य के पन्द्रहवें सर्ग में सवैया, कितत्त दोहा आदि हिन्दी छन्दों का प्रयोग किया गया है। इसके अतिरिक्त वंशस्थ, उद्गाथा,द्भुत बिल स्बित, उपजाति मालिनी आदि छन्दों का प्रयोग किया गया है। एक सर्ग एक छन्द से निबद्ध है। वंशस्य छन्द का प्रयोग कई सर्गों में किया गया है। काच्य के सत्रहवें सर्ग का एक उदाहरण जो वंशस्थ छन्द से निबद्ध है।

बवावमूर्तो पि खरस्पृशाधरो महावलः प्राणन एवं जीविनाम् थ जनार्दननानीकपतेस्तु सात्यकेःस्वपक्षरक्षैणिणि पाकशासने ।।

वंशस्थ के प्रत्येक चरण में जगण, तगण, जगण तथा रगण होते है "जती तु वंशस्यभुदी रितं जरी" यह वंशस्थ छन्द का लक्षण है । अतः प्रस्तृत शलोक में भी अंशस्थ छन्द है ।

[।] पारिजातहरणमहाकाव्य - पंचम तर्ग - ।।

² पारिजातहरण महाकाच्य - तप्तदासर्ग - 35

पारिजातहरण महाकाच्य में सन्ध्या वर्णन, प्रभात वर्णन, रात्रिवर्णन, यन्द्रमाण्णन, पर्वतों का बहुत ही मनोहारी वर्णन किया गया है। समुद्र तथा त्रिवेणी का बड़ा ही सजीव चित्रण इस काच्य में किया गया है। स्वर्ग-वर्णन, नन्दन-वन का वर्णन किया गया है युद्ध का तथा यात्रा का जीता जागता चित्र किया ने अपने इस काच्य में प्रस्तुत किया है। काच्य के द्वितीय सर्ग में प्रभात का बड़ा ही सजीव वर्णन मिलता है।

"यह रात्रि एक ऐसे ज्योतिर्मय शिशु को जन्म देना चाहती है जो आनन्द का धाम है, कबूतरों के कलरव के बहाने मानो यही प्रसव की पीड़ा से कराह रही है।

भगवान भारकर से भयभीत सी होकर मानो आकाश से भूमि पर छिपने के लिये आई हुई ताराओं जैसी कितनी अभिसारिकार्ये यहाँ भी सूर्य के पुनः आगमन की आशंका से मानो अन्यत्र छिपने के लिये भागी जा रही है।

काच्य के तेरहवें तर्ग में तनध्या का बड़ा ही तजीव वर्णन मिलता है :-

दिन के दल जाने पर सूर्य की किरणों के चले जाने पर आकाश के बहुत अधिक अन्धकार से ग्रसित होने पर सम्पूर्ण लोक के दारा अस्पृष्य किन्तु आलोक्य रूप अपनी रोध सहित पीड़ा के कारण उत्पन्न रक्त वर्णका दिखाई दे रहा है।

[।] वृत्त रत्नाकर - 3/46

² पारिजातहरण महाकाच्य -द्वितीय सर्ग - 7

³ पारिजातहरण महाकाच्य - द्वितीय तर्ग - 19

⁴ पारिजातहरण महाकाच्य - त्रयोदश सर्ग - 3

महाकाच्य के तीसरे सर्ग में रैवतक पर्वत का अत्यन्त मनोहारी चित्रण किया गया है।

स्वभावतः लतावृक्षों से इरते पूलों को ले बहने वाले इरनों के जल तथा उत्तमोत्तम पल दल अकुरों के लिये वह ११ रैवतक १ पर्वत पूज्य प्रभुत्वशाली उन भगवानकृष्ण को समीप से अर्ध्य देतासा दिखाई देने लगा ।

काट्य के चतुर्थ सर्ग में किव ने समुद्र का बहुत ही स्वाभाविक वर्णन किया है -

अपने भीतर डूबते जल जन्तुओं के द्वारा अपनी हिथति से मानो विधाता के उत्पत्ति प्रलय का अभिनय कर रहा हो जो हैसमुद्र है ऐसा प्रतीत होता था। कवि ने अपने काव्य के पंचम सर्ग में त्रिवेणी का अत्यन्त ही मनोरम वर्णन किया है।

यह सकल कल्योणों को देने वाली सत्व, रज, तम रूप त्रिगुणमय त्रिदेवों डूब्रहम्मा, विष्णु, महेश डूँ की एकतामय शक्ति की तादातम्य भागिनी है। सकल शोभाओं की उत्तर पूर्ति डूअन्तिम सीमा डूकी मूर्ति इस त्रिवेणी की प्रभा के समान कोई मिश्रित प्रभाजगत में नहीं है।

पारिजातहरण महाकाच्य में ऋतुओं का भी बहुत ही सजीव चित्रण हुआ है। केसर के रंग का पूनों से गिरा पराग पटन जिस पर छाया हुआ है तथा हरे कमल के पत्तों से स्वं नान पीने नीने भवेत रंग बिरंग कमन पुष्पों

[।] पारिजातहरण महाकाच्य तृतीय सर्ग - 37

² पारिजातहरण महाकाच्य - चतुर्थतर्ग - 6

उ पारिजातहरण महाकाच्य - पंचम सर्ग - 43

से सजा कहीं जिसमें चमकती मछिलयां उछल रही हैं कहीं रंग बिरंग जल विंहगम पत्तों पर ज़ूल रहे हैं इस प्रकार इस शरद ऋतु की विशेष्टतारं लिए सरोवर शोभित हो रहा है।

का व्य के इक्की सर्वें सर्ग में पारिजातहरण के आरोपण के बाद बसन्त ऋतु का वर्णन है "अथ मलयसमीरं प्रेरिरत् प्राक्स वीरं ऋतुपतिरयमद्याम्येति भूमि 2 बसन्तः

कि ने महाकाच्य के एका दशसर्ग में इन्द्र के नगर अर्थात स्वर्ग का चित्र साअंकित कर दिया है – कनक पर्वत हूसुमेल् के शिखर के बीच इन्द्र नीलमणि के बने प्रकार के भीतर विशाल प्रांगण वाले, जिसमें सभी दिग्पाल घूम रहे थे ऐसे इन्द्र के भवन में प्रवेश किया ।

काच्य के चतुर्थ सर्ग में यज्ञ की इतिकर्तव्यता पर प्रकाश डाला गया है—
यह यज्ञ वेदों में अनुशासित एक कर्म विशेष्ठ है । सत्पुर्ष्यों ने सतत् इसका
अनुष्ठान किया है । इसलिए इसकी सफ्लता सिद्ध है तो फिर कौन इसको
न करे हुअतः रुक्मिणी जी का यज्ञ प्रस्तवा सहेतु है है कैसे भी कर्म बिना
परिणाम के शान्त नहीं होता । यह अनुभूत और सर्वसम्मत है । फिर
यज्ञरूपकर्म की सफ्लता भी स्वतः सिद्ध है ।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - दशम तर्ग - 14

² पारिजातहरण महाकाच्य - एक विंश सर्ग - 21

³ पारिजातहरण महाकाच्य - एकादश तर्ग - 3

⁴ पारिजातहरण महाकाच्य - चतुर्थ तर्ग - 32

पारिजातहरण महाकाच्य के तीसरे सर्ग में द्वारिका से रैवतक पर्वत की यात्रा का वर्णन किया गया है। तथापि यह कोई विशेष्ठ यात्रा न थी किन्तु यह रीति थी कि महाराजाओं की सपरिवार यात्रा ससैन्य ही होती रही। अतः कवि ने प्रस्तुत सर्ग में भगवान कृष्ण की यात्रा का सांगोपांग वर्णन किया है। नाना प्रकार के शस्त्रास्त्रों को फेरते फरकातें तथागति की विश्वख्नता के बचाते चलते अपने सामने तीनों लोकों को भी तृण के समान मानते हुए सबका अतिक्रमण करने वाले वीर सैनिकों का व्ल श्रृंख्लाबद्ध गति से सबसे आगे चल रहा था। काव्य के स्त्रहवें सर्ग में नारायण तथा इन्द्र के युद्ध का वर्णन किया गया है। क्रोध से भगवान श्रीकृष्ण इन्द्र के बाण को निराकृत करते हुये मेघ गर्जना के समान गम्भीर वाणी से बोले – सम्पूर्ण सिद्धियां पराकृम में ही होती है।

पारिजातहरण महाकाच्य में सभी नाटकीय सन्धियां मिलती है।
प्रथम सर्ग में स्विमणी के द्वारा दूती के मुख से वृत के उद्यापन के लिये भगवान
श्रीकृष्ण से अनुमित की याचना और उसकी प्राप्त बीज अर्थ प्रकृति है इन्द्र
का पारिजात वृक्ष को न देना और उसके लिए युद्ध करना यह पताका है।
नारद इन्द्र संवाद प्रकरी है। युद्ध में कृष्ण का जीतना तथा सत्यभामा के
घर में पारिजातबृक्ष का आरोपण आदि का प्रसंग कार्य है। कृष्ण के
पारिजात वृक्ष को पाने की उत्सुकता आरम्भ अवस्था है। पारिजात वृक्ष
के न मिलने पर उसके लिए कृष्ण का इन्द्र से युद्ध यत्न अवस्था है। इन्द्र का
कृष्ण से युद्ध प्राप्त्याशा है कृष्ण का युद्ध में जीतना नियताप्त है।
पारिजात वृक्ष का उपहार रूप में पाना और सत्यभामा के घर में वृक्ष का
आरोपण फ्लागम है। प्रारम्भ में नारद का इन्द्र के पास जाना तथा

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - तृतीय सर्ग - 4

² पारिजातहरण महाकाच्य - सप्तदंश सर्ग - 5

दूती का कृष्ण के पास जाना मुख्यानिध है नारद सेइन्द्र का युद्ध के लिये संदेश मेजना प्रतिमुख सन्धि है। पारिजात वृक्ष मिलने में विघन विमर्श सन्धि है। सत्यभामा के घर में आरोपण निर्वहण सन्धि है। कृष्ण का नारद को इन्द्र के पास भेजना और नारद का वहां से वापिस आना इस प्रकार उपाय के द्वारा तथा अन्वेषण होता है अतः यहां गर्भसन्धि है।

इस महाकाच्य का नाम सर्ग की वर्णनीय कथा हूपारिजातवृक्ष के हरण की कथा है से पारिजातहरण रखा गया है नारद के द्वारा दिए गए पुष्प को भगवान श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी को दे दिया इससे सत्यभामा बहुत को धित हुई । भगवान कृष्ण ने पारिजात वृक्ष की स्वर्ग से उखाड़ लाने की प्रतिज्ञा की इससे इन्द्र का कृष्ण से भयंकर युद्ध हुआ ।

काट्य के पन्द्रहों तर्ग में भगवान कृष्ण के द्वारा पारिजात के हरण का वर्णन किया गया है। उस काम रूप दिट्य तरू पारिजात वृक्ष को अपने वाहन गरूड़ पर चढ़ाकर कृतकृत्य होते हुये कृष्ण ने इन्द्र के दर्प के अपहार को जताने वाले तेज से युक्त शंख की ध्वनि किया।

इस प्रकार पारिजातहरण की कथा के आधार पर इस काव्य का नाम पारिजातहरण महाकाव्य ही रखा गया ।

उपर्युक्त विवरण के आधार पर यह स्पष्ट है कि पारिजातहरण एक सर्वांगपूर्ण काच्य है।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - कवि उमापित द्विवेदी

² पारिजातहरण महाकाच्य - पंचदश तर्ग - 77

तृतीय अध्याय ======

कथानक का मूल होत

पारिजातहरण महाकाच्य की कथावस्तु कृष्ण की कथा से सम्बन्धित है। राम तथा कृष्ण की कथा तो लोकप्रसिद्ध है। पारिजातहरण की कथा वस्तु पुराण प्रसिद्ध है। इस विष्म में हरिवंशपुराण में दो प्रकार की कथा प्रसिद्ध है। इसमें पहली कथा तो विष्णु पुराण में स्वीकार की गई है दूसरी कथा दूष्य श्रव्य काव्य में स्वीकार की गई है। वह कथा इस प्रकार है: शिकृष्ण के सन्दर्शनार्थ आए हुए नारद के द्वारा दिए गए पारिजातपुष्प का श्रीकृष्ण को देना तथा कृष्ण का उसे रूकिमणी को सौंपना उससे सत्यमामा का कृष्य, कृष्ण का सत्यमामा के अनुययार्थ स्वर्ग से पारिजात वृक्ष ही उखाड़ लाने की प्रतिज्ञा, नारद द्वारा कृष्ण तथा इन्द्र के बीच सन्देश वार्ता, इन्द्र की पारिजात देने में असम्मति, इन्द्र कृष्ण युद्ध, स्वर्ग से पारिजात का लाया जाना तथा एक संवत्सर बीतने पर पुण्यक वृत्तोत्सव के समय पुनः स्वर्ग में वापस पहुँचाया जाना आदि का वर्णन हुआ है।

इसी कथा को आधार मानकर पारिजातहरण महाकाच्य की रचना हुई है। इसके अतिरिक्त ब्रह्ममपुराण, विष्णुपुराण, देवी मागवत में पारिजातहरण का वृतान्त मिलता है। पद्म पुराण में भिन्न वृतान्त मिलता है। पारिजातहरण का वृतान्त हरिवंश में विशिष्ट स्थान रखता है। यह वृतान्त हरिवंश में विशिष्ट स्थान रखता है। यह वृतान्त हरिवंश में विशिष्ट स्थान रखता है। यह वृतान्त हरिवंश में दो बार वर्णित है। कृष्ण पारिजात का हरण करते हैं, इन्द्र कृष्ण के पराक्रम को देखकर पारिजात वृक्ष को ले जाने की अनुमति दे देते हैं।

[।] दुश्यश्रव्यकाच्य में पारिजात-वर्णन

² हरिवंश पुराण - 2-67-68-70

पारिजातहरण का दितीय वृतान्त हरिवंश पुराण के बारह
अध्यायों में वर्णित है। वह कथा इस प्रकार है — रैवतक पर्वत में नारद
के द्वारा दिए गए पारिजात कुसुम को कृष्ण रुक्मिणी को दे देते हैं। इस
पुष्प के प्रदान से सत्यभामा रुष्ट हो जाती है। उनके आगृह से कृष्ण स्वर्ग
से पारिजातहरण करते है। कृष्ण और इन्द्र के युद्ध की शान्ति के लिये
क्षयप ग्रिष्ठा शिष्ठ की तपस्या करते है। कृष्ण स्वर्ग पारिजात की सफलता
के निमित्त महादेव की स्तुति करते हैं। पारिजातहरण के इस वृतान्त में
युद्ध का विस्तृत वर्णन मिलता है।

लगभग तभी वैष्णम पुराणों में पारिजात निबन्धन हरिवंश के इस प्रसंग से नितान्त मिन्न रूप में मिलाता है। इन पुराणों में कृष्ण सत्यभामा के इन्द्रलोक पहुँचने पर सत्यभामा की शमी के प्रति ईष्या पारिजातहरण के लिये कृष्ण की प्रतिज्ञा, कृष्ण इन्द्र युद्ध और अन्त में इन्द्र की पराजय का उल्लेख है।

पद्मपुराण में पारिजातहरण की कथा इस प्रकार है — पृथ्वी से उत्पन्न नरकासुर नामक दैत्य इन्द्रादि देवों को पराजित कर देवमाता अदिति के दो क्रुण्डल, रेरावत हाथी उच्चै:श्रवा घोड़ा तथा स्वर्ग की अन्य सम्पत्तियां लूट ले गया था । देवगण ने कृष्ण की शरण जाकर उनसे नरकासुर के वध की प्रार्थना की । कृष्ण ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर

[।] हरिवंश पुराण - 2-72, 79-66

² हरिवंश पुराण - 2-74, 22-34

उ हरिवंश पुराण - 2-73-75

विष्णु पुराण - 5-30-3।
 ब्रह्म्म पुराण - 203
 पदम्मपुराण उत्तर खण्ड - 90 देवी भागवत-4,25,25-27
 भागवत पुराण 10-59,38,40

अपनी सत्यभामा सहित गरङ पर सवार हो कर असूर को मारने के लिए प्रत्थान किया और उस का वध कर देवों की लूटी हुई सम्पत्ति उन्हें पुनः वापस दिलवाई । अनेक नरेशों की सोलह हजार कन्याओं को जो असुरों के यहाँ बन्दी थी मुक्त किया तथा उनकी ही प्रार्थना पर उनसे विवाह किया फिर देवमाता का दर्शन करने तथा उनके कुण्डल देने स्वर्ग लोक गए । देवमाता को प्रणाम कर उनके कुण्डल उन्हें समर्पित किए । उस समय सत्यभामाश्रयी के महल में गई । इन्द्राणी ने उनका उचित स्वागत किया । उसी समय तेवकों ने इन्द्र का मेजा तुन्दर पारिजात का पुष्प शबी को दे दिया । शधी ने उसे मत्यों चित न समझ सत्यभामा से पूछा भी नहीं और वह पूछप अपने ही केशोँ में गूँथ लिया । तत्यभामा इस अपमान से बड़ी कूद हुई । उन्होंने कृष्ण के पास जाकर उनको शबी के पारिजात विषयक गर्व का वृतान्त बताया वासुदेव ने प्रिया की बात सुनकर पारिजात का वृक्ष ही उखाड़ लिया और उसे गरन पर लादकर प्रिया के साथ दारका को चल दिए इस पर इन्द्र को बड़ा कोध आया । देवों को साथ लेकर उन्होंने कृष्ण से युद्ध किया, पर अन्त में पारिजात का स्वर्ग से जाना सह लिया । कृष्ण ने उसे सत्यभामा के महल में लगाया ।

यह कथा हरिवंश में बड़े विस्तार के साथ तथा पदमपुराण की कथा से कुछ मिन्न कही गई है। वहां नारद का स्वर्ग से एक पारिजात पुष्प लाना, कृष्ण को देना तथा कृष्ण का उसे रुक्मिणी को सौंपना, उससे सत्यभामा का क्रोध कृष्ण का सत्यभामा के अनययार्थ स्वर्ग से पारिजातवृक्ष ही उखाड़ लाने की प्रतिज्ञा, नारद द्वारा कृष्ण तथा इन्द्र के बीच सन्देश वार्ता, इन्द्र की पारिजात देने में असम्मित, इन्द्र कृष्ण युद्ध, स्वर्ग से पारिजात

[।] पद्यपुराण - उत्तर खण्ड, अध्याय २७६ शलोक ४२/110

का लाया जाना तथा एक संवत्सर बीतने पर पुण्यक व्रतोत्सव के समय पुनः स्वर्ग में पहुँचाया जाना आदि का वर्णन है।

इसके अतिरिक्त एक स्थान पर हरिवंश में ही पद्मपुराण जैसा

कथानक भी है। भिन्न भिन्न पुराणों में वर्णित कथानकों से ऐसा ज्ञात
होता है कि पारिजातहरण महाकाच्य की कथावस्तु हरिवंश पुराण की कथान

वस्तु से समानता रखती है।

अतः पारिजातहरण महाकाच्य १ किविपति श्री उमापति दिवेदी १ का मूल झोत हरिवंश पुराण ही है। पारिजातहरण महाकाच्य में नारद स्वर्ग से एक पारिजातपुष्प लाते हैं तथा उसकी कृष्ण को देते हैं। कृष्ण उस पुष्प को रुक्मिणी को देते हैं। यही कथा हरिवंश पुराण में भी बताई गई है। कृष्ण का पुष्प को रुक्मिणी को सौंपना, उससे सत्यभामा का को थित होना पारिजातहरण महाकाच्य में तथा हरिवंश पुराण दोनों में बताया गया है। कृष्ण का स्वर्ग से पारिजातन्ध ही उखाड़ लाने की प्रतिज्ञा तथा नारद दारा कृष्ण तथा इन्द्र के बीच सन्देश वार्ता, इन्द्र की पारिजात देने में असम्मति, इन्द्र कृष्ण युद्ध, स्वर्ग से पारिजात का लाया जाता, इस प्रकार हरिवंश की यह पूरी कथा पारिजातहरण महाकाच्य की सम्पूर्ण कथा से समानता रखती है।

अन्त में कथा थोड़ी मिन्न हो जाती है। हरिवंश पुराण में अन्त में एक संवत्सर बीतने पर पुण्यक वृतोत्सव के समय पुनः स्वर्ग में पहुँचाया जाना आदि का वर्णन है। पारिजातहरण महाकाच्य के अन्त में सत्यभामा

[।] हरिवंश पुराण - अध्याय - 65-76

² हरिवंश पुराण अध्याय - 2/64

उ हरिवंश पुराण - 2. 75-81

के घर में पारिजातवृक्ष का आरोपण बताया गया है।

कवि उमापति दिवेदी ने थोड़ी कथा मिन्न कर दी है अन्यथा पूरी कथा वैसी ही है, जैसी हरिवंश पुराण में उद्धृत है। हरिवंश पुराण की इस कथावस्तु को लेकर कई महाकाच्य अनेक कवियों के द्वारा लिखे गए है:-

- पारिजातहरण महाकाच्य भोज
- 2. पारिजातहरण महाकाच्य कविराज
- 37 Parijataharana a yamaka poem by Narayana (Printed poona)
- 4. parijataharana by Raghunatha the Nayaka King of Tanjore (17th centuray A.D.)
- 5. parijataharana adrama by (Gopaldasa)
- 6. पारिजातहरण महाकाच्य ।१ वीं शताब्दी है

चौदहवीं शताब्दी में श्री उमापति के द्वारा पारिजातहरण नाटक लिखा गया है। उसमें मैथिनी गीतों की संख्या 20 है। उसमें कथा इस प्रकार है – देवी महिष्णासुर मर्दिनी की वन्दना नदी द्वारा मंगलगान रूप में शिव पार्वती प्रणय वर्णन, कृष्ण चरित्र की प्रशंसा, कृष्ण रूकिमणी का रैवतक पर्वत पर वन विहार, आकाश से उतरे हुये नारद का वर्णन, हरिदर्शन के लिये नारद की आकांक्षा नारद का भक्तिपूर्वक कृष्ण को

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - एकविंश सर्ग

पारिजात पुष्प समर्पण सत्यभामा का प्रवेश और उसका वर्णन, सत्यभामा का प्रेम और उसके द्वारा कृष्ण वर्णन, कृष्ण द्वारा रूकिमणी को पारिजात पुष्प देने पर रुकिमणी को गर्वे कित, सुमुखी नामक सखी द्वारा कृष्ण के सामने सत्यभामा की कोपावस्था का वर्णन, सत्यभामा का कृष्ण प्रेम में पश्चाताप, सत्यभामा का मान, कृष्ण द्वारा सत्यभामा का मान मोचन, सत्यभामा का अभिनिवेश, सत्यभामा की सम्पूर्ण पारिजातवृक्ष लाने की माँग, सत्यभामा की सम्पूर्ण पारिजातवृक्ष लाने की माँग, सत्यभामा की सम्पूर्ण पारिजातवृक्ष लाने की माँग, सत्यभामा का पारिजात के विरह में संलाप, कृष्ण-इन्द्र युद्ध, पारिजातवृक्ष की प्राप्त के बाद सत्यभामा द्वारा उसकी वेदना, कि द्वारा आशीवाद इत्यादि । पारिजातहरण नाटक का कथानक हरिवंश पुराण के ११२4-135१ अध्याय के आधार पर लिया गया है।

इस प्रकार हरिवंश पुराण का आधार लेकर कई ग्रन्थ लिखे गर है। परन्तु प्रस्तुत पारिजातहरण महाकाच्य की कथावस्तु हरिवंश पुराण की कथा से बहुत समानता रखती है। अन्त की कथा थोड़ी भिन्न है। इस प्रकार पारिजातहरण महाकाच्य का मूल स्रोत पुराण ही है।

[।] पारिजातहरण नाटक - श्री उमप्रति है। 4 वी शताब्दी है

कथानक का मूल उद्देश्य

संतार में कोई भी कार्य सम्पादित करने का अवश्य ही कोई न कोई उद्देश्य रहता है। अतः किव भी कुछ प्रयोजन वश ही काच्य की रचना करता है।

काट्य के द्वारा सरसजनों-र सिकों का धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष रूप चतुवर्ग में ज्ञान कराया जाता है। इससे शीघ्र और सरलतापूर्वक ज्ञान हो जाता है। रसिक लोग नीरस शास्त्रों से इस्ते हैं।

सार्नकारता के कारण दैदी प्यमान तथा दोषाभाव के कारण निर्मल रचना करने दाला महाकवि सरस काच्य की रचना करता हुआ अपने विशद यश को तो युगान्त पर्यन्त प्रत्यक्ष रूप से पैलाता ही है साथ ही काच्य के नायक के यश को भी पैलाता है। भरत के अनुसार नाद्य कृकाच्य कृधर्म, यश और आयु का साधक, हितकारक बुद्धि का वर्धक तथा लोको पदेशक होता है।

- ननु का व्येन क्रियते सरसाना मवगमा चतुर्वर्गे ।
 नघु मृदु च नीरते भ्यस्ते हि त्रस्य न्ति शास्त्रे भ्यः ।।
 –का व्यालंकार स्द्रद्रद्रादश
 अध्याय ।
- 2 ज्वलदुञ्जवलवा क्प्रसरः सरसं कुर्वन्महाकविः काट्यम् । स्पुटमाकल्पमनल्यं प्रतनो ति यशः परस्यापि ।। -काट्यालंकार, स्टूट, द्वादश-अध्याय-4
- 3 भरत का नाद्यशास्त्र 1/112/113

भामह के कथनानुसार उत्तम काट्य की रचना धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूप चारों पुरुषार्थों तथा समस्त कलाओं में निपुणता को और प्रीति §आनन्द विथा कीर्ति को उत्पन्न करती है।

वामन के अनुसार काट्य का प्रयोजन है - "प्रीति तथा कीर्ति की प्राप्ति।" आचार्य मम्मट ने काट्य के निम्नलिखित प्रयोजन माने हैं --

"कार्च्यं यशसे धंकृते व्यवहार विदे शिवतरक्षतये । सद्यः पर निवृतये कान्तास स्मिततयो पदेश युजे ।।"

काट्य प्रयोजनों का निष्कर्ध यह है कि काट्य निर्माण द्वारा १११ किव अपने यश को फैलाता है १२१ वह चरित नायक के यश को फैलाता है १३१ वह धन, असाधारण सुख तथा समस्त अभीष्ट कामनाओं को प्राप्त करता है १४१ देवताओं के स्तुति परक काट्य द्वारा उसे रोगों से मुक्ति मिल जाती है १५१ उसे अभीष्ट वर की प्राप्ति हो जाती है १६१ इसके द्वारा उसे सहज रूप से चतुवर्ग धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है । इन प्रयोजनों में से अन्तिम प्रयोजन का सम्बन्ध किव और सहृदय दोनों के साथ है । तथा शेष्ठ का सम्बन्ध केवल किव के साथ ।

[।] भामह का काव्यालंकार - 1/2

² काव्य सूत्र वृत्ति ।/।/5

उ मम्मट का काच्य प्रकाश

इन प्रयोजनों में से अर्थ प्राप्ति, यश प्राप्ति, चरितनायक का गौरवगान ऐसे प्रयोजन हैं जिन पर किसी प्रकार का विवाद नहीं किया जा सकता है। काव्य सर्जन द्वारा धर्म प्राप्ति प्रयोजन व्याख्यापेक्ष है। "धर्म" से ता त्पर्य यदि धार्यते इति धर्मः अर्थात शृश्म १ कर्तव्य पालन है, तो यह काच्य का साक्षात् प्रयोजन न होकर असाक्षात् प्रयोजन है । कर्तच्य वस्तुतः उस कर्म का नाम है जिसे हम दूसरों की प्रेरणा अथवा द्वारा करते हैं तथा दूसरों के उपकार के लिये करते हैं किन्त का व्यसर्जन अन्तः प्रेरणा से प्रमृत होने के कारण न तो दूसरों की प्रेरणा अथवा उपदेश की अपेक्षा रखता है और न इसके द्वारा दसुरों का उपकार करना कवि का प्रमुख उद्देश्य होता है। और यदि "धर्म" से तात्पर्य "पुण्यपन-प्राप्ति" लिया जाय तो इसे आज के बुद्भिवादी युग का मानव स्वीकृत नहीं करेगा । ठीक यही स्थिति इन प्रयोजनों की भी है। मोक्ष-प्राप्ति, अनर्थ, विपत्ति, रोग आदि से विमुक्ति तथा किसी देवता द्वारा अभिमत वर की प्राप्ति । शेष्ठ रहता है एक प्रयोजन, काम रूप पल की प्राप्ति स्दूट ने उक्त प्रयोजन में "आत्मानन्दप्राप्ति" को श्अथवा भामह और वामन के शब्दों में प्रीति अथवा मम्मट के शब्दों में श सदः पर निवृत्ति है को स्पष्ट शब्दों में स्थान नहीं मिला । यदि चतुवर्ग के अन्तर्गत "काम"शब्द से यदि मानवीय रागात्मक भावों की इच्छापूर्ति रूप अभिप्राय लिया जाय तो इते सद्यः पर निवृत्ति का पर्याय मान लिया जा सकता है। फिर भी ऐसे विविध्ट प्रयोजन को स्थान न मिलना अवश्य खटकता है। रत जैसे प्रमुख काट्यांग का अत्यन्त मनोयोग के साथ निरूपण करने वाले कवियों को यह प्रयोजन अभीष्ट अवश्य रहा होगा ।

"न यद्वपिष्ठपदं हरेर्यशो जगत्पवित्रं प्रगृणीत कर्हिचित्।"

व्यास की इस उक्ति को आधार मानकर किव उमापित ने अपने पारिजातहरण

महाकाच्य की रचना की है। अनेक-अनेक अर्थ देने वाले पदों से युक्त जो वचन

है अगर उसमें जगत् को पवित्र करने वाले हिर का गुण्णान नहीं किया और

मानव का यशोगान किया है तो व्यास के अनुसार यह वाणी पाप है "&,

ऐसा मानकर ही किव उमापित ने अपने काव्य के लिये विषय को चुना है।

पारिजातहरण महाकाच्य 19 वीं शता ब्दी में किव उमापित के द्वारा लिखा गया है । 1921 ई० के असहयोग आन्दोलन के बाद यह काच्य लिखा गया है । उस समय देश में आन्दोलन हो रहे थे । उस देश की सामाजिक और आर्थिक स्थित ठीक नहीं थी । नई सरकार के जनता पर अनेकों अत्याचार हो रहे थे । अतः देश में बद्दते हुए अत्याचार को रोकने के लिए किव ने मानस के मनोविनोद के लिए तथा वाणी की पवित्रता के लिए "पारिजातहरण महाकाच्य" की रचना की । जिस समय उन्होंने अपने इस काच्य को लिखा, वहां के राजा ने किव को विशेष रूप से सम्मानित किया तथा पारितोषिक के रूप में कुछ धन भी दिया था । किव का काच्य लिखने का प्रयोजन एक और भी था । जल्दी ही पिता की मृत्यु हो जाने से अकेले पुत्र होने के कारण घर में दीनता होने से उन्होंने यह काच्य लिखा, जिसमें मणवान कृष्ण की स्तुति की गई । वंश चलाने के लिए कोई सन्तान न होने से पुत्र प्राप्त के लिए इन्होंने हरिवंश पुराण का अध्ययन, किया और इसी पुराण को आधार मानकर किव ने इस "पारिजातहरण महाकाच्य" की रचना कर डाली ।

पारिजातहरण महाकाव्य में भगवान कृष्ण के चरित का गान है।
भगवान कृष्ण इस काव्य के नायक है। इस काव्य में कृष्ण को महापुरुष,
सर्वेदवर, तथा समस्त जगत् का नियन्ता कहा गया है। देवता मानकर उनकी
यथास्थान स्तृति की गई है। इस प्रकार किय ने अपने यदा के साथहुँ महाकाव्य
विकारहुँ चरित नायक कृष्ण के यदा को भी पैलाया है। इस प्रकार काव्य लिखकर
किव ने धन, असाधारण सुख तथा समस्त अभीष्ट कामनाओं को प्राप्त किया है।

कथानक का औधित्य

उचित और अनुचित इन शब्दों का प्रयोग जीवन के प्रत्येक कार्य-कलाप में पदे-पदे होता है। यही जीवन के सच्चे पथ का नियामक है। जहाँ तक काट्य-जगत् का प्रश्न है, वहाँ पर आचार्यों ने काट्य की जो सरिण निश्चित की है, उसी का अनुगमन करना उचित है, उससे मिन्न अनुचित कहा जाएगा उसी का नाम दोषा होगा। मेरबला कण्ठ में धारण करने से उपाहासास्पद होती है। ठीक उसी प्रकार काट्य में रस, अलंकार, गुणादि का उचित सिन्नियेश न होना अनौचित्य कहा जाएगा। इसी मूल तत्व को लेकर औ चित्य सम्प्रदाय ही चल पड़ा। आचार्य - क्षेमेन्द्र के शब्दों में जो जिसके सदृश हो वह उचित कहा जाता है और उचित का जो माच है वह औ चित्य कहलाता है। भारत, भामह, दण्डी, आनन्दवर्धन आदि आचार्यों द्वारा प्रतिपादित विविध काट्य शास्त्रीय सिद्धान्तों के मूल में औ चित्य की ही धारणा निहित है।

^{। &}quot;अदेशजो हि वेद्यस्तुन शोभाजनयिदयति, मेल्लोरसि बन्धेन हास्यायेवीयजाते।।

⁻ काट्यप्रकाश

² औ चित्येन विनारुचि प्रतनतेनालंकृतिनो गुणाः । औ चित्य विचार चर्चा कारिका-6 का दृष्टान्त ।।

उ शताः प्रयत्नादिधमम्य सम्यक् औ चित्यमालोच्य तथार्थतंस्थम् मिश्राःकविरेन्द्ररथनात्यदीर्घाःकार्यामुह्यचैव मृहीतमुक्ताः

⁻ रूद्रट काच्यालंकार - 2.32

संस्कृत के आचार्यों ने काच्य में औ चित्य को विशेष महत्व दिया है। औ चित्य के प्रत्यक्षदर्शी आचार्यों में खद का नाम सबसे पहले आता है। क्षेमेन्द्र ने औ पित्य को रसिद्ध काट्य की आत्मा कहा है। आनन्द वर्धन के अनुसार तो अनौ चित्य से बढ़कर रसभंग का कोई कारण नहीं है और प्रसिद्ध औ चित्य का अनुसर सरण ही रस का परम रहस्य है। काट्य का जी वित भूत तत्व है, "रस" असएव काट्य का उपनिबन्धन करते समय कवि को रसप्टिट के लिए सर्वात्मना प्रयत्नशील होना चाहिए। सहृदय के हृदय में रसानुभूति कराना परम वांछनीय है और केवल ऐतिहा तिक घटनाओं के गृष्क वर्णन ते पाठकों को रतानुभृति नहीं कराई जा सकती है। अतः कवि के लिए आवश्यक है वह कथानक को सरस बनाने के लिए रसायकर्षक तत्वों का परिहार करें और रसपोषक तत्वोँ का सन्निवेश अपने काच्य में करें। इतिवृत्त मात्र का निवाह कर देने से सकल प्रयोजन मौ लिभूत रत्या दिक भावों के आस्वादन से समुद्रभूत विगलित वेधान्तर आनन्द की अनुभूति कराने वाले कवि का कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता है। क्यों कि वह प्रयोजन तो इतिहास से भी सिद्ध हो सकता है। इसी कारण रस पोष्ण के लिए सर्वात्मना प्रयत्नशील कवि को कहीं घटना का संकोच करना पड़ता है तो कहीं घटना का विस्तार और कहीं नूतन घटना की उद्भावना करनी पड़ती है। पर इस नुतन उद्भावना के समय कवि को इस बात के लिए जागरूक रहना पड़ता है कि वह नृतन कल्पना काच्यगत रस संगति के साथ इतिहास गत मुख्य वस्तु तत्व से भिन्न किसी प्रकार न नगे अपितु इसका एक विस्तृत रूप प्रतीत हो । जहां नूतन स्फुरित होते हुये काट्य वस्तुओं में पुरातन वस्तु रचना १अथयोजना १ अक्षरा दि रचना से निबद्ध की जाती है, वह स्पष्ट ही दूषित नहीं होती।

अक्षरादि रचनेव योज्यते यत्र वस्तु रचना पुरातनी ।
 नूतने स्फुरिति काव्यवस्तुनि व्यक्तमेव ख्लु ता न दुष्यिति ।।"
 –ध्वन्यालोक–५–।।१

काट्य में ऐतिहा सिक कथानक का महत्व :-

इतिहास अतीत की घटनाओं को यथासम्भव सत्यरूप में अंकित करता है उसमें ऐसी घटनाओं का वर्णन होता है, जो इसी लोक में घटित हुई तथा उसमें ऐसे व्यक्तियों का चरित्र होता है जो इसी मानव समाज के अंग थे। रेतिहा तिक व्यक्तियों की प्रतिद्धि तथा प्रियता का प्रधान कारण यही है कि वे मानव समाज के एक अंग होकर ही मनुष्य स्वभावानुकून कुछ ऐसे कार्य कर गए जो समाज के लिए बहुत कुछ पथ प्रदर्शक का कार्य करते हैं। समाज का सनातन सत्य स्वरूप अतीत के दर्पण में देखा जा सकता है अतः हम कह सकते हैं कि इतिहास समाज की बीती कहानी है। और समाज इतिहास का प्रतिबिम्ब। सत्य और कल्पना के इस अद्भुत समन्वय की मनोहरता का अनुभव करके ही आचार्यों ने काट्य कथानक के लिए इतिहासोद्भव वृत्त को प्रधानता दी या किती ऐसे सत्पुरख का भी चरित्र काच्य कथानक के लिए उपर्युक्त बताया जो कल का ऐतिहा तिक व्यक्ति होने वाला है। नितान्त कल्पित कथानक को काव्य के लिए उपयोगी नहीं माना । विशेष्टतः महाकाच्य के लिए क्यों कि उसमें इस बात की बहुत अधिक सम्भावना रहती है कि कवि समाज के कल्पित आदशी से इधर उधर बहक जाय और इस प्रकार काच्य के प्रमुख प्रयोजन अथवा प्रधान लक्ष्य १कान्ता तम्मिततया उपदेश - प्रदत्व को ही खो बैठे ।

कथानक की ऐतिहा तिकता लोगों में काट्य के प्रति विश्वास उत्पन्न कराती है और इस प्रकार उसका रूप सजीव, स्वाभाविक एवं ट्यावहा रिक लगने लगता है। ऐतिहा सिक वृत्त एवं पात्र साहित्य सिद्ध आदशों को सजीवता से

^{। &}quot;इतिहासकथोदभूतिमतरदा सदाश्रयम्।"

⁻काव्यादर्श - ।−15

² काट्यप्रकाश

अनुप्राणित कर देते हैं । साहित्यिक कल्पनाओं में यथार्थता ला देते हैं । इतिहास वर्णित चरित्रों से जनसाधारण का आत्मीय सम्बन्ध संस्कारतः जुड़ा रहता है। काच्य में कल्पना का विशेष हाथ रहता ही है किन्तु उस कल्पना निर्मित का व्यगत जीवन को लोक ग़ाहता अर्थात् व्यावहारिकता के स्तर पर लाने का श्रेय ऐतिहा तिक कथानक को ही है। काट्य में ऐतिहा तिक वृतीं को ही प्रधानता रही है। काट्य में ऐतिहा सिक वृत्त रखने का एक और विशेष कारण है। उसमें व्यक्ति के चरित्र का प्रायः समग्र रूप दिखाया जाता है जो अतीत के आश्रय से ही पूर्ण रूपेण जाना जा सकता है। यदि कैवल वर्तमान जीवन का आश्रय लिया जाय तो पुरे का चित्रण नहीं हो सकता क्यों कि पता नहीं आगामी जीवन में किस व्यक्ति को चरित्र में परिवर्तन हो जाय । अतः जब तक जीवन की प्री कथा न मालूम हो किसी एक अँग या अँश में उसके सम्पूर्ण वरित्र का प्रतिनिधित्व या प्रतिबिम्ब नहीं दिखाया जा सकता । प्रत्येक व्यक्ति में गुण दोष दोनों रहते हैं। न कोई नितान्त भना होता है और न कोई नितान्त बुरा ही । जितमें अच्छाइयों की अधिक मात्रा होती है उसे बुरा कहा जाता है। काव्य या महाकाव्य में किसी व्यक्ति की सारी कहानी नहीं कही जाती अपित उसके जीवन का जितना अंश काच्य रस विशेष के लिए उपयोगी समझा जाता है कवि उतने मात्र का वर्णन करता है। अतरव आचार्य आन-दवर्धन का मत है - कि "विभाव अनुभाव तथा संचारी भाव की उचित योजना द्वारा तुन्दर प्रतिद्वा रिक आदि या कल्पित कथानक से युक्त पुबन्ध ही रस का व्यंजक होता है। उसमें मनोनीत रस की प्रतिकूल घटनाओं का त्याग तथा अनुकूल घटनाओं की कल्पना भी की जा सकती है।

[।] ध्वन्यालोक-3-66, 67

पात्र का काट्य वर्णित मात्र चरित्र उसके तमग्र चरित्र का प्रतीक होना चाहिए और यह तभी हो तकता है जब पात्रों का चरित्र पूर्ण स्वरूप में विदित हो। पारिजातहरण कथा की प्राचीनता :-

पारिजातहरण कथा अति प्राचीन काल से प्रसिद्ध रही है। पारिजात-हरण काच्य की कथा पुराण प्रसिद्ध है। हरिवंश पुराण से इस काच्य की कथा ली गई है। पारिजातहरण महाकाच्य की कथा कृष्ण की कथा से सम्बन्धित है। राम तथा कृष्ण की कथा तो लोक प्रसिद्ध है तथा प्राचीनकाल से ही विख्यात है। हरिवंश पुराण में दो प्रकार की कथा प्रसिद्ध है। दूसरी कथा दूश्य श्रव्य काच्य में स्वीकार की गई है।

दूसरी कथा को ही आधार मानकर इस पारिजातहरण महाकाच्य की रचना हुई है।

पारिजातहरण की कथा विभिन्न पुराणों में भिन्न-भिन्न प्रकार से भिन्त-भिन्न प्रकार से भिन्ति है। ब्रह्मपुराण, विष्णु पुराण, देवी भागवत में पारिजातहरण का वृतान्त मिलता है। पारिजातहरण का वृतान्त हरिवंश में विभिष्ट स्थान रखता है। पारिजातहरण का द्वितीय वृतान्त हरिवंश पुराण के वारह अध्यायों में वर्णित है।

इसी कथा का आधार मानकर पारिजातहरण महाकाच्य की रचना की गई है। अतः भिन्न भिन्न पुराणों में पारिजातहरण के वर्णन से पारिजातहरण कथा की प्राचीनता सिद्ध होती है।

[।] हरिवंश पुराण - 2-67, 68, 79

² हरिवंश पुराण - 2-72, 29-66

पारिजातहरण कथानक का आधार प्राण:-

कवि उमापति द्विदी द्वारा विरचित पारिजातहरण महाकाच्य के पूर्व अनेक कवियों ने पारिजातहरण नाम के ग्रन्थ लिखे हैं इसमें निम्न कवियों के नाम उल्लेखनीय है:-

कविराज, भोज, रघुनाथ हतन्जौर के राजा पारिजातहरण नाटक रचयिता गोपाल दास "। यह सभी ग्रन्थ कवि उमापति द्विदी विरचित पारिजातहरण महाकाच्य के पूर्व ही लिखे गए क्यों कि प्रस्तूत पारिजातहरण महाकाच्य 19 वीं शताब्दी में लिखा गया है । इसके बाद इस प्रकार का कोई महाकाच्य किसी कवि ने नहीं लिखा चूँ कि सभी पारिजातहरण १काच्य या नाटक१ का आधार पुराण ही है अतः यह सिद्ध है कि प्रस्तुत पारिजातहरण महाकाच्य का आधार भी पुराण ही है तथा दूसरी बात यह भी सिद्ध है कि पारिजातहरण महाकाच्य १कवि उमापति की कथाहरिवंश पुराण में वर्णित पारिजातहरण की कथा से बिलकूल वैसी ही मिलती है। अतः पारिजातहरण कथानक का आधार पुराण ही है यह सिद्ध है। पारिजातहरण महाकाच्य के अन्त की कथा हरिवंश पुराण की कथा से कुछ मिन्न हो गई है। रस पोष्ण के लिए सर्वात्मना प्रयत्नश्वील कवि को कहीं नृतन घटना की उद्भावना करनी पड़ती है पर इस नूतन उद्भावना के समय कवि को इस बात के लिए जागरूक रहना पडुता है कि वह नृतन कल्पना काच्यगत रस संगति के साथ इतिहास गत मुख्य वस्तु तत्व से भिन्न किसी प्रकार न लगे। काच्य के अन्त में जो कथा है वह कवि उमापति की अपनी कलपना है लेकिन मुख्य कथा से भिन्न किसी प्रकार नहीं लगती । वह कथा पारिजातहरण महाकाच्य में इस प्रकार मिलती है - अन्त में उपहार रूप में

कृष्ण का पारिजातवृक्ष का पाना तथा सत्यभामा के घर में वृक्ष का आरोपण।

संवाद वर्णन

पारिजातहरण महाकाच्य में स्थान-स्थान पर संवाद वर्णन मिलता है। यह संवाद रस पोष्ण के लिए काच्य में कथानक का विस्तार करने में बहुत ही सहायक होते हैं साथ ही विविध घटनाओं के वर्णन में भी सहायक होते हैं।

काच्य के एकादश सर्ग में नारद इन्द्र संवाद वर्णन मिलता है। जब नारद स्वर्ग पहुँचे तो इन्द्र ने उनका अभिवादन किया। और कुबल प्रश्न पूछे कि आपके शान्तिमय व्यवहार में विघ्नों का अभाव तो है न। अपने पिता की कुशलता बताइये और यदि मेरे १इन्द्र के१ प्रति उनका कुछ आदेश हो तो सुनवाइये " श्री नारायण या महेश्वर शिव का यदि कोई सन्देश ले आए हो तो उसे भी सुनाइए क्यों कि उनके अनुशासन को किंचितमात्र भी टालना उचित नहीं है 2।

अग्नि आदि दिग्पालों को कुछ मुझते १इन्द्र ते१अभीष्ट हो तो बताइए। अतः चाहे आत्म तम्बन्धी या अन्य तम्बन्धी कुछ वृत्त जो मेरे सुनने लायक हो कहिये" इस समय मर्त्य लोक पर शासन करने वाले अखिल मुनन नायक मेरे छोटे भाई रमानाथ की कुशलता बताकर मेरी १इन्द्र की १ मानसिक उत्कण्ठा शान्त करिये। यदि केवल मेरे पर अनुग्रह करते हैं तो आपके दर्शन में कृतार्थ हुआ। इस प्रकार अवसर पाकर नारद जी ने अपने

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - एकविंश तर्ग

² पारिजातहरण महाकाच्य - एकादश सर्ग - 26

उ पारिजातहरण महाकाच्य - एकादश तर्ग - 28

अभिनिष्ठित कार्य की तिद्धि के लिए भूमिका के तमान वचन-प्रबन्ध प्रारम्भ किया । हे इन्द्र देव इस समय हमारा भ्रमण केवल आपके ही अभीष्ट कार्य सिद्धि के लिए है । मैं श्र्नारद भगवान कृष्ण को आपके पिता श्री कश्यप जी का कृशन सन्देश बताकर द्वारिका पुरी से यहाँ आया हूँ आपके अनुज श्रीकृष्ण भनी भाँति शासन कर रहे हैं । वह चक्रधारी कृष्ण शासन कर रहे हैं । वह चक्रधारी कृष्ण भौमासुर की पराजय चाहने वाले तथा आपके हित चाहने वाले आपका साथ देना भी अपनी ओर से चाह रहे हैं किन्तु इस बीच में आ पड़े एक आक्रिमक वृतान्त को सुनिए जिससे नारायण ने आपके पास अभी मुझे भेजा है ।

आपके सुरवृक्ष पारिजात का एक फूल पाकर मैंने उनको मेंट किया इन्होंने उसे भीष्म कन्या रुक्मिणी को दे दिया यह सुनकर उनके बाहरी प्राण के समान प्रिय स्त्री सत्यभामा उनके बाहरी प्राण के समान प्रिय स्त्री सत्यभामा इंक्यां से कृषित हो उठी थी और उन भगवान कृष्ण ने सत्यभामा के मानभंग के लिए वर्ष भर के लिए पारिजातवृक्ष को उनके घर में लगा देने की प्रतिज्ञा कर दी है । अतः वर्ष भर के लिये आप अपने अनुज को देववृक्षों में रत्नभूत पारिजात को दे दीजिए । यदुनाथ ने मृदुल मुख से आप इंदेवलोक नायक है से याचना किया है । वह सत्यभामा आज दम्पत्ति के द्वारा सर्वथा पुत्री के समान सम्मान योग्य पारितोष्ठिक की पात्र है ।

नारद जी ने ज्यों ही इतना इतिवृत्ति कह सुनाया तब तक ही कि अमरनाथ इन्द्र चमक उठे और बोले अब अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है। वह छली कृष्ण देवता से लेकर असुरों तक अपनी प्रभुता बनाने के लिए अपनी

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - एकादश तर्ग - 44 32

^{2.} UIRWINELOT STEIRWAR - EATRIFHIT 44

माया फैलाकर हम सबको दबा रहे हैं और अब स्वर्ग की जो कुछ भी उत्तम वस्तु है उसे भी हर लेना चाहते हैं। वह कृष्ण अब उन्नति के लिये हमारी हानि का प्रयत्न कर रहे हैं। इन्होंने इस प्रकार एक बहाना पैदा कर हमें श्रूडन्द्र को श्रूजीतने की इच्छा से आपसे यह मौखिक सन्देश भेजा है। वह कृष्ण अपनी सूझ से अपने तात्कालिक स्वार्थ सिद्धि के लिए जिसकी उपयोगिता मान लेता है, कभी सिन्ध, कभी विग्रह आदि का मनमाना अव्यवस्थित प्रयोग किया ही करता है। नीति के अनुसार मुझ इन्द्र पर चढ़ाई कर देने के लिए वृक्ष की याचना लप एक व्याज श्रूकपट हैं रच रहे हैं। इसलिए हे मुनिवर आप जाइए और उन कृष्ण से कहिए कि अपने स्वत्व को बढ़ाना तो अवश्य इष्ट है किन्तु दूसरे के स्वत्व को मिटाने की क्या आवश्यकता है। इस प्रकार कृष्ण के दुर्गुण बताते हुए इन्द्र कहते है – यदि मनुष्य में स्त्रैणता रहे तो उसके ऐश्वर्य के विनाश में कोई रकावट नहीं है, उसका प्रभुत्व नष्ट हो हो जाता है। क्यों कि स्त्री से जित श्वशीभूत श्रूष्ट का जन्म ही व्यर्थ है। स्त्री के वश में रहने वाले मनुष्यों के अन्न खाने में भी पाप धर्मशास्त्रकारों ने बताया है।

इस प्रकार कहते हुए इन्द्र से नारद जी ने कहा कि एकाएक ज्ञात हो पड़ी समता के कारण रस्ती में उदित हुई सर्प बुद्धि किसी की भी हो द्वर सबके लिए भ्रान्ति ही है। कृष्ण की माया तो विख्यात ही है। इस निरंचन पुरुष कृष्ण को जगद व्यवहार से कोई प्रयोजन नही है। इस प्रकार नारद भगवान कृष्ण के गुणों का व्याख्यान बताते हुए इन्द्र से कहते हैं – हे देवेन्द्र!

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - एकादश तर्ग - 52

² पारिजातहरण महाकाच्य - एकादश तर्ग - 62

उ पारिजातहरमा महाकाच्य - एकादश तर्ग - 71

⁴ पारिजातहरण महाकाच्य - एकादश सर्ग - 76

अपने को ही धोखे में डालकर अपने आप अपनी शशुता करते हुए आपको मैं कौन सा सद्वयदेश दूँ। यह मूद्ता स्वयं पल को आपके कर्म विपाक को §अलंकृत करेगी।

इस प्रकार विभिन्न शास्त्रों तथा विभिन्न दर्शनों के वर्णन द्वारा भगवान श्रीकृष्ण के गुणों का वर्णन नारद तथा इन्द्र के द्वारा करके कवि ने अपने पाण्डित्य को प्रदर्शित करते हुए काव्य के कथानक का विस्तार किया है जो कि अत्यन्त ही स्वाभाविक है।

पारिजातहरण महाकाच्य के एकोनविंश तथा विंश सर्ग में ऋषि कश्यप तथा इन्द्र और भगवान कृष्ण का संवाद वर्णन मिलता है सभी महात्माओं तथा प्रजापति के गुरु वृहरूपति ने कश्यप ऋषि के पास जाकर इन्द्र तथा कृष्ण के युद्ध का वृतान्त सुनाया।

तब ऋषि उन दोनों के पास गए। इन्द्र तथा कृष्ण अपने पिता को युद्ध स्थल में देखकर स्तब्ध रह गए और उनके चरणों में गिर गए। तब ऋषि ने दोनों हुइन्द्र तथा कृष्णहुं की चारूता के लिए निश्चय करके कुछ प्रभावशाली वाणी में कहा तुम दोनों तत्व को जानने वाले हो तुम हुक्षणहुं ने अवतार लेकर देवता के दुःख को दूर किया तुम दोनों न चाही गई वस्तु को नहीं दे सकते ऐसा नहीं है। सभी वैभव तुम लोगों को प्राप्त हो। निगम आदि गीतों में तुम्हारा उल्लेख है। तुम लोगों यज्ञों के ईश्वर भी हो। जगत के गुरू हो इस कारण में ऋषि कश्यप इस विष्यमा यित शरीर में निर्णायकत्व को प्राप्त करके कुछ कहता हूं इस समय यह शोधनीय नहीं है, पारिजात वृक्ष

पारिजातहरण महाकाच्य - एकाद्या सर्ग - 97

² पारिजातहरण महाकाच्य - एकोनिविश सर्ग

पारिजातहरण महाकाच्य - विंशसर्ग -

देवलों के में रहे या पृथ्वी पर देवताओं की माता अदिति का कर्णावतंत हरण हो गया है "विशेष चिन्ता का विषय यह है। अपनी वधू के लियेकल्पवृक्ष के हरण के लिए आपस में तुम दोनों कलह करते हो क्या यह तुम दोनों को शोभा देता है। इस प्रकार कश्यप ग्रिष्ठ के द्वारा जननी की स्तुति भी की गई।

युद्ध वर्णनः-

इन्द्र के नारद से यह वचन कहने पर कि जाइये उस कृष्ण से कहिए कि:-

"बिना युद्ध के इस वृक्ष का एक पत्ता भी नहीं मिल सकता" नारायण तथा इन्द्र का युद्ध होना स्वाभाविक ही था।

रस पोष्ण के लिए इस प्रकार के वर्णन तो कथानक के विस्तार करने में बहुत ही सहायक होते हैं।

पारिजातहरण महाकाच्य के सत्रहवें सर्ग में नारायण तथा इन्द्र के युद्ध का विस्तृत वर्णन किया गया है। इन्द्र भगवान कृष्ण से कहते हैं — हे कुबात । पारिजातवृक्ष के प्रति इच्छा त्याग दो। इन्द्रलोक के स्वामी को डरपोक मत समझो। तुम्हारा अधिकार इस वृक्ष के पत्ते पर भी नहीं है।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - एकादश सर्ग - 100

² पारिजातहरण महाकाव्य - सप्तदश सर्ग - ।

ऐसा कहने पर ओजस्वी इन्द्र ने अपने विशाल धनुष्य को अपने कान तक खींचा और निरंकुश बाण से तीर कृष्ण के उधर छोड़ दिया । क्रोध से भगवान ने भी उसके बाण को निराकृत कर दिया और गम्भीर बाणी में बोले — सम्पूर्ण सिद्धियां पराक्रम से होती है । मुझ कृष्ण का निश्चय बेकार नहीं है । यह पेड़ मैं ले जाउँगा । इसलिए अपनी सफ्लता के लिये निश्चय मत करो ऐसा कहकर भगवान ने भी धनुष्य तैयार कर लिया, जो देद्रा होकर भूभंग के समान भयंकर लग रहा था उतनी ही देर में इन्द्र के पुत्र पुरन्दर तथा कृष्ण के पुत्र पृयुम्न युद्ध के लिए तैयार हो गए और लगातार बाणों की वर्षा करते हुए एक दूसरे को मारने के लिए उद्यत हो गए । दोनों ही अपना—अपना कौशल दिखा रहे थे दोनों ही रोष्य से पूर्ण थे तथा दोनों का शरीर बाण रूपी पिंजरे के अन्दर प्रयहन्न हो गया था । उन दोनों हुइन्द्र तथा कृष्ण का रोष्य सिहत युद्ध देखकर स्वर्ग से देवगण देखने की इच्छा से भाग खड़े हुए ।

पृथ्वी फट गई, जमीन में चीत्कार पैदा हो गया तारों के तमुदाय की संक्रान्ति शृंख्ला रहित हो गई अचानक स्वर्ग लोक फट गया । अत्यधिक चमत्कार से युक्त स्वर आकाश में में उत्पन्न हो गया । इन्द्र का हाथी तथा कृष्ण का वाहन गरण दोनों चीत्कार करने लेंगे । सभी देवताओं तथा महर्षियों द्वारा युद्ध शान्ति के लिए स्वस्त्ययन पाठ प्रारम्भ कर दिया गया । •

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - तप्तदश तर्ग - 4

² पारिजातहरण महाकाच्य - सप्तदशासर्ग - 17

³ पारिजातहरण महाकाव्य - तप्तदर्श - 20

उतनी ही देर में इन्द्र के हिस्तवाहक ने सात्यिक के विशाल वक्षस्थल पर गदा मार दी। वह सात्यिक जन्म से कभी किसी से पराजित नहीं हुआ था तथा जो कृष्ण का दाहिना हाथ था। यह अपमान सात्यिक से कैसे सहा जाता उस सात्यिक ने अपने अतुलनीय कान्ति वाले कुन्त से इन्द्र के छत्र को आकाश में उड़ा दिया तथा हिस्त वाहक के आभूष्ण रूप बाण को भी गिरा दिया। इस सात्यिक के अद्भुत कर्म से कृष्ण प्रसन्न हो गया तथा इन्द्र कोध से भर गया तब कोध से व्याप्त शरीर वाले वह इन्द्र अपने इस अपमान को दूर करते हुए से कृष्ण के मान हानि की इच्छा से जब तक हाथ में बाण उठाते हैं तब तक सात्यिक उस बाण को काट देता है।

साथ ही ऐरावत के हांकने वाले के मस्तक को भी भेद डाला तथा इन्द्र के ध्वज के धूनन में विचार किया सभी दिशाओं के स्वामी सात्यिक के अद्भुत पराक्रम को देखने के लिए टूट पड़े। इन्द्र के पक्ष की ओर के शर पंजर को प्रद्युम्न ने तोड़ डाला।

युद्ध का वर्णन किव के काट्य लिखने के मुख्य प्रयोजन को भी विद्ध करने में सहायक हुआ है तथार रस पोष्ण में कथानक का विस्तार करने में भी अत्यन्त आवश्यक सिद्ध हुआ है।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - सप्तदश सर्ग = 28

पारिजात पुष्प का निरूपण:-

काट्य के छठे तर्ग में पारिजात नामक पुष्प का निरूपण किया गया है। तभी अभिनाषाओं को पूर्ण कर देने वाले इस पारिजात पुष्प का निरूपण करना कवि का प्रयोजन है।

प्रस्तुत महाकाच्य का नाम ही पारिजातहरण महाकाच्य है अतः पारिजात पुष्प का निरूपण करना तो कवि के लिए स्वाभाविक ही प्रतीत होता है।

वह पारिजातपुष्प अत्यन्त ही चमकीला था। उस पुष्प का अपूर्व सौरभ था। उसको देखकर सभी जनों के मानस प्रफुल्ल हो मोहक आनन्द में विभोर हो रहे थे। "उस पूल पारिजात की चित्त को लुभाने वाली अकथनीय कान्ति ने सकल संसार की आधीं जिनकी कान्ति पर विराम करती है उस विश्वदर्शनीय रुक्मिणी सहित कृष्ण भगवान की आधीं को भी सतृष्णा लोभ युक्त कर दी।

अकत्मात् फैली उत पूल की प्रभा प्रतार ने निजी आकार के चमत्कार की चकाचाँध में सबकी आँखें तत्काल बन्द करदीं उस क्षण थोड़ी देर के लिए ऐसा लग रहा था जैसे मूर्तिमती आनन्दमय घनघटा की घटना सी संघटित हो गई हो और पुष्प की प्रभा स्थिर हो चमकने वाली बिजली सी लग रही थी।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - ठाठ तर्ग - ।

महर्षि नारद भगवान कृष्ण को वह पारिजात पुष्प उपहार रूप में देते हुये उस पुष्प के गुणों का वर्णन करते हुये कहते हैं – वह पुष्प भगवान के हाथ में अद्भुत शो भित हुआ । हे भगवन्। परम प्रभावशाली आप हुक्षण्ण के सिवा पृथ्वी तल के ऐश्वर्य भोगने वाले किसी दूसरे लोगों के योग्य यह दिव्य पुष्प नहीं है । यह पुष्प न तो कभी कुम्हलाता है न कभी इसकी गन्ध उड़ती है । इसके मिल जाने पर अन्धों को भी प्रत्यक्ष दिव्य दृष्टिट मिल जाती है । जीवों के मन की सभी अभिष्याओं को पूर्ण करता है तथा सम्पूर्ण गुणों के पाने की इच्छा रखने वालों को भी सन्तुष्ट करता है । सौभाग्य को यमका देता हथा पुष्पों का उदय करने वाला है । इसकी शोभा कभी भी नहीं घटती । दुःखी चित्त को भी पूर्ण सुखी कर देने वाला यह त्रिलोक में अनुपम है । स्वर्ग में भी इसके समान दूसरा पुष्प नहीं है ।

इत प्रकार उस पुष्प पर रुक्मिणी तथा कृष्ण दोनों उत्सुकता भरी आंधें एक अतिरिक्त पुष्प के समान उस पर प्रतिविम्बित हो उठी।

तम्पूर्ण अभीष्टों के देने वाले इस सन्तान पुष्प को भावान ने प्रेमोपहार के रूप में रुक्मिणी को दे दिया ।

सत्यभामा के क्रोध का वर्णन :-

घटनाओं का वर्णन कवि उमापति ने अपने काव्य के कथानक का बढ़ाने के लिये किया है। सत्यभामा कृष्ण की सबसे प्रिय पत्नी थी। नारद के

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - षठि सर्ग - 6-8

² पारिजातहरण महाकाच्य - षठ तर्ग - ।।

दारा दिए गए पुष्प को भगवान कृष्ण को रुक्मिणी को दे दिया यह वृतान्त जानकर स्वाभाविक है - रुक्मिणी के सम्माना तिशय को सखी के मुख से सुनकर सत्यभामा का मानस क्रोध से भर गया । वह सत्यभामा क्रोध से लाल रक्त प्रमा ते अनुरंजित आकाश भूमि ती भीषण दिखाई पड़ रही थी । तत्यभामा ने अपने दुःख का कारण मुनि से बताया - पति के लिए बनावटी आदशों के गर्व में मैने किसी अन्य स्त्री को कुछ भी नहीं गिना । इसी से आज लज्जाजनक अपमान सूचक प्रिय के विरुद्ध पल पा रही हूँ। सत्यभामा क्रोध से भगवान् के दुर्गुणों को बताती हुई कहती है :- काली का नित वालों की रीति ही रत विषय में तदा उलटी ही रहती है। कृष्ण पर ही अपने को न्यो छावर करने वाली राधिका को कुल कलंकिनी बनाकर आज तक उसे नहीं पूछते । ना हितकता से युक्त श्रेष्ठ पुरुष की वृद्धि जैसे निरर्थक हो जाती है, उसी प्रकार विध्यमरीति वाली प्रीति भी निरर्थक होती है। इसलिये हे मुने। पति के परम अनुराग रूप भाग को पाने वाली रुक्मिणी की ही आज प्रशंसा करें जो आपके उपहार रूप दिए सकल कामना पूरक पारिजात का पूल पाकर सौभाग्य रूप ्रतेज में फूली नहीं समाती हैं। यह १क्टण१ राधिकारमण नाम से प्रसिद्ध थे इनकी राधारमणता को पहले ही कुब्जा ने फीका कर दिया ।

अखिल तत्व ज्ञान के आधार भगवान कृष्ण सत्यभामा को सही-सही कोप युक्त जानकर उन्हें मनाने के लिए उनके घर की ओर चल दिए । भगवान अपनी प्रियतमा की कोप स्थिति को देखने लगे । अधिक श्वींसो च्छ्वास के कारण कांपते हृदय पर कमल कोष्य के समान वृक्षोज युगल जोरा में हिल रहे थे।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - सप्तमतर्ग - 3

² पारिजातहरण महाकाच्य - तप्तमतर्ग - 31

³ पारिजातहरण महाकाव्य - सप्तमसर्ग - 33

⁴ पारिजातहरण महाकाच्य - तप्तमसर्ग - 41

⁵ पारिजातहरण महाकाच्य - अष्टमसर्ग - ।

वह तत्यभामा क्रोध युक्त टेढ़ी भौहों ते युक्त मुख को धारण किए दीख रही थी कूद्ध तर्पिणी की भांति वह लम्बी-लम्बी भयंकर तांतें ले रही थी ।

अपने भूषण शृंगारा दि से रहित स्वच्छ शरीर वाली सत्यभामा परमहर्ष के समय भी ऐसी जान पड़ती थी जैसे बसन्त के आरम्भ में पतझड़ हो जाने से डंठल मात्र से बची लता हो जाती है। अपने प्राण बल्लभककृष्ण को सामने देखकर क्रोंध के आवेश में सत्यभामा न उठ ही सकी, न पड़ी ही रही। सात्विक श्रृंगार भाव के उदय से नवोदा के समान उनका शरीर कांपने लगा। सत्यभामा के जलते क्रोधा रिन में भगवान् कृष्ण का जो प्रेमार्द्ध भाव आ मिला इससे भाप बनकर उठे जल से भरे अपने नयन कमल रूप दोनों पुट पात्रों को ही उसने भगवान के पांच पखारने का पात्र बना दिया अर्थात डबडबाई आंखों से उनके चरणों को अष्रुजल से सींचने लगी।

तत्यभामा के क्रोध की शान्ति के लिए पारिजात वृक्ष को तत्यभामा के घर में एक वर्ष तक लगा देने का वचन कृष्ण ने दे दिया " हे प्रिये तत्य प्रतिज्ञा करता हूं आज तुम सुनो और यह सभी देवता सुने वह पारिजात वृक्ष ही हमारा लाया तुम्हारे अभीष्ट पुष्पों को बरसाता हुआ एक वर्ष तक तुम्हारे आँगन में रहें अब तुम शीघ्र प्रसन्न हो जाओ ।

इस प्रकार सत्यभामा के क्रोध का वर्णन कवि ने अपने काट्य के कथानक का विस्तार करने के लिए किया है।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - अष्टम तर्ग - 21

² पारिजातहरण महाकाच्य - अष्टमसर्ग -34

³ पारिजातहरण महाकाच्य - नवम तर्ग -41

गृहस्य धर्म का निरूपण :-

काट्य के रत पोष्ण के लिए अपने काट्य में कवि को कहीं घटना का विस्तार करना पड़ता है।

पारिजातहरण महाकाच्य के चतुर्थ तर्ग में गृहस्थ धर्म का निरूपण करके किव ने अपने धर्म शास्त्र ज्ञान का परिचय दिया है। साथ ही यह वर्णन किव के कथानक का विस्तार करने में भी सहायक है। इस प्रकार काच्य में स्थान-स्थान पर उपदेश भी प्राप्त होते हैं।

"रुक्मिणी तहित भगवान श्रीकृष्ण ने स्वयं अपने हाथ ते महर्षि नारद के पाद प्रधालन किए क्यों कि अतिथि तेवा ते बढ़कर गृहस्थ का दूसरा धर्म ही नहीं है।" अपने अभीष्ट वस्तु की उत्पत्ति ही सभी धर्मों का अन्तिम परिणाम है। गार्हस्थ्य तम्बन्धी हमारे तभी धर्म आज आपके दर्शन ते तफल हो गए इससे बढ़कर हमारी अभीष्ट वस्तु क्या होगी।

गृह शब्द का अर्थ गृहीत होने वाला या गृहण करने वाला होता है।
जिसे सज्जन अनुगृहीत करने है या अपनी सेवा सत्कारादि गुणों से जो स्वयं
महात्माओं को अपनी ओर खींच लेता है। वही वास्तव में गृह है।
गृहस्थ से इतर कुछ भी अपेक्षा जिसे है वह अतिथि मात्र भिक्षु है, गृहस्थी की
रक्षा करने वाले हम लोगों का महात्माओं का शुभ दर्शन देव का दिया पुरस्कार है। जो मनुष्य गृहाश्रम के सभी सुख दूसरों को न भुगाकर अपने भोगते हैं
वे लोकोपकारिणी संस्था के सर्वस्व हड़प जाने वाले महान पापी है।
गृहस्थ की कृतार्थता पृत्येक जीवों की सेवा से ही होती है।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - चतुर्थ सर्ग - 104

² पारिजातहरण महाकाच्य - चतुर्थ सर्ग - 112

³ पारिजातहरण महाकाच्य - चतुर्थ तर्ग - 115

सती धर्म का निरूपण :-

रस पोषण के लिए विविध घटनाओं का वर्णन कवि के कथानक का विस्तार करने में सहायक प्रतीत होते हैं।

कवि उमापति ने अपने पारिजातहरण महाकाट्य के छठे सर्ग में सती धर्म का निरूपण किया है जो कथानक के विस्तार के साथ साथ कवि के विविध्यास्त्रों के ज्ञान को भी प्रकट करता है।

रुक्मिणी जी भगवान कृष्ण के महत्त्व का वर्णन नारद से कर रही हैं। सर्वेश्वर भगवान के यरण कमलों की सेवा का अवसर मुझे प्राप्त है तो में रुक्मिणी उससे बढ़कर किसी वस्तु को नहीं मानती। पारिजात पुष्प की तो पित्र कोई बात ही नहीं। पित के यरण प्रधालन जल से अपने को में कृतार्थ मानती हूँ। वह रुक्मिणी पित को ही देवता मानने वाली थी। त्रिलोक में जो कुछ भी पुष्टिपत फलित है वह सभी सित्यों के लिये पित सेवा से ही प्राप्त है अतः पित को प्रसन्न करने के अतिरिक्त उन्हें कुछ भी अभीष्ट नहीं है।

इस संसार में जो भी वस्तुरं अत्यन्त प्रिय है उनमें किसी पर यदि उत्तम स्त्री बाच्छा करती है तो केवल पति की हित कामना से ही। अपने पति से अलग जो स्त्री इस बा सारे जगत को भी नहीं समझती ऐसी सितयों के लिए यह सम्पूर्ण संसार आनन्दमय हो उठता है। जो स्त्री आधे क्षण भी जिसके १पित के१अनुराग से रहित हो नहीं रहती तथा जिससे अलग

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - ८०० सर्ग - 25

हो जीती हुई भी जो मरी सी रहती है तथा पतिवृता स्त्री पति के प्रसाद रूप सुर्खों में स्वर्ग-नरक को भी समान मानती है तथा नित्य अपने पति गति का ही अनुसरण करती है।

इस प्रकार सती धर्म का निरूपण करते हुये रुक्मिणी नारद से कहती हैं - हे अधिवर यह मेरा कथन आत्मा प्रांसा परक नहीं है यह तो मैंने सितयों की साधारण स्थिति बतलाई है। इसी स्थिति को मैं हर समय निर्विध्न निभाती रहूँ ऐसी मेरी कामना को आप अपने आशिवाद से पूर्ण करें।

भगवान की स्तुति :-

कवि को इस काट्य को लिखने का एक उद्देश्य ईशस्तुति भी था यह काट्य शान्त रस या भिक्त रस पृथान काट्य है। अतः काट्य के कई सर्गों में भगवान की स्तुति का वर्णन मिलता है। काट्य के पांचवें, बारहवें, अठारहवें तथा बीसवें सर्ग में भगवान की स्तुति का वर्णन मिलता है।

नारद के मुख ते भगवान कृष्ण की स्तुति है – हे जगन्नाथ संतार के तारने वाले आपके दर्शन मात्र ते कृतार्थ होने वाले हमारे प्रति आपके द्वारा यह प्रयोग योग्य नहीं है। सर्वथा पूर्ण होने ते निरीह की उपाधि तो आपकी ही हो तकती है। आप स्थून दृष्टिट वालों की दर्शन लालता पूर्ण करने वाले हैं। हे भगवान ! जन्म आकृति क्रियागुणों ते आपका कोई वर्णन नहीं कर सकता है। हे लोकेश ! यह संतार आपकी कृपा के अनुरोध निरोध

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - षठ तर्ग - 34

² पारिजातहरण महाकाट्य - पंचम तर्ग - 3

के दारा सजा हुआ है। आपने संसार में विभिन्न अवतार धारण कर समय-समय पर लोगों के कड़ दों का निवारण किया है। जब कभी प्राणियों की क्रियारं आपकी दूषिट के लक्ष्य बन जाते हैं तब प्राणी बन्धन रहित मुक्त हो जाते हैं यही उनका मोक्ष है। काच्य के बारहवें तर्ग में गरूड़ के द्वारा भगवान कृष्ण की स्तृति का वर्णन मिलता है । हे परमपुज्य मेरा गरूड़ का शरीर और मन आपसे एक क्षण के लिए भी अलग नहीं है । हे निर्विकार आपकी मानव के रूप में जो चेठटाएं हैं वह हम लोगों को प्रतन्नता देने वाली हैं आपकी इच्छा से ये सुष्टिट हुई है। विभिन्न जन्म लेकर आप इस संसार को प्रकाधित करते हैं। यह व्यापक वाइ. मय आपके गुण जाति कर्म की भूद्धता से प्राप्त है। हे ईश्वर आप प्रतिदिन नए जगत का निर्माण करते हैं तथा उसका विस्तार करते हैं । हे भगवन । आप प्रतिदिन नए जगत का निर्माण करते हैं तथा उसका विस्तार करते हैं। हे भगवन् आपकी सम्पूर्ण चेष्टाएं समान लोक की प्राप्ति से है। तुम्हारी अपनी इस लोक में कोई इच्छा नहीं है जैसे दीप स्वयं प्रका जिल हो कर वस्त को दिखाता है उसी प्रकार तुम स्वयं प्रकाशित होते हैं। हम लोगों का आपसे अलग कोई अस्तित्व ਜਵੀਂ है।

युद्ध के वैद्यम्य की शान्ति के लिये भगवान् कृष्ण स्वयं भगवान शिव की स्तुति करते है ।

> "प्रतिमील्य लोचन पयोजयोर्द्यं हृदि, हृष्टताम्यबचरणामब्जयो न्यंधात् । अथ तृष्टद्वोऽनुरति गद्गदाक्षरं भगवन् । प्रतीद विष्ये सुतिद्वये ।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य – पंचम सर्ग – 21

² पारिजातहरण महाकाच्य - द्वादश्मर्ग - 45

उपारिजातहरण महाकाव्य – अष्टादश सर्ग – 5

काट्य के विश सर्ग में भगवान कृष्ण की स्तृति का वर्णन किया

हे ईशवर अनेक अवतारों से क्रीड़ा करने के लिए न दिखाई देने वाले भी दिखाई पड़ने वाले दूसय स्वरूप होते हुये भी ज्ञान के धामम के रूप में आपकी आत्मा होती है। हे ईश तुम्हें नमस्कार है।

हे जगत् का जालन करने वाले प्रलय काल में अपनी कोख में सम्पूर्ण विश्व को एक करने वाले हो हे ईश तुम्हें नमस्कार है। आप ब्राह्मण, देवताओं सभी के दुःख का नाशं करने वाले हैं।

मुनि नारद के मुख से इस गीत स्त्रोत को सुनकर अभय की मुद्रा धारण करने वाले कृष्ण बोले - मेरी स्तुति पढ़ने वालों को अभय निधियत हो जाता है।

दारिका वर्णन ते प्रारम्भः -

किव उमापित दिवेदी विरिधित पारिजातहरण महाकाच्य का प्रारम्भ द्वारिका वर्णन से हुआ है। वस्तु वर्णन के द्वारा किव अपने काच्य की कथा का विस्तार करता है।

तमुद्र रूपी अपने वस्त्रों को संवारती दैदी य्यमान भूषण रूप रत्नों को धारण कर मेथों को अपना केशपाश बनाती हुई, यह दारिकापुरी एक असाधारण नायिका के वेश को धारण करती थी, ऐसी पुरी का मणवान कृष्ण

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - विंशसर्ग - 30

² पारिजातहरण महाकाच्य - विंश्सर्ग - 35

शासन करते थे। इसमें गगन चुम्बी अद्दालिकार्ये थीं। यह समस्त ऐश्वयों को धारण करने वाली थी। विविध रत्नों की विधित्र प्रभा से युक्त थी एवं इसकी दीवारें बहुत ही प्रकाशमान थी।

संतार में औषधि मार्ग तथा मन्त्रों का प्रभाव सर्वोत्तम माना गया है इती पुरी में वह साधारणतः सभी को प्राप्त है। यह पुरी राजमार्ग विश्रामस्थल तथा चौरहों से युक्त है इसके जलमन्त्रागार में चक्राकार नाचते हुये फट्चारों पर शरद धनके भूम से मयूर तथा मोती के आकार की बूँदों के भूम से चातक इसे सदा घेरे रहते हैं। इसमें मनोहर बावड़ी और सरोवर सुशो भित होता है। इस पुरी में कहीं क़ीड़ा पर्वत सुशो भित खोता है, जो बहुत ही उँचा है।

दारिका पुरी के बाजार का भी काट्य के प्रथम तर्ग में वर्णन किया गया है। इस पुरी में उत्कृष्ट कला मर्मज शिल्पी है जो विविध वस्त्रों का निर्माण करते हैं यहां कि विशाल सड़कों पर नाना प्रकार के रथ निरन्तर दौड़ते हैं यहां के वन उपवन की शोभा देखते ही बनती है। इस पुरी के देखते ही देवता लोग भी अपना अमरता पर घृणा करते हैं। इसके दर्शन से पापों की राशि भी विलीन हो जाती है।

दारिका पुरी के राजमहल का वर्णन काच्य के पृथम सर्ग में किया गया है। राजमहल में कहीं युवक वृन्द का क्रीड़ा कौशला दि व्यवहार चल रहा है। कहीं कोलाहल पूर्ण गान हो रहा है। कहीं अप्तराएं नाच रही हैं। कहीं कौं सिल सजी बैठी हुई है। कहीं यज्ञ हो रहे हैं। कहीं यहां के अन्तः पुर में अपार सौन्दर्य ललनाएं हैं। यह राजमहल बहुत हं उँचा है तथा स्वच्छ शीशों से जड़ा है और देवताओं से सेवित है। सैंकड़ों रत्नमय वेदियों से भूषित तथा सुधर्मा नानक देवसमा मण्डप से जो सुसज्जित है।

इस प्रकार "सर्वथा स्वाधीन और समस्त जगत् के नियन्ता सर्वेशवर भगवान श्रीकृष्ण ने मनु सम्बन्धिनी समस्त सम्पत्ति को उपाधि रूप में धारण कर भूतल को जंस आदि दानवों के विनाश द्वारा स्वस्थ कर अपनी बसायी कुशस्थनी द्वारिका को सभी सुखाँ से पूर्ण कर दिया।

इस प्रकार काव्य के प्रथम सर्ग में चौंसठ इलोकों द्वारा द्वारिकापुरी के वर्णन द्वारा कवि ने अपने काव्य में घटना का विस्तार किया है।

यज्ञ का वर्णन :-

पारिजातहरण महाकाच्य के चतुर्थ सर्ग में रुक्मिणी के द्वारा किए गए यज्ञ का विशद-वर्णन किया गया है।

यज्ञ का वर्णन कावि ने अपने काट्य में घटना का विस्तार करने के लिए किया है तथा अपने भ्रुतिज्ञान सम्बन्धित पाणिडत्य को प्रदर्शित किया है।

वैदिक ब्राह्मणों को बुलाकर शास्त्र के अनुसार कुण्ड, मण्डप, वेदिका आदि बनवार, कारीगरों दारा यज्ञ मण्डप सजाया गया । भगवान कृष्ण की पत्नी रूकिमणी के वृतोद्यापन के लिए प्रस्तुत सामग्रियों से सजा सारी कल्याण कामना का एक आधार वह स्थल त्रिलोक के ऐश्वर्य का अतिकृमण कर रहा था ।

यज्ञ को ही इष्ट कहते हैं। अतः यह इष्ट कर्ममनमाने दंग से नहीं होने या हिए अपितु उसके विधान साधन शास्त्रों कत हैं। इच्छा विषय होने से सुख को भी इष्ट कहते हैं। उन शत-शत सुखों को यह यज्ञ ही पनते हैं।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - प्रथम तर्ग - ।

² पारिजातहरणं महाकाच्य - चतुर्थ सर्ग - 36

दिष्ट कर्म जो निष्दि है, वह अनिष्ट पल देते हैं। इष्ट सुख प्राप्ति के लिए विदान यहाँ को ही अपनाते हैं क्यों कि अनृतः कर्मों के द्वारा ही संसार की गति नियमित है कर्म स्भून और सूक्ष्म दो प्रकार के होते हैं।

स्थून कर्मों का पल प्रत्यक्ष होता है तथा तूक्ष्म कर्मों का पल प्रत्यक्ष नहीं होता कर्म ऐहिक आमुष्टिमक नाम से भी दो है। इस शरीर के लिए ऐहिक तथा आत्मा के लिए आमुष्टिमक कर्म है।

यज्ञ प्राणी के दीर्घ जीवन को बढ़ाता है। यज्ञ से ही उत्पन्न अदुष्ट रूप व्यापार उसकी उस समय रक्षा करता है और समय पर पल प्राप्ति होती उसमें तिनक भी सन्देह नहीं है। केवल प्रत्यक्ष पल पर ही विश्वास रखने वाले मनुष्य मूढ़ होते हैं। ऐसा जानकर ही शास्त्रीय विधि वाक्यों द्वारा खोधित देवताओं की तृप्ति चाहती हुई रुक्मिणी यज्ञ में तत्पर हुई क्यों कि उसी को अमृत कहा गया है। अमृतन्ना मयत् सन्तोमन्त्र जिह्वेषु जुह्ति।

इस प्रकार रुकिमणी के द्वारा किए गए यज्ञ का विशव वर्णन कवि ने अपने काव्य की कथा को विस्तृत करने के लिए किया है। यज्ञ का वर्णन कवि कल्पित नहीं है बल्कि शास्त्रों द्वारा प्रतिपादित है।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - चतुर्थ सर्ग - 41

² पारिजातहरण महाकाच्य - चतुर्थ सर्ग - 41

³ पारिजातहरण महाकाच्य - चतुर्थ सर्ग - 51

पारिजातहरण महाकाच्य में मोक्ष पुरुषार्थ:-

काट्यों में किसी एक रस की प्रधानता के साथ किसी एक पुरुषार्थ की भी प्रधानता होनी चाहिए। अन्य पुरुषार्थों की भी उपेक्षा नहीं की जा सकती क्यों कि केवल एक में आसक्त व्यक्ति को जघन्य कहा गया है।

कुछ शान्त रत प्रधान काट्यों में मोक्ष पुरुषार्थ भी प्रधान रूप ते ट्यक्त किया गया है - जैते महाभारत में । पारिजातहरण महाकाट्य भी शान्त रत प्रधान काट्य है । उसमें भी मोक्ष पुरुषार्थ की प्रधानता है । कि उमापित एक आस्तिक और भक्त कि थे । इनके काट्य में कई सर्गों में ईशस्तुति की गई है । काट्य के प्रथम सर्ग में मोक्ष पुरुषार्थ के वर्णन की सूचना दी गई है - मोक्ष देने वाली सप्तपुरियों में मोक्षात्पादन में यह मुख्य द्वार है ।"

लौ किक सुर्खों का उपभोग कर मानव अलौ किक सुर्खों है मो क्षा की प्राप्ति यहाँ पर कर लेता है।

इस संसार के सभी जीव जब आप भगवान कृष्ण की दृष्टिट के लक्ष्य बन जाते हैं तब सभी बन्धनों से मुक्त हो जाते हैं अर्थात मोक्ष को प्राप्त कर लेते हैं।

[।] ध्वन्योलोक - चतुर्थ उद्योत

² पारिजातहरण महाकाच्य - प्रथम तर्ग - 38

³ पारिजातहरण महाकाच्य - प्रथम तर्ग - 39

पारिजात वृक्ष का आहरण :-

कवि उमापति का पारिजातहरण महाकाट्य लिखने का मुख्य उद्देशय यही पारिजात वृक्ष का आहरण ही था ।

भगवान कृष्ण ने अपने वाहन गरूड़ से उतरकर पुत्र और पत्नी सहित उस द्वानेन्द्र पारिजात की परिक्रमा की और हृदय से उसका अभिनन्दन किया तथा मन्त्र विधि से बुलाकर उस बुध को नन्दनवन से उखाड़ लिया। उस वृक्ष के साथ भगवान के हाथ में विभूति भी चली गई। उत्सव प्रदान करने वाला वह वृक्ष ही मानो चिड़िया की बोली में बोला – एक की जय और एक की पराजय हो रही है। आकि स्मक अद्भुत गरूड़ के उतरने पर विधित्र अनुधिन्तन लोगों में हुआ और प्रिय हिर भगवान कृष्ण का दर्शन भी हुआ। जितने नन्दन वन के अधिकारी थे वे सब स्तब्ध रह गए और जड़ के समान सब देखते रह गए।

उस का मरूप दिन्यतरू को अपने वाहन गरूड़ के पूठि पर चढ़ा कर कृष्ण ने कृतकृत्य होते हुये अपने शंख को बजाया और इन्द्र के दर्प के अपहार को जताने वाले तेज से युक्त शंख की ध्वनि को किया ।

"तङ्कामरूपमथ दिव्यतरूरववाह पृष्ठे अधिरो प्य कृतकृत्य इवेन्दिरेशः, दध्मौ द्वतं दरवरं त पुरन्दरस्य दर्पापहारपरिबुद्धतरस्वनं द्राक्।"

[।] पारिजातहरणं महाकाच्य - पंचदशं सर्ग - 75

² पारिजातहरण महाकांच्य - पंचदर्श सर्ग - 77

इस प्रकार पारिजातवृक्ष का आहरण किव का काट्य लिखेंने का यह मुख्य प्रयोजन सिद्ध होता है।

सत्यभामा के घर मैं पारिजातवृक्ष का आरोपण -x-x-x-x-x-x-x-x-x-x

युद्ध के अन्त में कृष्ण की विजय होती है और उनको पारिजातवृक्ष उपहार रूप में प्राप्त होता है । अन्त में सत्यभामा के घर में उन्होंने पारिजातवृक्ष को आरोपित कर दिया । कवि के काव्य लिखने का एक प्रयोजन यह भी था । अन्त में कवि उमापति का यह प्रयोजन सिद्ध होता है ।

भगवान् कृष्ण जब उपहार रूप में पारिजातवृक्ष को लेकर स्वर्ग से
अपने पुत्रों और प्रिय सत्यभामा के साथ द्वारिका पुरी लौटते हैं तब कृष्ण का
स्वागत करने के लिए वह द्वारिकापुरी बहुत उत्कंठित थी। दूर से ही शंख
बजने लगे। जैसे पूर्ण चन्द्रमा सागर की तरंगों से प्रत्युत्गमन करता है वैसे ही
पुरी के लोग प्रसन्नमुद्रा में प्रगट हो गए। कृष्ण के प्रत्युत्गमन के लिए आगे
बढ़ गए। तब सम्पूर्ण लोगों की प्रसन्नता को बढ़ाता हुआ परिवार की
श्रद्धा से दोया जाता हुआ सब प्रकार से बारी-बारी पूजा की गई।
द्वारिकापुरी के प्रत्येक सदन उस समय अतुलनीय सुगन्ध वाले तथा पानी से सिक्त
मार्ग वाले थे। प्रत्येक सदन के गवाक्ष्मावा और पुष्पों से युक्त थे। सभी
नगरवासी बहुत प्रसन्न थे। इस प्रकार प्रसन्न होते हुये कृष्ण धीरे-धीरे आगे
बढ़ गए।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - एक विंश तर्ग - 3

तभी नगरवाती अमरतर पारिजातवृक्ष को देखने के लिए उत्सुक होते हुए संघर्ष करने वाले सुगन्ध रूप से मोह में पड़ गए। तात्पर्य यह है कि उस समय भीड़ बहुत ज्यादा थी। इस प्रकार भगवान कृष्ण सत्यभामा के साथ उनके घर पहुँच गए। कृष्ण सत्यभामा से बोले – हे चन्द्रमा के समान मुख वाली। यह पारिजातवृक्ष श्रम से लाया गया है और यह देवता की भूमि का आभूष्ण तुम्हारी नगरी में लाया गया है। इस वृक्ष को आज तुम्हारे सदन के एक भाग में आरोपित करता है।

इति हि भगवती ता मन्त्रिता वल्लभन,
प्रणमपुल किता तत्पाणिपदमैन नीत्वा ।
निजवल निकेतत्यांगने मंगलेन
मंगलेन प्रियकरगकरा छ्जा रोपया मा तर म्ये ।

इत प्रकार कवि का काट्य लिखने का यह पारिजातवृक्ष का आरोपण यह प्रयोजन तिद्ध हुआ ।

दार्शनिक विचार-धारा :-

कवि उमापति विभिन्न दर्शनों में पण्डित थे। सांख्य का विशेष रूप से वर्णन स्थान-स्थान पर पारिजातहरण महाकाट्य में किया गया है। अतः स्थान-स्थान पर विभिन्न दर्शनों के माध्यम से कथानक का विस्तार करना कवि के लिये उचित ही है।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - एकविंश तर्ग - 12

² वारिजातहरण महाकाच्य - एकविंश सर्ग - 13

पारिजातहरण महाकाच्य में सांख्य के तीनों प्रमाणों हुप्रत्यक्ष, 2 अनुमान, आगमह का उल्लेख किया गया है तथा तीनों गुणों सत्व, रजस्, तमस् का भी उल्लेख किया गया है । सांख्य की वह त्रिगुणा त्मिका प्रकृति त्रिवेणी के रूप में प्रवाहित हो रही है ।

काट्य में प्रकृति पुरुष के संयोग के बारे में इस प्रकार कहा गया है, ऐसा ज्ञात होता है कि यह एक और संतार की प्रकृति जन्य मिलनता ही यमुना है और दूसरी ओर उस परम पुरुष की श्वेत विभूति ही गंगा है उसके पदारविन्द की प्रेमिका यह सरस्वती नामक इन दोनों को संहित कर एक में मिला रही है।

काट्य में रुक्मिणी को प्रधान मूल प्रकृति कहा गया है और नारायण की आठ पटरानियों को सांख्य शास्त्र प्रतिपादित आठ प्रकृतियों के समान कहा गया है।

"तांख्य शास्त्र वालों के मत ते अना दि तिद्ध वेतन निर्लिप्त पुरुष ईश्वर है जड़ा तिमका, त्रिगुणमयी उतकी प्रकृति ईश्वरीय वैतन्य ते विम्बित हो संतार की गुण दोष्मय सुष्टिट करती है। इतलिए निर्लिप्त वेतन पुरुष के अंशों ते उत्पन्न हम पुरुषों का उन स्त्रियों के अधीन विलास केवल बन्धन ही होता है क्यों कि शुद्ध ब्रह्म ही प्रकृति प्रतिच्छिन्न हो बद्ध जीव बन जाता है।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - चतुर्थ सर्ग - 43

² पारिजातहरण महाकाच्य - दशमतर्ग - 13

³ पारिजातहरण महाकाच्य - पंचम सर्ग - 45

⁴ पारिजातहरण महाकाच्य - पंचम सर्ग - 44

⁵ पारिजातहरण महाकाच्य - ठाँठ सर्ग - 45

⁶ पारिजातहरण महाकाच्य - स्कादशसर्ग-72

पारिजातहरण महाकाच्य - में न्याय वैशेषिक तिद्धान्तों का यत्र तत्र उल्लेख मिलता है। काच्य में कहा गया है कार्य बिना कारण नहीं हो सकते। कार्य से कारण का अनुमान होता है जैसे घड़े से कुम्हार का इस अनुमान से कारणी भूत आपकी चेतनात्मक सत्ता की प्रतीति कैसे मिटाई जा सकती है।

कारण व्यापार के पूर्व भी कार्य कारण में विद्यमान रहता है क्यों कि असत् या अविद्यमान होने पर कार्य की उत्पत्ति हो ही नहीं सकती । पारिजातहरण महाकाव्य में कहा गया है कि उपर्युक्त कारणों से किसी भी कार्य के कारणों की लघुता या गुरूता जीव के चित्तगत बोध का अनुसरण करती है।

वैदान्तियों के सिद्धान्त का भी उल्लेख पारिजातहरण महाकाच्य में किया गया है। काच्य में अद्वैतता को सिद्ध करने के लिए बनाया गया है कि अविचल प्रेम में अता त्विक बाहरी व्यवहारों का क्या सम्बन्ध है क्यों कि सत् ब्रह्म्म जो सबसे निरपेक्ष है उसका भी अद्वयत्वेन ज्ञान, अविधामुलक अज्ञान से अन्यथा भासमान, अतथ्य प्रपंचमें बाधित ज्ञान उत्तर अध्यवसाय, निश्चयात्मक ज्ञान में ही प्रमाणित होता है। तात्पर्य यह है कि जैसे रज्जु में सर्प ज्ञान भूमात्मक है इसी प्रकार अद्वितीय ब्रह्म्म में सारा द्वैत प्रपंच प्रमात्मक है। इसमें यदि रज्जु ज्ञान भी अद्वय ब्रह्म्म में असत्य है तो विद्यम उदाहरण है अन्यथा उसकी अद्वैतता कैसे सिद्ध होगी।

पारिजातहरण महाकाच्य में कहा गया है कि "पंचकोबात्मक ब्रह्म निरूपण में प्रतिपादित अन्नमयकोब को प्रयुर मात्रा में उत्पन्न करते हैं।

[।] पारिजातहरण महाकाट्य - पंचम सर्ग - 7

² पारिजातहरण महाकाच्य - दशम सर्ग - 64

³ पारिजातहरण महाकाच्य - सप्तम सर्ग - 38

⁴ पारिजातहरण महाकाच्य - दक्षम सर्ग - 20

वैदान्तियों को माया के कारण जगत् में बाहयतः भेद दिखाई पड़ता है जैसे एकाएक ज्ञात हो पड़ी समता के कारण रस्ती में उदित हुई सर्पबृद्धि किसी की भी हो सबके लिए भ्रान्ति ही है।

काट्य में कृष्ण को मायावी कहा गया कृष्ण की माया तो विख्यात ही है। कृष्ण को काट्य में एक स्थान पर निर्लेप अद्भैत बताया है। ऐसे चित्त स्वरूप परमात्मा में तो वास्तविक विशेष्ट्र विभाग ही नहीं है वह तो विलेप अद्भैत है। पारिजातहरण महाकाट्य में वेदान्त की पंचीकरण प्रक्रिया तथा उसके बाद होने वाली मौतिक सुष्टिट का भी वर्णन किया गया है।

पारिजातहरण महाकाच्य में तभी दर्शनों का वर्णन एक ही इलोक में करके किव उमापति ने अपने अद्भुत पाण्डित्य का प्रदर्शन किया है। काच्य के घठ तम्में रुक्मिणी को सांख्य मत वाले प्रकृति कहते हैं, वेदान्ती चिद्बहम्म बतलाते हैं, वही माया भी कहकर प्रपंचित करते हैं। मीमांसक तुम्हें क्रिया कहते हैं। योगदर्शन वाले तिद्धि मानते हैं। तार्किक बुद्धि इच्छादि ईश्वर के गुणों में गिनकर गुणात्मक बुद्धि रूप में देखते हैं। पौराणिक परमेश महिष्ठी पराम्बा कहते हैं।

इस प्रकार विभिन्न दर्शनों का वर्णन कवि की अद्भुत प्रतिमा का द्योतक है तथा साथ ही कथानक के विस्तार में भी सहायक हुए हैं।

[।] पारिजातहरण महाकाव्य - एका द्वासर्ग - 77

² पारिजातहरण महाकाच्य - द्वादश्मर्ग - 37

उ पारिजातहरण महाकाच्य - षठ तर्ग - 41

समय - समय पर ईश्वर का अवतार :-

कवि उमापति अवतार वाद को मानने वाले थे। विभिन्न पुराणों में भगवान के अवतारों का वर्णन मिलता है। समय समय पर जीवों के कष्टों के निवारण हेतु भगवान ने विभिन्न रूपों में इस धरती पर अवतार लिया है।

"भगवन । आपकी रेहिक लीला भी प्राकृतिक नियमों ते रहित
सर्वथा स्वतन्त्र है अतः आपका सर्वोत्तर प्रभुत्व लौकिक व्यवहारों में भी
छिप नहीं सकता । आपने मछली बनकर वेदों का उद्घार किया, कछुआ हो
पृथ्वी को पीठ पर धारण किया, सूकर हो पृथ्वी को पैलाया, बनकर
हिरण्यक शिपु जैसे अजेय दैत्य को मारा, कपट्वामन बन त्रिलोक को दो पग में
ही नाप लिया तपस्वी ब्राइमण का अवतार धारण कर बहुत बढ़े क्षत्रिय
राजमण्डल को प्रमाणित किया पिर स्वयं क्षत्रिय राम होकर अपने ही अवतार
उस परशुराम को पराजित कर ब्राइमण कुलोत्पन्न लोक विजयी दशमुख रावण
को समूल उखाइ डाला । आज इस अवतार में भी हाथ से उठार छत्र के समान
पर्वत श्रुगोवर्द्धन को धारण करने वाले, बचपन में आप प्रतीत करा चुके हैं कि आप
किसी प्राकृत नियम के पराधीन नहीं ।

अवतार रेशवर्य अत्यन्त अलक्ष्य नहीं रहा, इतने पर भी यदि जीव अपने उद्वारार्थ आपकी शरण न आएं तो आपका क्या दोष्ठं है। यही आप के अवतारों का रहत्य है। आप बड़े-बड़े लोकोत्तर बलवान् हिरण्याक्ष आदि दैत्यों को गर्वित कर निजी अवतारों से बेलते हुए उन्हें मिटा देते हैं।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - पंचम तर्ग - ।।

² पारिजातहरण महाकाच्य - पंचम तर्ग - 12, 13

उ पारिजातहरण महाकाच्य - पंचम सर्ग - 14

इन्द्र नारद से भगवान् कृष्ण के अवतारों के विषय में बताते हुये कहते हैं: — पहले ही पृथ्वी पर अवतार लेते समय सब देवताओं को मनुष्य यो नि में भेज दिया । पहले ही अवतार के समय जिस जननी के पेट में रहे उसे ही भानुमती का पिटारा बना रखा था पेट में आते ही इन्द्र जाल आरम्भ कर विया ।

ग्रिष कायप भगवान् कृष्ण की स्तुति करते हुये उनके अवतारों के बारे में बताते हुये कहते हैं :- आप कृष्ण ने अवतार लेकर देवताओं के दुःख को दूर किया।

गदा, पद्म, शंख, यक ते मीना दि अनेक अवतारों ते क़ीड़ा करने के लिए न दिखाई देने वाले भी दिखाई पड़ने वाले दूसर स्वरूप होते हुये भी ज्ञान के धाम के रूप में तुम १ कृष्ण१ की आत्मा होती है तुम्हें नमस्कार है। शेष्ट्रनाग के पन पर शयन है जिसका, अपनी नाभि से उत्पन्न ब्रहम्मा, ब्रहम्मा से उत्पन्न जो तेज है, वह तेज तुम्हारा १ भगवान कृष्ण का १ है, अनवस्था पृथ्वी में भुखमरी बाद आदि १ रूपी गृह से ग्रस्त भू भार की धारा के लिये कूर्मावतार धारण करने वाले माया के तुम आस्रय हो।

इस प्रकार भगवान् के अवतारों का वर्णन स्थान-स्थान पर इस परिजातहरण महाकाच्य में किव ने किया है। यह अवतारों के वर्णन कथानक के विकास में सहायक हुए हैं।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - एकाद्मां तर्ग - 47.48

² पारिजातहरण महाकाच्य - विंश सर्ग - 3

उ पारिजातहरण महाकाच्य - विंश तर्ग - 30,31

श्लेष की प्रधानता :-

काट्य में इलेख की प्रधानता है। काट्य के कई इलोक इलेख में लिखे गये हैं।

एक उदाहरण जिसमें युग्मक से शरद ऋतु और सत्यभामा का श्लेष्ठ किया गया है :-

" इस समय कोप रूप तम को हटाकर प्रसन्न हुई १ शरद अतु धने अन्धकार को हटाकर निर्मल हुई १ जड्डी भूत अभिप्रायों को स्वच्छ कर दिखाती हुई दुःखावस्था रूप पंक को सुखा देने से जिसके व्यवहार मार्ग शोभन हो गए हैं शरद अतु – बुरे ढंग का पंक सुखा देने से जिसके मार्ग शोभन हो गए हैं ऐसी खिलते कमल रूप मुख वाली सारसों हॉसों की बोल से रमणीय बिना श्रेणी के इधर उधर छिटके मेघों से शोभित होने वाली १ आशाओं में स्पुरण लिए १ शरद अतु दिशाओं में स्पुरित सत्ता वाली १ तुम सत्यभामाशसद अतु के समान हमें आक्रमण के लिये १ शरद निजय बाला के लिये १ प्रेरित कर रही हो ।

कवि की सूक्तियां :-

सूक्तियां कवि की प्रतिमा की धोतक होती हैं। सूक्तियों का वर्णन करके कवि ने अपनी विद्वता का परिचय दिया है।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - नवम सर्ग - 50.51

आमो दिनी सुन्दर गन्ध्वाली सरसभावों के विकास से रमणीय अथवा सरस स्वमाव तथा विकास से मनोहर, सन्दर्भ शुद्धि, पद विन्यास की स्वच्छता पक्ष में सम्यक् ग्रथन की सुरीति तथा पूर्ण रूपेण पुष्ट माधुर्यादि गुण, सूत्र से युक्त, प्रसाद वाली भली भाँति अलंकृत तथा संस्कार से शोभित माला के समान आपकी यह वाणी हृदय में रख लेने से किसकी श्री को नहीं बढ़ा देगी।

इस आपकी वाणी ने औ चित्य का त्याग कहीं नहीं किया है। व्याज रहित भाववाली तथा रमणीय पदिवन्यास वाली, आडम्बर शून्य सरस शब्दों वाली, आसिक्त आदि सामर्थ्य से शो भित उत्तम कुलीन अंगना की तरह यह किसको मान्य नहीं।

शुद्ध, दोष्टिहित, अभिध्य वाच्य अर्थ के प्रतिपादन में बलगी, प्रपंच विस्तार से रहित अत्यन्त निर्मल आन्तर बोध के रेशवर्य को पैलार हुई, बिना सन्देह के प्राप्त सिद्धि द्वारा शुभ लाभवाली यह वाणी वपस्विनी के समान है।

पारिजातहरण महाकाच्य में स्थान-स्थान पर अनेक सुभाषितों का प्रयोग हुआ है। यह कवि के काच्य लिखने की शैली है तथा ये कथानक के विस्तार में भी सहायक हुई हैं।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - दशम सर्ग - 57

² पारिजातहरण महाकाच्य - दशम सर्ग - 58

³ पारिजातहरण महाकाच्य - दशम तर्ग - 59

काट्य के चतुर्थ तर्ग में गृहस्थ धर्म का निरूपण किया गया है उत्तमें बताया गया है - अतिथि तेवा ते बढ़कर गृहस्थ का दूसरा धर्म ही नहीं है । कुटुम्बियों को महात्माओं के दर्शन ते बढ़कर दूसरी वस्तु कमनीय नहीं होती । प्रस्ताव के बिना सन्तों का अनुगृह किसी पर नहीं होता ।

अमृत लाभ को ही स्वर्ग की विशेष्ट्रता बताया गया है। इस काट्य में अनेकों अर्थान्तरन्यासों का प्रयोग सुभाषितों के रूप में हुआ है:-

पंख निकल आने पर धींटी कभी यन्द्रविम्ब को यूमती है। लक्ष्मी का यह स्वभाव होता है कि बड़े विज्ञों को भी हठात् मोह में डाल देती है।

यंगल मंतरों को देखकर यह अनुमान लगाया कि काली का नित वालों की रीति ही रस विषय में सदा उल्टी ही रहती है।

भगवान कुष्ण तत्यभामा को मनाते हुए कहते हैं - भना घर के 6 कोने में मिलते मधु के लिये दुर्गम गिरि शिखर पर चढ़ना किसको उचित है। अनावृष्टिट के कारण सूखते रस वाली खेती में जैसे इच्छानुसार पानी बरस गया। सत्यभामा लहलहा उठी। विद्या १ शास्त्र ज्ञान१ प्रभुता तथा उद्यम से नीतिज्ञों

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - चतुर्थ सर्ग - 104-107

² पारिजातहरण महाकाच्य - चतुर्थ तर्ग - 119

³ पारिजातहरण महाकाच्य - पंचम सर्ग - 22

⁴ पारिजातहरण महाकाच्य - पंचम सर्ग - 31

⁵ पारिजातहरण महाकाच्य - तप्तम तर्ग - 33

⁶ पारिजातहरण महाकाच्य - नवम सर्ग - 23

⁷ पारिजातहरण महाकाच्य - नवम सर्ग - 43

की सर्वतः कार्यसिद्धि मानी जाती है। तज्जनों की रक्षा करने वाली मानवता बुद्धि को भूषित करती है इस बुद्धि को पूर्ण रूप से परिशी लित शास्त्र शो भित करता है उस शास्त्र ज्ञान को अलंकृत करने वाला नय, नैतिक व्यवहार है। उसका भी भूषण उत्तम विवेक तथा विवेक को भी पराकृम रूप गुण सजाता है और उसे भी विनय शो भित करता है जिसका विचार स्त्री की सम्मति का अनुगामी है वह पुरष्ठा सिद्धि की अभिलाषा कैसे करता है क्या कभी अन्धकार के साथ दिन श्री रह सकती है। स्त्री से जित पुरुष्ठा का जनम व्यर्थ बताया गया है और तथ्य ज्ञान से गिरे हुये ऐसे पुरुष्ठा की पद पद में भ्रान्तियां होती हैं। जैसे पित्त बढ़ जाने से जिनकी आँखों में पियरी छा जाती है उसकी दृष्टिट में संसार ही पीला दिखाई देता है।

अपने अधिकार की तीमा के भीतर जो उद्योग करते हैं । वे लोग तो प्रांतनीय गुणों ते युक्त तिद्धियां प्राप्त करते हैं किन्तु जो अधिकार तीमा का लंधन करने वाले बुद्धिहीन हैं वे अर्थ तथा परमार्थ ते भी च्युत हो जाते हैं । पूर्ण प्रभुत्व प्राप्त करे भी जितने विवेक का अर्जन नहीं किया ऐसे पुरूष ते क्या लाभ है यदि तमुद्र की शारता नहीं निकली तो वह भरा रहकर भी क्या किया ।

इस प्रकार किव की यह सूक्तियां उनकी प्रतिमा की द्योतक सिद्ध होती है तथा साथ ही कथानक के विकास में भी सहायक हुई हैं।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - स्कादश सर्ग - 67,71

² पारिजातहरण महाकाच्य - एकादम सर्ग - 77

³ पारिजातहरण महाकाच्य - एकादशं सर्ग - 78

⁴ पारिजातहरण महाकाच्य - एकाद्मा सर्ग - 65.66

यथारथान प्रकृति वर्णन :-

पारिजातहरण महाकाच्य में यथास्थान प्रकृति वर्णन किया गया है। यथा स्थान प्रकृति का वर्णन काच्य के कथानक का विकास करने वाला होता है। यज्ञ के लिए रैवतक पर्वत पर जाने पूर्व प्रभात वर्णन बड़ा ही स्वाभाविक है। रैवतक की यात्रा में मध्य में समुद्र पड़ता है जिसका वर्णन करके किव ने अपनी अद्भुत प्रतिभा का प्रदर्शन किया है। अपनी मुस्कराती दृष्टिट पड़ने से बड़े आनन्द में उठती उत्ताल तरंग मालाओं से युक्त, उस अनन्त जलराशि वाले समुद्र को यह भगवान भी गिरि शिखर से सानन्द देखने हैं। उस समुद्र में कहीं लहरें उठ रही हैं, कहीं मछलियां तेर रही हैं, कहीं बडवानल उठ रहा है। गम्भीर ध्वनि के बहाने स्तृति पाठ करता समुद्र भगवान कृष्ण के प्रति साष्टांग प्रणत सा दिखाई दे रहा था।

यह तमुद्र त्वच्छन्द धीर एवं गम्भीर रूप में तारी वृथ्वी को चारों ओर ते घेरकर त्थित है। इत तमुद्र में रंग-बिरंगे रत्न है एवं जल - जन्तुओं ते युक्त है।

अपने वंश के मूल पुरुष चन्द्रमा तथा प्रिया लक्ष्मी के पिता होने ते उस पुरातन पयो निधि को भगवान ने अत्यधिक हर्ष से सम्मानित किया ।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - तृतीय सर्ग - 67

² पारिजातहरण महाकाच्य - तृतीय सर्ग - 79

³ पारिजातहरण महाकाच्य - चतुर्थ सर्ग - 7

पूर्वजों की पूजा प्राप्त करने वाला ये समुद्र विशेष रूप से श्लाधनीय है ।
पिथप्रसंग में प्रयागगंगा का तथा त्रिवेणी का वर्णन पारिजातहरण महाकाच्य में
बहुत ही सुन्दर दंग से किया गया है । कहीं तो मनोहर जल प्रवाह वाली
मन्दगित से बह रही थीं, कहीं इसकी गम्भीर ध्विन हो रही थीं, कहीं
उतावली सी लहरें उछाल रही थीं । मानो गंगा से मिलने के लिये अटूट
उत्साह भरती जा रही थीं जिस प्रयाग में यह देव नदी गंगा, किलन्द पुत्री
यमुना तथा इस सरस्वती से संगत हो त्रिवेणी रूप में अनन्त महातम्य युक्त अपूर्व
शोभा धारण कर रही हैं । नील तरंगों वाली यमुना, लालरंग वाली सरस्वती
तथा श्वेत वर्ण वाली गंगा सुशोभित हो रही है । इस त्रिवेणी की प्रभा के
समान कोई मिश्रित प्रभाजगत् में नहीं है ।

प्रकृति जन्य मिलनता को यमुना तथा परम पुरख की श्वेत विभूति को गंगा और इन दोनों को संहित करने वाली सरस्वती कही गई है। ये एक ही त्रिदेव की त्रिगुणात्मक शक्ति है जो त्रिवेणी के रूप में प्रवाहित हो रही है।

काव्य में विभिन्न रूपों से त्रिवेणी को नमस्कार करके उसके सौन्दर्य का वर्णन किया गया है — नेत्र के नीचे के भाग से श्वेत तथा एक देश से लाल, अमर के समान लील कनी निका पुतली वाली ईश्वर की दृष्टिट रूपिणी इस त्रिवेणी को नमस्कार है। कस्तूरी मिले केशर के पंक रूप अंगराग से भीगा अभिका पयोधर पट के समान शोभमान इसकी में्श्रनारद्श्वन्दना करता हूं।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - पंचम तर्ग - 38

² पारिजातहरण महाकाच्य - पंचम तर्ग - 41

³ पारिजातहरण महाकाच्य - तृतीय सर्ग - 49,50

म पारिजातहरण महाकोच्य - तृतीय सर्ग - 58

मगवान कृष्ण की उपमा त्रिवेणी से करते हैं - मगवान के लाल औं ठ जैसे सरस्वती हो उनके दांत जैसे गंगा हो तथा उनका नीलवर्ण शरीर जैसे यमुना हो । यह त्रिवेणी मानो तीनों वेदों की त्रयी है । इससे पृथक कोई पावन वस्तु नहीं है तथा इससे बढ़कर अपूर्व रूप वाली कोई वस्तु नहीं हैं । इसके अतिरिक्त कोई मनोहारी नहीं है ।

पारिजातहरण महाकाच्य में त्रिवेणी का प्राकृतिक वर्णन भी किया गया है - ये त्रिवेणी कहीं उज्जवन का नित से विनसित, कहीं मूंगे के समान का नितवानी, कहीं तरण तमान की सी नीन शोभा युक्त, खेनते हंसों से शोभित है तथा देदी रेखा वाने शैमान जानों से जिला अन्तर्जन राशि वानी है।

सत्यभामा को साथ लिए भगवान कृष्ण पर्वत पर चढ़ते हैं, उस समय किया ने और शरद श्रतु का अत्यन्त ही मनोहारी वर्णन किया है। किव का यह वर्णन बड़ा ही स्वाभाविक प्रतीत होता है। किव ने वस्तुतः यह वर्णन घटना का विस्तार करने के लिये ही किया है।

किय ने शरद्शतु के वर्णन में सत्यभामा तथा शरदशतु का शलेख किया
है - हे प्रिये । इस समय कीप रूप तम को हटाकर हुंधने अन्थकार को हटाकर है
प्रसन्न हुई है निर्मल हुई है र आशाओं में विस्पुरण लिए है दिशाओं में स्फुरित
सत्ता वाली हैतुमहें सत्यमामा है शरदशतु के समान हमें आक्रमण विजय यात्रा के
लिए प्रेरित कर रही हो ।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - तृतीय सर्ग - 58

² पारिजातहरण महाकाच्य - पंचम सर्ग - 62

उ पारिजातहरण महाकाव्य - नवम तर्ग - 51

मगवान कृष्ण सत्यभामा को शरद्यत् की विशेषतारं बताते हुए कहते हैं— यह शरद की स्वच्छ जल वाहिनी नदी एक्लरी मुक्तामाल का अनुकरण कर रही है। शवेत अम्बर वाली, हंसों की गति संचार से प्रसन्न श्रंगार हार के पृष्प समुह से मनोहर छटा वाली शरद शतु उदित हो रही है। रंग बिरंग कमल पृष्पों से सजा कहीं जिसमें चमकती मछ लियाँ उछल रही हैं। कहीं रंग बिरंग जल विंहगम पत्ते झूल रहे हैं। इस प्रकार शरद्यत् की विशेषतारं लिए सरोवर सुशो मित हो रहा है। प्रत्येक सरोवरों में खिले हुये कमल रूप सजार आसनों पर मानो शरद्यत् के गुणों को देखने के लिये परम शोभा का समाज निकल कर बैठा हुआ है।

किव का बसन्त वर्णन बहुत ही स्वामाविक और मनोहर है। बसन्त
भी पृथ्वी में रमण करने के लिए भगवान विष्णु के साथ हो गया। भगवान
कृष्ण ने इस पृथ्वी लोक में अतुराज बसन्त के लिए पूरे लोक पर अधिकार करके
विरसों से रमणीय जो मानव की चेतना है उसको संचालित कर दिया। बसन्त
अतु में सब लोगों ने पीताम्बर धारण कर लिया वृक्ष, तस्त्रताएं तथा पत्ते झड़ने
लगे सुशोभित होने वाले वन के नए रस-भूत में कलियां प्रादुर्भूत हो गयी। नए
नए किस्त्यों से युक्त वन हो गए। इस प्रकार यह अतुराज बसन्त पृथ्वी पर
धीरे-धीरे आ गया। इस अतुराज के जन्म को मौरों की मधुर वाणी के
द्वारा गया और प्रिय कोयल की वचनाली द्वारा गया गया। अपने मित्र
के पास आने से प्रसन्न कामदेव अपने मित्र बसन्त के स्वागत के लिये चर और
अचर सबमें व्याप्त हो गया।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - दाम तर्ग - 15

² पारिजातहरण महाकाच्य - एकविंश सर्ग - 22

³ पारिजातहरण महाकाट्य - एकविंश तर्ग - 26

उत्त मधुमात वतन्त ने जड़ और येतन तभी में रित की धारण किया।
वतन्त की परिचय्यां की पूर्ति के लिए तभी लोकों में सहचरण के लिए वह
कमदेव व्याप्त हो गया और विरही लोगों में क्रूद्र होकर विरहियां के हृद्य
को मेदकर मानों खिले पलाशों को हृद्य की पंखुड़ियों को मेद दिया। अव्यक्त
मनों ध्विन ते युक्त शीतल सुप्रभात में मलया निल के बहते हुये अलताई हुई नृत्य
करते हुये प्रभात में चुद्द करने वाली चुटिकयों ते खिलती हो तमस्त पूलों के
उत्सव की शोभा अतुराज के ताथ रमण कर रही है। यह वतन्त अतु तम्बन्धी
अपनी क्रियाओं को दिखाता हुआ अपने रूप को विस्तृत कर रहा है। इसकी
तुलना किती ते नहीं हो तकती है। अपने अपने स्वभाव के अनुतार बूढ़े, युवक,
कुमार तभी कामदेव की आराधना कर रहे हैं। वह कल्पवृक्ष भी बतन्त को
देखकर अपनी दिव्यता ते उल्लितत हो गया और बढ़े आनन्द वाली तारी
पृथ्वी को उल्लितत करने लगा। इस प्रकार यह मधुमास का मारूत विहरण
करता हुआ लोगों के घर के भीतर बाहर नर्म सचिव का काम करने लगा।

व्रज में भगवान्-कृष्ण के बाल्यकाल में जो रतगोष्ठी शरदशत में हुई थी, वह रतगोष्ठि मधुमात में आज फिर होने लगी भगवान ने पीताम्बर धारण करके रिकमणी आदि तिख्यों के ताथ रमण किया । रात शुरू होने पर मधुमात ने तभी तिथितियाँ अनुकूल बना दीं। औरों ने मधुर गुंजन प्रारम्भ कर दिया । पक्षी भी अपनी उँची धीमी मीठी - मीठी ध्वनियों ते गाने लगे। जलाश्य भी प्रतन्तता के उदय को प्रदर्शित करता हुआ खुश होकर नाचने लगा। भगवान कृष्ण ने रात शुरू करके बंशी को अपने अधर में धारण किया। उत बांतुरी ने मंगलाचरण कानान्दी गीत गाना शुरू कर दिया।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - एकविंश सर्ग - 30

² पारिजातहरण महाकाट्य - एकविंश सर्ग - 32

इस प्रकार त्रिमंगी की हिथित में खड़े होकर, पाँच तक लटकती पूर्लों से धिरी माला को धारण करके मयूर के पूंछों के रत्नों से तिर को विमूष्टित करके मगवान कृष्टण ने काम को प्रसन्न करने की जितनी वेष्टाएं हैं सब प्रारम्भ कर दी। वह सम्पूर्ण जगत् मगवान की बांसुरी में डूब कर साधारणीकरण होकर सब एक रस हो गया।

प्रभात-वर्णन

काट्य के द्वितीय तर्ग में महाकाट्यों की प्रचलित परम्परा के अनुसार प्रभात वर्णन किया गया है। रात्रि वर्णन से प्रारम्भ कर दूरारूद तूर्य तक का कृमिक वर्णन इस काट्य में किया गया है।

रनिवमणी देवी और भगवान कृष्ण ने पृथक-पृथक उत्कंठा पूर्वक ते। विचार करते हुये ही रात्रि व्यतीत कर दी। उत तमय रात्रि गर्भवती स्त्री के तमान प्रतीत होती थी उतने अपने भीतर बालरूपी तूर्य को धारण कर लिया था। वह शीघ्र ही प्रतव करना चाहती थी। उत्तकी यह अवस्था देखकर मानों निशापति चन्द्रमा ने अपनी विलास वासना को विरत करके उसे सहवास से मुक्त कर दिया। अर्थात प्रमात होने वाली थी।

प्रवीण वैता लिक मण्डल उन्हें जगाने के लिये गीत गाने लगा । प्रभात के कारण दीप की प्रभा मलिन हो रही है । दिजगण वैदिक मंगलपाठ कर रहे हैं एवं दिंगनारं लाल वस्त्रों से रंजित हुई उक्त महोत्सव के पुनीत क्षण को सूचित कर रही हैं।

[।] पारिजातहरण महाकाट्य - एकविश सर्ग - 60

² पारिजातहरण महाकाच्य- द्वितीय तर्ग - 4, 5

रात्रिका मुख उज्जवल होकर शोभायमान हो गया और मनोहर सुँगन्ध पैनाती हुई गर्व लिए वायुबह रही है। तम से आवृत्त चित्त वाले जीवन अभी अभी बन्धन से छूटकर निश्चिक विहर रहे हैं। प्रातः का समय हो गया है अतः हे भगवन् मोहनिद्रा त्यागकर जागो । आपके प्रताप के साथ स्पर्दा करने वाला भानु मण्डल जब उग रहा है तब अवश्य उठेरी, ऐसा जान आपके मुख चन्द्र से डरा चन्द्रमा अभी अस्त हो रहा है। और मोह उत्पन्न कर देने वाले धने अन्धकार को त्वाभाविक बाल चापल्य से मारकर उसके खून ते लथपथ हुआ यह बाल सूर्य आकाश के भीतर ते ही लालिमा लिए चमक रहा है । हे देव: अग्नि को दीष्त करने वाली ऋषाओं को पढ़ते हुये अग्निहोत्र ब्राह्म्मणमण हवन कर रहे हैं और प्राभातिक वायु का संचार प्रत्येक स्थानों में हो गया है। अतः अब आप उठे। पिक्ष्मों के कलकल से बच्चे जाग गए है। प्रातः काल की तमुपिस्थिति में गौरं भी उठकर खड़ी हो गई हैं और रंभाती हुई अपने बछ्ड़ों को दूध पिलाने के उतावलेपन को प्रदर्शित कर रही है इसलिए हे कमलनयन आपके नयन कमलों को भी विकसित हो जाना चाहिए। आप जाकर अपने प्रताप में तुर्य का अभिमान और चन्द्रमा के अभाव से होने वनी क्षाति को दूर करें। भगवान विधिवशात् अपने प्रियतम चन्द्रमा के अस्त होने पर यह वसुन्धरा कुछ काल के लिये अत्यन्त विकल सी दिखाई देगी, अतः अभी अपने मुख्यन्द्र के प्रदर्शन से उसे हर्ष युक्त करें। देखिए वह रात प्रातःकाल ओत के बहाने आंतू बहाती हुई चली जाती है अथवा यों कहिए समय आने पर किसका दूर मिमान नष्ट नहीं होता । हे मुरमथन । तोने के पिंजड़े में मंजुल मूर्तिवाली सारिका वेद मार्ग में प्रशंसित, पद पद में मनोहर मंगलमय आप

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - द्वितीय सर्ग - 36

² पारिजातहरण महाकाच्य - द्वितीय सर्ग - 39

³ पारिजातहरण महाकाव्य -वितीय सर्ग - 55

का नाम रट रही है। भगवान कृष्ण ने इस प्रकार पिक्षा के कलकल के पीछे बन्दियों से कहे उद्याः काल के विकास को सुनकर गले से लटकती वनमाला के बहाने गलबहियां डाले हुई मर्दित शरीरवाली शक्या को मानो प्रियतम प्रीतियुक्त प्रेयसी को जैसे छोड़ देता है वैसे ही छोड़ दिया। इस प्रकार विभिन्न अलंकारों के माध्यम से किव ने प्रभात का कित्र सा अंकित कर दिया है। इस प्रकार प्रभात वर्णन किव ने किव परम्परावश तथा कथानक के विस्तार के लिए किया है तथा साथ ही अपने काव्य के सौन्दर्य को बद्दाने के लिए किया है।

सन्ध्या -वर्णन

काट्य के तेरहवें तर्ग में तन्थ्या का बहुत ही मनोहारी वर्णन किया गया है। यह रचना काट्य परम्परा के आधार पर की गई है। तन्थ्या, प्रदोष, रजनी, इन्दु आदि का यथावतर वर्णन कभी-कभी काट्य तौन्दर्य के लिये आवश्यक होता है।

ध्यान के तमा प्त हो जाने पर तथा तन्ध्या हो जाने पर गिरि शिखर पर निविष्ट तथा चन्द्रशाला पर आश्रित प्राक् दिशा में चन्द्रमा उदित होते हुये तथा पिश्चम दिशा में सूर्य अस्त होते हुये एक साथ रक्त वर्ण के आकाश में दिखाई पड़े। पूर्व दिशा में चन्द्रमा के उदित हो जाने पर और पिश्चम दिशा में दिन के दल जाने पर आकाश रक्त वर्ण का हो गया है और वह दोनों ऐसे लग रहे हैं जैसे मणि के बने हुये पुटमाण्ड के दो खण्ड हो गये हों और पूट जाने पर कामदेव की स्त्री रित के आभूष्मण का तिन्दूर का प्रवाह वैंल गया हो।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - दितीय सर्ग - 58

² पारिजातहरण महाकाच्य - द्वितीय सर्ग - 59

उ पारिजातहरण महाकाच्य - त्रयोद्धा सर्ग - ।

दिन के दल जाने पर सूर्य की किरणों के चले जाने पर आकाश के बहुत
अधिक अन्धकार से ग्रिसत होने पर सम्पूर्ण लोक के द्वारा अस्पृश्य किन्तु आलोक्य
रूप अपनी रोघा सहित पीड़ा के कारण उत्पन्न रक्त वर्ण का दिखाई दे रहा है।
रात्रि में चन्द्रमा के उठने पर मानो तारों का हार पहने हुये बहुत अधिक रक्त
वर्ण के वस्त्र से अंग को दके हुये तथा दके हुये मुख की कान्ति वाली सन्ध्या
मानो सूर्य का अनुसरण कर रही है। पश्चिम दिशा में सूर्य के नाचते हुये
गिराती हुई पृथ्वी पर चंचल बाल सन्ध्या अनुराग से विहार करती है।

इस प्रकार विभिन्न अनंकारों के माध्यम से कवि ने सन्ध्या का चित्र साउ प्थित करके अपने अद्भुत प्रतिभा का प्रदर्शन किया है। यह वर्णन कवि परम्परावश किया गया है तथा साथ ही यह कथानक के विस्तार में सहायक है और काट्य के सौन्दर्य को बदाने वाला है।

मानव और प्रकृति का जन्म से ही सम्बन्ध होता है, मनुष्य प्रकृति में ही जन्म लेता है उसी में बद़ता है, अतः प्रकृति का मानव से अदूट सम्बन्ध रहा है, इसलिये प्रत्येक कवि का काट्य प्रकृति वर्णन से अधूता नहीं रहता है। प्रकृति वर्णन में सन्ध्या, प्रमात, समुद्र, नदी तथा अतुओं का वर्णन आता है।

पारिजातहरण महाकाट्य में यथास्थान सन्ध्या, प्रभात, समुद्र, त्रिवेणी, शरद्शतु तथा बसन्त श्रतु का वर्णन मिलता है,। निश्चय ही किव ने ये वर्णन कथानक का विस्तार करने के लिये तथा महाकाट्य की परम्परा के अनुसार तथा अपने काट्य सौन्दर्य को बढ़ाने के लिये किया है।

⁻⁻⁰⁻⁻⁻

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - त्रयोद्या तर्ग - 10

चतुर्थ अध्याय ====== पारिजातहरण महाकाच्य में कवि उमापति दिवेदी का शास्त्रीय पाणिडत्य "

व्युत्पत्ति तथा अभ्यास द्वारा परिष्कृत प्रतिभा काच्य समुद्रम्व का हेतु मानी गई है। इसी व्युत्पत्ति को क्षेमेन्द्र ने "परिचय, कहा है, जिसके बिना कोरा पथ-निर्माता विदग्ध-गोष्ठी में उतना ही अह्न प्रतीत होता है, जितना कोई नवागन्तुक किसी बड़े नगर की बीहड़ गली में। प्रतिभा और व्युत्पत्ति के इस मणिकांच्यन संयोग से ऐसे काव्यलंकार की रचना होती है जो सदा विदग्धकण्ठाभरण बनता है। व्युत्पत्ति के अन्तर्गत विश्व का सारा ज्ञान भण्डार आ जाता है। विभिन्न आयार्यों ने परिगणन के लिए कुछ प्रधान विभिन्न विद्याओं का उल्लेख कर दिया है।

राजरेखर ने का व्यार्थमों नि प्रकरण में श्रुति, स्मृति, इतिहास, पुराण, प्रमाण-विद्या, समय-विद्या, राज-सिद्धान्त्रयी, लोक-विरचना, प्रकीर्णक, उचित संयोग, यो कृ संयोग, उत्पाद्य संयोग, तथा संयोग विकरण इन सोलह का परिगणन किया है। देमेन्द्र ने तर्क, व्याकरण, भरत चाणक्य, वात्स्यायन, रामायण, मोक्षोपाय, आत्मज्ञान, धातुवाद, रत्नपरीक्षा, ज्यौतिष्ठ, धनुर्वेद, गजतुरगपुरष्ठ-लक्षण, धूत, इन्द्रजाल तथा अन्य विविध विष्यों के परिचय को कवि साम्राज्य का द्योतक बताया है। उसी प्रकार मम्मट ने स्थावर जंगात्मक लोकवृत, छन्द, व्याकरण, अभिधानकोश, कला चतुर्वर्ग, गजतुरग बहुगा दिलक्षण, काव्य तथा इतिहास आदि की व्युत्पत्ति को काव्य हेतु र्मून निपुणता के अन्तर्गत गिनाया है।

व्युत्पत्तयभ्यास संस्कृता प्रतिभास्यहेतुः -काव्यानुशासन, प्रथम अध्याय
 कविकण्ठाभरण पंचमसन्धि -आचार्य क्षेमेन्द्र

उ काट्यमीमांता अध्याय - 8

⁴ कविकण्ठाभरण पंचमतन्धि

⁵ काट्यप्रकाश- प्रथम उल्लास

इसी प्रकार वाग्मट § 15 वीं शताब्दी § ने स्थावर जंगम रूप लोक में तथा लक्ष्ण साहित्य छन्दोलंकार श्रुति-स्मृति पुरोणेतिहासागम नाट्या मिधान कोष्य कामार्थ योगादि शास्त्रों में निपुणता को च्युत्पत्ति माना है । किन्तु वह केवल लाक्षा णिक ही कही जा सकती है, वास्तव में विज्ञान की इयत्ता निर्धारित ही नहीं की जा सकती । अपने क्षेत्र की इस वृहत्ता के कारण ही कवि को ब्रह्म के पर्यायावाची कवि की उपाधि मिली ।

पारिजातहरण महाकाच्य में उपलब्ध शास्त्रीय - संकेतों से किं के ज्ञान-भण्डार को अनुमान किया जा सकता है। किं के ज्ञान की सीमा विस्तृत है। इन शास्त्रों में उनका गम्भीर प्रवेश है। व्याकरण शास्त्र, काव्य शास्त्र, कामशास्त्र, श्रुतिज्ञान, पुराणशास्त्र-ज्ञान दर्शन-शास्त्र, धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र, चित्रात्मक ज्ञान, पाक-विज्ञान, ज्योतिश्वशास्त्र, पिक्षात्मक ज्ञान, पाक-विज्ञान, ज्योतिश्वशास्त्र, पिक्षात्मक ज्ञान, पाक-विज्ञान, ज्योतिश्वशास्त्र, पिक्षात्मक ज्ञान इस महाकाच्य में प्राप्त हैं।

।. व्याकरणं शास्त्र ज्ञान :-

कित ने अपने पारिजातहरण महाकाट्य की रचना जनमानत के विनोद के लिए की है। अतः उनके इस काट्य में माव-पक्ष की, कलापक्ष की अपेक्षा प्रधानता दृष्टिटगोचर होती है। ट्याकरण शास्त्र की ने में उनकी जहत अधिक प्रौदता नहीं प्राप्त हुई है, फिर भी काट्य में विभिन्न ज्वारों का प्रयोग, विभिन्न ज्वारों का प्रयोग, प्रत्यय का प्रयोग, उपसर्ग का प्रयोग आदि उनके ट्याकरण-शास्त्र ज्ञान का परिचय देता है। कुछ उदाहरण इस तथ्य को प्रमाणित करने में पर्याप्त होंगे।

यथा-शर्मा र्षा रिजातहरण 2-1 र्, मुमुद्र र्2-2 र् अधिमसार रू3-3 र यया रूउ-4, 5, 10 रूँ, उवाह रूउ-12 र वकार रूउ-14, 6-1 रूँ, मेने रू४-7 रूँ अरेमे रू४-13 र आहु रूँ 5-15 रूँ, रेले रूँ 6-12 रूँ, प्राप रूँ 7-1 रूँ, ददर्श रूँ 8-2 रूँ, जगाम रूँ 8-1 रूँ, जगाद रूँ 9-1 रूँ, प्रतिपेदे रूँ।।-1 रूँ, विललीं रूँ।।-2 रूँ, श्रमुमे रूँ 12-2 रूँ आदि लिंद लकार में प्रयुक्त शब्द है। लिंद लकार का प्रयोग काट्य में अधिक किया गया है। इसके अतिरिक्त लद लकार लंखनकार तथा विधिलंग, लूद लकार का प्रयोग भी हुआ है।

दधाति $\S1-6\S$, अनुयाति $\S1-10\S$, लिम्पति $\S1-11\S$, ज्वलन्ति $\S1-14\S$, नृत्यति $\S1-17\S$, सूचयतीति $\S6-10\S$, स्फाराति – $\S8-12\S$, तृय्यति $\S10-78\S$, क्षरन्ति $\S10-61\S$, आदि लट्लकार में प्रयुक्त शब्द हैं।

अमिलत् ११-११, अवीवहत् १3-6१, अदर्शमत् १4-12१, निरची-रवनत् १4-15१, अममत् १७-३१, न्यवारयत् १७-13१ आदि लङ्लकार में प्रयुक्त शब्द है। पृच्छेत् १८-३११, चेत् १९-4१, स्मरेत् १९-6१ आदि विधि लिङ्गं. में प्रयुक्त शब्द है दास्यति ११०-७०१ आदि लृद्-लकार में प्रयुक्त शब्द हैं।

इसके अतिरिक्त "तः" प्रत्यय से बनी धातुओं का भी प्रयोग इस पारिजातहरण महाकाच्य में हुआ है। आस्थितः §3-1§, प्रमणिवता §5-11§, यतः §7-34§, प्रतिबिम्बितं ,§6-9 हे प्रायुद् त्तं §6-11 हे प्रवेपितः §8-4 हे दृष्टिटम् §10-1 हे आदि "तः" प्रत्यय से बने शब्द है। विधित्य ११-५१, अभिनूच्य १२=८१, निवृत्य १३-३३१, लक्ष्यीकृत्य १४-३८१, निश्चम्य १५-११, व्याहृत्य १५-५६१, आदि ल्यप् प्रत्यय से बने शब्द हैं। दथानः ११-२५१, उद्यमानः १२-५६१ आदि शत्-शानच् प्रत्यय से बने शब्दों का प्रयोग हुआ है स्खनन्तीः १३-७११, वीजयन्ती १४-७११, प्रतारयन्ती १५-१०१ आदि शतृ प्रत्यय से बने शब्दों का स्त्री लिड्ड. प्रयोग भी हुआ है। शलाध्मीयः १४-८१, धमापणीयं १५-२५१ आदि अनीयर् प्रत्य से बने शब्दों का प्रयोग हुआ है। शलाध्मीयः १४-८१, धमापणीयं १५-२५१ आदि अनीयर् प्रत्य से बने शब्दों का प्रयोग हुआ है। कार्यति ११०-६३१, अतिष्ठिपत् १४-१८१, आदि प्ररणार्थक धातुओं का भी प्रयोग हुआ है।

उपसर्गयुक्त धातुओं का भी प्रयोग हुआ है यथा -अनुयाति हू।-10हू, उपैति हूँ।-१हूँ, न्यवारयत् हूँ7-13हूँ, प्रवेपितः हूँ8-4हूँ, अभ्युद्ता, अधिगम्य-हूँ9-2हूँ, प्रतिपेदे हूँ।।-।हूँ, विललंधे हूँ।।-2हूँ, आचरन्ति हूँ।0-4हूँ आदि ।

तदित प्रत्यय का भी प्रयोग इस काट्य में हुआ है । सौहार्द - § 10-43 §, औदार्य, माधुर्य § 10-94 § मौ क्तिक § 11-16 §, स्त्रैणता § 11-83 §, कौ शिकता § 11-92 § औपा धिक § 6-31 §, भीष्मकसुता § 6-15 §, कार्मुक § 17-13 § आदि तदित प्रत्यय प्रयोग है ।

कर्मवाच्य प्रयोग भी इस काव्य में हुआ है मन्यते १1-5१, समाश्रयन्तें-१1-16१, रमन्ते १10-4१ आदि कर्मवाच्य प्रयोग भी हुआ है ।

पारिजातहरण महाकाच्य के पंचम सर्ग में त्रिवेणी का वर्णन सातों विभिक्तियों में कवि ने किया है। "प्रयागमुवि" सप्तमी में, "अतिसिता" प्रथमा में, "नीरै: " तृतीया में, "तत्या: " ब्रव्हा में तथा "तरस्वती " प्रथमा में, "का मधेनुस" दितीया में, "यत्यै चतुर्थी में प्रयोग किए गए शब्द हैं।

१२१ काट्य शास्त्र ज्ञान :-

पारिजातहरण महाकाट्य की रचना किव ने जगत् की पित्तता के लिए तथा जन-मानस के विनोद के लिए की है। अतः इनके काट्य की भाषा सरल और परिमार्जित है तथा जनमानस की भाषा है। इनके काट्य की भाषा दुरूह नहीं है, नहीं लम्बे-लम्बे समार्शों का प्रयोग ही हुआ है।

कवि उमापति दिवेदी के काट्यशास्त्रीय ज्ञान का परिचय निम्न शलोक से स्पष्ट है -

आमोदिनी §सर्वथाप्रसन्न करने वाली § किंच सुन्दर गन्धवाली सरसमावों के विकास से रमणीय अथवा सरस स्वभाव तथा विकाश §दी हिंत § से मनोहर, सन्दर्भ शुद्धि, पदविन्यास को स्वच्छता पक्ष में सम्यक् ग्रथन की सुरीति तथा पूर्ण रूपेण पुष्ट §माधुरयादि § गुण किंचसूत्र से मुक्त, प्रसादवाली. मनी भांति अलंकृत तथा संस्कार से शोभित माला के समान आपकी यह वाणी हृद्य में रख लेने से किसकी श्री को नहीं बद्दा देगी।

[।] पारिजातहरण महाकाट्य - पंचमतर्ग - 42, 57

इस आपकी वाणी ने औ चित्य का त्याग कहीं नहीं किया है। ट्याज रहित भाववाली हुशुद्धा भिग्नायहुँ तथा रमणीय पद विन्यास वाली, आडम्बर शून्य सरस शब्दों वाली आस कित आदि सामर्थ्य से शो भित उत्तम कुलीन अंगना की तरह यह किसको मान्य नहीं हैं।

शुद्ध, दोधरहित है निरंजन हरूप, अभिनेश वाच्य अर्थ हेब्रहम्म के प्रतिपादन हैउपासना है में लगी, प्रपंच विस्तार हैभौतिक जात है से रहित अत्यन्त निर्मल आन्तर हैआध्यात्मिक है बोध हैज्ञान है के रेश्चर्य को पैलार हुई, बिना सन्देह के प्राप्त सिद्धि द्वारा शुम लाभ वाली तपस्विनी के समान आपकी वाणी हमारे पुण्य से ही हमें अनुगृहीत कर रही है।

वैसे यह तो मगवान् कृष्ण ने नारद से अपनी कार्य सिद्धि के लिए उपपति १ युक्ति १ से पूर्ण पद ये वचन कहे थे परन्तु इससे किव के पद विन्यास, माध्यपादि गुण, सरसगब्द आदि के विषय में संकेत हैं। किव की उक्ति में तथा पदों में प्रसाद है। किव की उचित ब्याज रहित भाववाली अर्थात युद्धा मिप्राय वाली है तथा रमणीयपद विन्यास वाली है, उत्तम आडम्बर गून्य सरस शब्दों वाली है तथा उत्तम कृलीन अंगना की तरह हैं एवं गुद्ध दोष्टरहित है। प्रपंच विस्तार १ मौतिक जगत्। से रहित, अत्यन्त निर्मल आध्यात्मिक बोध वाली है। बिना सन्देह के प्राप्त सिद्धि द्वारा भूमनाभ वाली तपस्विनी के समान है। इनकी उक्ति में सहायक प्रसंग द्वारा मुख्य अभिध्य का तिरोभाव नहीं है।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - दशम तर्ग - 58

² पारिजातहरण महाकाच्य - दशम सर्ग - 59

अभिधा, लक्ष्मा, व्यंजना-ये तीन शक्तियां शब्द की मानी जाती है। इनसे क्रमशः वाच्य १ संकेतित१ लक्ष्य और व्यंग्य अर्थ का बोध होता है। इनमें व्यंजना का उपयोग काव्य में होता है। अभिधा से लोक प्रसिद्ध मुख्य अर्थ का बोध होता है इसलिए वाच्यार्थ को भी मुख्यार्थ कहते हैं लेकिन कभी-कभी ऐसा ज्ञात होता है कि वाक्य में मुख्यार्थ का अन्वय १ सम्बन्ध १ ठीक-ठीक नहीं बैठता तब लक्ष्मा का सहारा लेना पड़ता है।

जब अमिधा से प्रतीत होने वाले मुख्यार्थ का बोध हो अर्थात वाक्य में उसकी संगति न बैठे तो किसी विशेष्ठा प्रयोजन को सूचित करने के लिए मुख्यार्थ से सम्बन्ध रखने वाले किसी अन्य अर्थ की प्रतीति जिस शक्ति के द्वारा होती है उसे लक्ष्णा कहते हैं।

मम्मद का वाच्याद्यस्तदर्थाः स्युः यह कथन वाच्य लक्ष्य और व्यंग्यरूप अर्थों की काव्यकला के "साधन" और "माध्यम" दोनों रूपों में प्रतिपादित करने के लिए है। वाच्य लक्ष्य व्यंग्य-रूप अर्थ काव्यरूप कला निर्माण के माध्यम हैं। मम्मद ने कहा है "वाच्य लक्ष्य और व्यंग्यरूप अर्थों का उपयोग कविजन जिस्तालए किया करते हैं, वह उनका अनुमन प्रकाशन है।

ध्वनिवाद के अनुसार भी शब्द की तीनों उपाधियां सम्भव है -वाचकता, लाक्षणिकता, व्यंजकता । आचार्य मम्मट ने शब्दों का यह श्रेणी विभाग किया --

[।] ता हित्यदर्पण - 2/5

² काट्यप्रकाश - 2 य उल्लास

उ काट्य प्रकाश - २ य उल्लास

त्यादायको लाधणिकः शब्दाङ्त्र व्यंजकित्रधाः

काट्य में प्रयुक्त शब्द त्रिविध अर्थात "वाचक" और लाक्षणिकता और व्यंजक हुआ करते हैं। इसका यही अभिष्राय लिया कि काट्य रचना भने ही लोक शब्दों से रचे हों किन्तु इन्हीं लोकशब्दों से रचे गए काक्य में काट्य की रूपरेखा तभी झलक सकती है जब कि कोई भी शब्द ऐसा प्रमुक्त हो जाय जिसमें किव की हृद्य तन्त्री झड़ कृत हो उठे और जिसका संगीत सहृद्य-हृद्य को स्पर्श कर जाय।

पारिजातहरण महाकाच्य में लक्ष्य और व्यंग्य अर्थ का निरूपण हुआ है।

सामने बैठे भगवान् कृष्ण के वक्ष स्थानिश्वत श्वेत कौ स्तुभमणिहप दर्पण में, उनकी हरी का नित से आच्छन्न अपनी छाया देखकर श्याम हो गए अपने शरीर को आशांकित कर हुदेवार्षि नारदह विस्मित हो रहे थे।

परस्पर की कान्ति संक्रम से अपूर्व प्रभा रखता उन दोनों का संगम जिसमें समस्त पद अपने-अपने अर्थ को छोड़ कर एक तीसरे अर्थ को कहते है ऐसी "जहत्स्वार्था" व्याकरण-प्रसिद्ध, वृत्ति को प्राप्त दो शब्दों के समास के सदृश एक अपूर्व छटा दिखा रहा था।

[।] काट्य प्रकाश 2.1

² पारिजातहरण महाकाच्य - चतुर्थ तर्ग - 96

³ पारिजातहरण महाकाच्य - चतुर्थ सर्ग - 97

इस नारायण की आठ पटरानियां जो सांख्य-शास्त्र प्रतिपादित आठ प्रकृतियों के समान है उनमें प्रधान मूल प्रकृति आप हिन्दिणी ही हो । इस निश्चय को भगवान ने हिस्त्यापितंह सत्य कर दिखाया । जिससे यह पुष्प राज रूप उपहार पाने योग्य दूसरी कोई नहीं रही । हसत्या पि तम्हें इस परिच्छेद से भाव व्यंजना यह है कि सत्यभामा भी इस सम्मान को न पा सकी हसत्यभामा का सत्या भी नाम है

भगवान् श्रीकृष्ण तत्यभामा को विशेष प्रेम करते थे। कभी-कभी यात्राओं में भी गरूड़ पर बाँयी ओर उन्हें बिठा लेते थे, पूर्वो कत व्यंजना को और स्पष्ट करते हुए नारद जी यही कहते है, हे देवि रुक्मिणी। इस विलासी प्रभु की कहीं किसी यात्रा में कोई गरूड़ासन भने ही प्राप्त कर ले किन्तु इनसे दिया अमित मात्रा में यह सौभाग्य भाग आज तुमने ही प्राप्त किया इसे में समझता हूँ।

सत्या पितं इस पद की घटना विश्लेष्य से व्यंजित अन्य स्त्री के अनादर रूप भाव वाली रुक्मिणी ही पृश्लामयी नारद की वाणी सुनकर भगवान एक धिकनी हंसी से मुस्करा उठे।

लाक्षणिक ध्वनि के द्वारा गाँधी के नेतृत्व में चलते स्वराज्य सेवा के लिए सत्याग्रह की स्मृति दिलाकर अपने काल विशेष्ट की सूचना कवि ने दी है।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - ब्रह्ठ सर्ग - 18

² पारिजातहरण महाकाच्य - ष्टिठ सर्ग - 19

³ पारिजातहरण महाकाच्य - ष्ट्राठ सर्ग - 20

यह कुमुद का वन दिन में हैं ध्वित्ति कुमुद दुः खित का दलहें स्वर्ग राज्य में उल्लिसित चन्द्र की चाँदनी में हैं किंच निजी राज्य से उत्पन्नहें पृथ्वी के आनन्द रूप मनोहर चाँदनी प्रकाश में सर के भीतर हैं लक्षणा से देश के भीतर हैं अपने को प्रकाशित हैं प्रभावयुक्तहें करने के लिए बिना भयकम्प के आशायुक्त हो सुगन्धित तथा बद्ध सम्पुटित रहकर अन्य पक्ष में हेशोभन गाँधी रूप नेता से बद्ध उनके अनुरोध से गृहीतहें अथवा बन्दीखाने में पड़ा सत्यागृह रूप तप कर रहा था।

पुराण-शास्त्र ज्ञान :-

इतिहास पुराणाभ्यां चक्षुभ्यां मिव सत्कविः । विवेकांजन शुद्धाभ्यां सूक्ष्मच्यर्थमीक्षते ।। 2

कवि उमापति द्विवेदी विरिधत पारिजातहरण-महाकाच्य का कथानक ही पुराण पर आधारित है। किव उमापति को पुराणों का विस्तृत ज्ञान था क्यों कि पुराणों से उन्होंने पारिजातहरण नामक कथा को ही लेकर अपने इस काच्य की रचना की। उनके इस काच्य में यथास्थान पौराणिक आख्यानों का भी उल्लेख मिलता है। अत्यन्त प्रसिद्ध पौराणिक आख्यानों के अतिरिक्त उन्होंने अत्यन्त अपरिधित कथाओं का भी स्थान-स्थान पर उल्लेख किया है। एक ही कथानक कई रूपों में कई स्थानों पर उल्लेखीत हुआ है। कभी उसका एक रूप एक दृष्टित से देखा गया तो कभी दूसरा रूप दूसरी दृष्टित से। ये कथानक प्रायः उपमा, उत्पेक्षा, रूपक, श्लेष्य, दृष्टतान्त, भगनितमान, समासो कित आदि अलंकारों के साथ ही आते हैं। इस प्रकार श्री उमापति द्विवेदी की अलंकार प्रियता के साथ उनकी पुराणक्षता का सुन्दर

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - द्याम सर्ग - 16

^{2 &}quot;काव्यमीमांता "- अध्याय- 8

समन्वय हुआ है । अपने काट्य में चमत्कार बढ़ाने के लिए उन्होंने जो पुराणों का सहारा लिया यह ठीक ही किया क्यों कि पौराणिक कथाओं के समाज में अत्यन्त प्रिय होने के कारण उनके द्वारा भाव – बोध कराने में बड़ी सुगमता हो जाती है । कवि ने जहाँ अप्रचलित कथाओं का उल्लेख किया है वहाँ उनकी केवल वैदुष्य प्रदर्शन की भावना मानी जाएगी । पारिजातहरण महाकाट्य की कथा लोका प्रिय होने के कारण भाव-बोध कराने में समर्थ है ।

पारिजातहरण महाकाच्य का कथानक हरिवंशपुराण से लिया गया है। हिरवंश पुराण में दो प्रकार की कथा प्रसिद्ध है। इसमें पहली कथा तो विष्णु-पुराण में स्वीकार की गई है दूसरी कथा दूस य श्रव्य काव्य में स्वीकार की गई है जो इस प्रकार है: - श्री कृष्ण के सन्दर्शनार्थ आए हुए नारद के द्वारा दिए गए पारिजात पुष्प को श्रीकृष्ण को देना तथा कृष्ण का उसे स्विमणी को सौंपना उससे सत्यभामा की ज़ोध, कृष्ण का सत्यभामा के अनुययार्थ, स्वर्ग से पारिजात वृक्ष ही उखाड़ लाने की प्रतिज्ञा, नारद के द्वारा कृष्ण तथा इन्द्र के बीच सन्देशमाता, इनद्र की पारिजात देने में असम्मति, इन्द्र कृष्ण युद्ध, स्वर्ग से पारिजात का लाया जाना तथा एक संवत्सर बीतने पर पूछ्यक वृतोत्सव के समय पुनः स्वर्ग में वापस पहुँचाया जाना आदि का वर्णन हुआ है।

इसी कथा को आधार मानकर पारिजातहरण-महाकाट्य की रचना हुई है। पारिजातहरण महाकाट्य का कथानक इस कथानक से थोड़ा ही मिन्न है अन्यथा पूरी कथा वैसी ही ज्ञात होती है। इसके अतिरिक्त ब्रह्म्मपुराण, विष्णु-पुराण, देवी-मागवत में पारिजातहरण का वृतान्त मिलता है। पर्या-पुराण में मिन्न वृतान्त मिलता है। पारिजातहरण का वृतान्त हरिवंश में विधिष्ट स्थान रखता है।
यह वृतान्त हरिवंश में दो बार वर्णित है। कृष्ण पारिजात का हरण करते हैं।
इन्द्र, कृष्ण के पराक्रम को देखकर पारिजात वृक्ष को ले जाने की अनुमति दे देते

पारिजातहरण का दितीय वृतान्त हरिवंश पुराण के बारह अध्यायों में वर्णित है। वह कथा इस प्रकार है — "रैवतक पर्वत में नारद के द्वारा दिस् गर पारिजात-कुसुम को कृष्ण रुक्मिणी को दे देते हैं। इस पुष्प के प्रदान से सत्यभामा रुष्ट हो जाती है। उनके आगृह से कृष्ण स्वर्ग से पारिजातहरण करते हैं। इस कथा में भिन्न की स्तुति और पुष्यक वृत का सिम्मश्रण है कृष्ण और इन्द्र के युद्ध की शान्ति के लिए कश्यम श्रष्टि भिन्न की तपस्या करते हैं।

भगवानकृष्ण स्वयं पारिजात की समलता के लिए महादेव की स्तुति करते हैं।

सत्यभामा सौभाग्य की प्राप्ति के लिए नारद को पुरोहित बनाकर तथा कोमल तन्तु के द्वारा पारिजातवृक्ष से कृष्ण को बाँधकर प्रभूत धन के साथ कृष्ण का दान करती है।

उत्पाद्या रोपायमात विष्णुस्तं गरूडोपरि,
 श्रुत्वा तं देवराजस्तु कर्म कृष्णस्य तत्तदा,
 अनुमेने महाबाहु कृतकर्मति चाड्रवीत्।

[&]quot;हरिवंश पुराण"— 2-67, 68, 79

² हरिवंश पुराण -- 2-72, 29-66

³ हरिवंश पुराण -- 2-74, 22-34

⁴ हरिवंश पुराण -- 2-76, 3 -36

पारिजातहरण के इस वृतान्त में हरिवंश पुराण में युद्ध का विस्तृत वर्णन मिलता है।

पारिजातहरण के प्रसंग में नारद के द्वारा दिए गए पारिजात पुष्प का उल्लेख पद्म पुराण को छोड़कर ब्रह्मपुराण, विष्णु पुराण, भागवत-पुराण, देवी भागवत तथा ब्रह्म वैवर्त आदि पुराणों में नहीं मिलता है। पद्म-पुराण में हरिवंश पुराण की ही भांति शबी के द्वारा पारिजात कुसुमों का शृंगार, सत्यभामा की पारिजातहरण वृक्ष की लेने की उत्कट इच्छा का कारण बन जाता है। पद्म पुराण उत्तर खण्ड - 40 में पारिजात हरण का वृतान्त हरिवंश पुराण से बहुत समानता रखता है।

पारिजात वृक्ष के पृथ्वी में स्थिति काल के विद्या में पुराणों में मतमेद 2 4 5 5 4 5 5 4 5 5 6 1 - इद्म " पुराण, विद्युपुराण, पद्मपुराण, तथा भागवत पुराण में पारिजात वृक्ष को कृष्ण के जीवन काल तक के लिए पृथ्वी में निवास करते हुए प्रस्तुत करते हैं। सत्यभामा के व्रत की समाध्ति पर पारिजातवृक्ष पुनः स्वर्ग पहुँचा दिया जाता है।

विष्णु पर्व के कृष्ण चरित के अन्तर्गत पारिजातहरण का वृतान्त संक्षिप्त है। इस प्रकार विभिन्न पुराणों में वर्णित पारिजातहरण नामक आख्यानों से यह ज्ञात होता है कि कवि उमापति द्विदी ने अपने पारिजातहरण महाकाच्य की रचना हरिवंश पुराण में वर्णित पारिजातहरण की कथा को आधार मानकर

[।] हरिवंश पुराण - 2-73-75

² ब्रह्मपुराण - 20-3

उ विष्णुपुराण - 5.21

⁴ पद्मपुराण उत्तरखण्ड - 276

⁵ भागवतपुराण - 10-6734

⁶ संवत्सरे ततो याति केशिहाडमरसत्तमः । पारिजातं पुनं स्वर्गमानयत्सर्व मावनः ।। "हरिवंश पुराण"-2-76-36

किया है। हरिवंश में पारिजातहरण के अन्तर्गत यह प्रसंग पुराणों में पाए जाने वाले पारिजातहरण पुराणों में पारिजात निबन्धन हरिवंश के इस प्रसंग से नितान्त भिन्न रूप में मिलाता है।

इन पुराणों में कृष्ण तत्यभामा के इन्द्र लोक पहुँचने पर तत्यभामा की शमी के प्रति ईष्यां, पारिजातहरण के लिए कृष्ण की प्रतिज्ञा, कृष्ण इन्द्र युद्ध और अन्त में इन्द्र की पराजय का उल्लेख है।

हरिवंश पुराण में पारिजात वृक्ष की प्राप्ति के बाद सत्यमामा के व्रत विशेष्ठा पुण्यक वृत का वर्णन है ।

यह वृत तत्यभामा के द्वारा कृष्ण की दीर्घायु के लिए किया गया है।
पुण्यकवृत हरिवंश के अतिरिक्त अन्य पुराणों में नहीं मिलता। पारिजातहरण
के अन्तर्गत दो स्तुतियां हरिवंश पुराण में मिलती है। पहली स्तुति इन्द्र और
कृष्ण के युद्धोयोग को देखकर कश्यप ऋषि के द्वारा शिव जी के प्रति है।

दूतरी स्तुति इन्द्र के विरुद्ध संग्राम में शक्ति की प्राप्ति के लिए कृष्ण के द्वारा महादेव के प्रति है।

[।] विष्णु-पुराण - 530, 31, ब्रह्म पुराण - 203 पद्यम पुराण उत्तरखण्ड १० भाग 10-59, 38-40 देवी भागवत पुराण 4-25, 25-27

² हरिवंश पुराण - 2-75-81

उ हरिवंश पुराण - 2-72

⁴ हरिवंश पुराण - 2-74

पुष्यकवृत की अवाचीन सामग्री हरिवंश के पारिजातहरण के वृतान्त की अवाचीनता को पुष्ट करती है।

पद्म पुराण में पारिजातहरण की कथा इस प्रकार है - प्रथ्वी से उत्पन्न नरकासूर नामक दैत्य इन्द्रादि देवों को पराजित कर देवमाता अदिति के दो कुण्डल, ऐरावत हाथी, उच्चै:श्रवा घोड़ा तथा स्वर्ग की अन्य सम्पत्तियां लूट ले गया था । देवगण ने कृष्टण की शरण जाकर उनसे नरकासुर के वध की प्रार्थना की। कृष्ण ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर अपनी प्रिया तत्यभामा सहित गरूड़ पर तवार होकर अतुर को मारने के लिए प्रत्थान किया और उसका वध कर देवों की लूटी हुई सम्पत्ति उन्हें पूनः वापस दिलवाई । अनेक नरेशों की सोलह हजार कन्याओं को जो असुरों के यहां बन्दी थीं मुक्त किया तथा उनकी ही प्रार्थना पर उनसे विवाह किया । पित्र देवमाता का दर्भन करने तथा उनके कुण्डल देने स्वर्ग लोक गए । देवमाता को प्रणाम कर उनके कुण्डल उन्हें समर्पित किए । उस समय सत्यभामा भयी के महल में गई । इन्द्राणी ने उनका उचित स्वागत किया । उसी समय सेवकों ने इन्द्र का भेजा सुन्दर पारिजात का पुरुप शबी को दे दिया । शबी ने उसे मत्यों चित न तमझ तत्यभामा से पूछा भी नहीं और वह पूरुप अपने ही केशों में गूँथ लिया । सत्यभामा इस अप्रमान से बड़ी कूद हुई । उन्होंने कृष्ण के पास जाकर उनको शयी के पारिजात विषयक गर्व का वृतान्त बताया । वासुदेव ने प्रिया की बात सुनकर पारिजात का वुक्ष ही उखाइ लिया । और उसे गरूड पर लादकर प्रिया के साथ दारका को चल दिये । उस पर इन्द्र को बड़ा कोध आया । देवों को साथ लेकर उन्होंने कृष्ण से युद्ध किया, पर अन्त में पारिजात हो कर इन्द्र ने पारिजात का स्वर्ग से जाना तह लिया । कूष्ण ने उसे सत्यभामा के महल में लगाया ।

[।] पद्मपुराण-उत्तरखण्ड अध्याय २७६ वलोक ४२/110

यह कथा हरिवंश में बड़े विस्तार के साथ तथा पद्मपुराण की कथा
से कुछ मिन्न कही गई है। वहां नारद का स्वर्ग से एक पारिजात पुरुप लाना,
कृष्ण को देना तथा कृष्ण का उसे रूकिमणी को सौंपना उससे सत्यभामा के
अनुयस्तर्म स्वर्ग से पारिजातवृक्ष ही उखाड़ लाने की प्रतिज्ञा, नारद द्वारा कृष्ण
तथा इन्द्र के बीच सन्देश वार्ता, इन्द्र की पारिजात देने में असम्मति, इन्द्रकृष्ण युद्ध, स्वर्ग से पारिजात का लाया जाना, तथा एक संवत्सर बीतने पर
पुण्यकवृतोत्सव के समय पुनः स्वर्ग में वापस पहुँचाया जाना आदि का वर्णन है।

इसके अतिरिक्त एक स्थान पर हरिवंश में ही पद्मपुराण जैसा कथानक भी है।

कवि उमापति दिवेदी विरचित "पारिजातहरण महाकाच्य" की कथा इस प्रकार है।

दारका के वर्णन के पश्चात् रूकिमणी दूती को भेजकर अपने दारा किए गए वृत के उद्यापन के लिए भगवान् कृष्ण से अनुमति मांगती है। भगवान् कृष्ण स्वीकार कर लेते हैं।

तत्पश्चात यज्ञ के लिए भगवान् कृष्ण का रूकिमणी के साथ रैवतक प्रवंत की यात्रा का वर्णन किया गया है। नारद के द्वारा भगवान् कृष्ण की स्तुति तथा नारद के द्वारा कृष्ण को पारिजात पुष्प देना, भगवान् कृष्ण को रूकिमणी को पारिजात पुष्प देना। तत्पश्चात् नारद के द्वारा सत्यभामा का कृोध,

[।] हरिवंश पुराण अध्याय 65-76

² हरिवंश पुराण 2/64

भगवान कृष्ण को सत्यभामा को मनाया जाना, तथा सत्यभामा से पारिजातवृक्ष को मांगने के लिए नारद इन्द्र के पास जाना, नारद-इन्द्र संवाद तथा इन्द्र का बिना युद्ध के पारिजात वृक्ष को न देना, सत्यभामा के साथ भगवान कृष्ण का स्वर्ग जाना, नारायण इन्द्र युद्ध तत्पश्चात युद्ध की शान्ति के लिए भगवान शिष्ठ की स्तृति अधि कश्यप का आगमन, कश्यप के द्वारा माता अदिति के कुण्डलों का भौमासुर राक्ष्म के द्वारा हरण को बताया भगवान का पाताल गमन, भौमासुर-वध, राजकन्याओं का उद्धार, माता अदिति के कुण्डलों का लाना, भगवान के द्वारा उपहार-स्वरूप में पारिजात का पाया जाना, भगवान कृष्ण का द्वारिका को प्रस्थान, सत्यभामा के घर में पारिजात का आरोपण आदि का वर्णन पारिजात-हरण महाकाच्य में किया गया है।

पारिजातहरण महाकाच्य में यथास्थान वृत विधान का वर्णन, यज्ञ का वर्णन, द्वारिका का वर्णन, नदियों तथा ऋतुओं का वर्णन, समुद्र का वर्णन, स्वर्ग का वर्णन, युद्ध का वर्णन किया गया है। जो पुराणों से बहुत कुछ समानता रखता है। हरिवंश पुराण के पंचम सर्ग में तीनों लोकों का, संगीत का तथा वृत-विधान आदि का बीच-बीच में विस्तृत वर्णन किया गया है।

कवि उमापति दिवेदी विरचित पारिजातहरण महाकाच्य के प्रथम सर्ग में रूकिमणी के वृत का वर्णन किया गया है। दूती ने आकर भगवान कृष्ण से कहा – हे भगवन्। आपकी ज्येष्ठापत्नी रुकिमणी अपने किए पुण्यकवृत की पूर्णता के लिए कल आपके साथ ही रैवताचल पर पूजनीय देव ब्राह्मणों की पूजा करना चाहती है। आपकी एकमात्र उपासना ही जिसे इष्ट है ऐसी अपनी प्रियतमा

[।] पारिजातहरण महाकाच्य "श्री उमापति दिवेदी

² हरिवंश पुराण * 5-267 से 279

रुक्मिणी को अपनी अनुमति दें अनुगृहीत करें क्यों कि तती रुक्मिणी आपकी कृपा के परोक्ष कुछ भी करना नहीं चाहती इस पर भगवान श्रीकृष्ण ने अनुराग सहित कहा – वह रुक्मिणी अपनी कामना पूर्ण समझें।

हरिवंश पुराण के पंचम तर्ग में नदियों का वर्णन मिलता है -कच्छा आदि प्रत्येक क्षेत्र में गंगा तिन्धु नाम की दो नदियाँ हैं। जो नील पर्वत ते निकलकर विजयार्द्ध पर्वत की दोनों गुफाओं का उल्लधंन करती हुई तीता नदी में प्रवेश करती है।

पारिजातहरण महाकाच्य के पंचम तर्ग में गंगा आदि नदियों का वर्णन किया गया है - इस प्रयाग भूमि में सूर्य पुत्री यमुना की धनी नील तरंगों से आकान्त तथा लाल रंग में तरंगित सरस्वती को अंक में लिए स्वभाव से ही इवेतवर्ण वाली जो गंगा सुभो भित हो रही है इसकी तुलना में किसने अपनी वाणी प्रस्तुत की है। किव उमापित दिवेदी ने अपने पारिजातहरण महाकाच्य में विभिन्न अलंकारों के माध्यम से त्रिवेणी का वर्णन किया है। इस प्रकार किव की अलंकार प्रियता के साथ उनकी पुराणक्षता का सुन्दर समन्वय हुआ है।

उपमा, रूपक अलंकारों के माध्यम से त्रिवेणी वर्णन प्रस्तुत है "तीन रंग वाली तीनों नदियों का मिला तिरंगा प्रवाहरूप त्रिवेणी राधा रूपिणी लता से कलित कल्पतरू स्वरूप आप की खिले पूलों की लाल का न्ति से लसित या स्पुष्ट कामदेव के द्वारा उपरज्जित श्याम छाया के समान ज्ञात होती है अथवा मेरी

[।] या रुक्मिणी — — भवताननुसैवताद्रौ ।

[&]quot;पारिजातहरण महाकाच्य" ।-61

तामात्मनः — — कदापिसत्या ।

[&]quot;पारिजातहरण महाकाच्य ।-62

² विहित -- -- **ब्याजहार** ।

[&]quot;पारिजातहरण महाकाट्य" ।-63

³ हरिवंश पुराण * 5-267 से 279

⁴ भाति - तरस्वती कै: । "पारिजातहरण महाकाव्य" 5-42

तमोमयी बुद्धि हुलाल-रंग में वर्णित है अनुराग से अंकित भगवान् सदा पिन की मूर्तिमती विशद स्वच्छ दया की तुलना कर रही है।

हरिवंश पुराण के घोडश-तर्ग में उपमा, उत्प्रक्षा रूपक अलंकारों के माध्यम ते शरदश्रतु का वर्णन मिलता है —

अधान्तर किसी समय शरद श्रतु आई सो वह ऐसी जान पड़िती थी मानो वर्षा रूपी स्त्री के चले जाने पर एक दूसरी अपनी ही स्त्री कमल के समान मुख से युक्त होती है उसी प्रकार वह शरद श्रतु भी कमल रूपीमुख से सहित थी। जिस प्रकार स्त्री लाल-लाल अधरोष्ठ से युक्त होती है उसी प्रकार वह शरद्शतु भी बन्धूक के लाल लाल पूल रूपी अधरोष्ठ से युक्त थी। जिस प्रकार स्त्री उज्जवल वस्त्रों से युक्त है उसी प्रकार वह शरद्-श्रतों भी उज्जवल मेघ रूपी वस्त्रों से युक्त है उसी प्रकार वह शरद्-श्रतों भी उज्जवल मेघ रूपी वस्त्रों से युक्त थी।

पारिजातहरण महाकाच्य के दशम-सर्ग में शरद्-ऋतु का वर्णन किया गया है :-

यह शरद की स्वच्छ जल वा हिनी नदी, पर्वताष्ट्रंग को बारों ओर से धेरकर बहती दो गण्ड शैलों के बीच पतली धार में निकलती हुई तुम्हारें हैं कुष्ण के हैं विसंकट दोनों स्तनों के बीच लटकती सकलता मुक्तामाल का अनुकरण कर रही है।

[।] राधालता — — अनुरागैः।

[&]quot;पारिजातहरण महाकाट्य" 5-46

² हरिवंश पुराण " - 16-22

कहीं पके धान हैं, कहीं-कहीं हरी-हरी घात है। यह धवल हंतों की श्रेणी अपने चरण चंचु चोंच की लालिमा ते रंगी शुक्रमाला ते मिलकर बरतात बीत जाने पर भी आकाश में इन्द्र धनुष्य की शोभाला रही है। दूतरी और केतर रंग का फूलों ते गिरा पराग पटल जित पर छाया हुआ है तथा कमल पुष्पों ते तजा कहीं जितमें चमकती मछलियों उछल रही है इस प्रकार शरद शतु की विशेषताएं लिए सरोवर शोभित हो रही है।

विभिन्न अलंकारों के माध्यम से शरद ऋतु का वर्णन कवि की अलंकार प्रियता के साथ पुराण्झता का परिचय देता है। श्लेष्य तथा उपमा के माध्यम से शरद का वर्णन प्रस्तुत है:-

श्लेष के द्वारा वाग्देवता की तुलना शरदऋतु से कर रहे हैं — श्वेत अम्बर वाली १६ देवतापक्ष में १ श्वेत वस्त्र से सजी, आरसित बोलते हुए, हंसों की गित संचार से प्रसन्न १६ देवतापक्ष में १ आष्ट्रलसित मन्द या सर्वधा शोभामान हंस १ निजवाहन १ की गित संचार से प्रसन्न ऋतु पक्ष में १ श्वेंगार हार के पुष्प ऋंगरार्थ हार के पूलों से अथवा अन्य विधि श्वंगार तथा हार एवं पुष्प राश्चि से मनोहर का नित वाली १३ तु पक्ष में १ उल्लास से विकसित कर रखा है । अपने समय के आ श्रित बन्धु जीव दुपहरी के पूल पीसने १ देवता पक्ष में १ आननिन्दत कर दिया है

श्रृंगा — — तवासलेयम् ।
 पारिजातहरण महाकाच्य १०-१
 केदारिणी — — डिलिनीला ।
 पारिजातहरण महाकाच्य १०-१०
 या रिजातहरण महाकाच्य १०-१०
 या रिजातहरण महाकाच्य १०-१
 या रिजातहरण महाकाच्य १०-१4

अपने सिद्धान्त के आश्रित बन्धुओं के जीवों को जिसने ऐसी वाग्देवता हसरस्वती देवी है के समान हमारे आन्नार्थ शरद्शतु उदित हो रही है।

हरिवंशपुराण के एकचत्वा रिश तर्ग में उत्प्रेक्षालंकार के माध्यम ते तमुद्र का वर्णन मिलता है – लहलहाता हुआ तमुद्र ऐसा जान पड़ता था मानों मदोन्मत्त दिग्गज ही हो और मछलियों के बार-बार उछलने तथा नीचे आने की लीला से ऐसा जान पड़ता था मानो नेत्रों को कुछ-कुछ खोल रहा हो और बन्द कर रहा हो । वह तमुद्र उँची उठती हुई अपनी चंचल तरंग रूपी भुजाओं के तमूह ते ऐसा जान पड़ता था मानो विशाल आकाश से ईच्या कर तमस्त दिशाओं से युक्त आकाश का आस्फालन करने के लिए उद्यत हुआ हों ।

पारिजातहरण महाकाच्य के चतुर्थ सर्ग में समुद्र का वर्णन किया गया है—
जो समुद्र तट्वर्वी वनों की घनी छाया से आच्छा दित, दोनों प्रान्तों के बीच
आत-पास दोनों ओर से छाए घने बरदलों से घिरे प्रशस्त आकाश के समान
दिखाई दे रहा है, जिसका कोलाहल अनुक्षण बद्रता जा रहा है जो समुद्र रंग
बिरंग रत्न एवं जल जन्तुओं से चित्रित आश्रम वाला हो । अपने मीतर
उच्चते डूबते जल के उत्पत्ति प्रलय का अभिनय कर रहा हों । जिस समुद्र का
तीनों काल में कभी नाश नहीं होता, ऐसे समुद्र का भगवान कृष्ण ने हृदय तथा
सिर से आ लिंगन किया ।

पारिजातहरण महाकाच्य 10-12

[।] श्वेताम्बरा — — शरन

² हरिवंशपुराण -एकवत्वारिंश - 2-3

³ पारिजातहरूम महाकाच्य - चतुर्थ सर्ग - 1-12

हरिवंश पुराण के एकचत्वा रिंश-सर्ग में दारिका का वर्णन मिलता है। दारिका पुरी बारहयोजन लम्बी, नौ योजन घोड़ी, वज़मय कोट के घरा से युक्त तथा समुद्र रूपी परिखा से घिरी हुई थी। रत्न और स्वर्ण से निर्मित अनेक खण्डों के बड़े-बड़े महलों से आकाश को रोकती हुई वह दारिकापुरी आकाश से च्युत अलकापुरी के समान सुशोभित हो रही थी।

सब प्रकार के रत्नों ते निर्मित प्राकार और तोरणों ते युक्त एवं बाग बगीयों ते तहित उँचे-उँचे मन्दिरों ते वह नगरी अत्याधिक सुभो मित हो रही थी।

परिजातहरण महाकाच्य का प्रारम्भ ही द्वारिका के वर्णन से हुआ है। वे भगवान कृष्ण समुद्री रूपी अपने वस्त्रों को संवारती एवं वैदी प्यमान भूषण रूप रत्नों को धारण कर एक असाधारण ना यिका के वेश के धारण करती हुई इस द्वारिकापुरी का शासन करते थे। इस द्वारिकापुरी में गगनयुम्बी अद्वालिकाएं थीं। यह पुरी सर्वोत्तम ऐश्वर्य को धारण करने वाली थी। इस पुरी में जहां मरकतमणि विभूषित महल है, वहां वर्षाकाल का आनन्द है, जहां सूर्यकान्त मणि जिल्ल है वहां दिन के समान प्रकाश है नीलम जिल्त महलों पर अमारात्रि की शोभा है तथा यन्द्रकान्तमणि जिल्ल भवनों पर पूर्ण ज्यात्सना विहार कर रही है। इस पूरी में बहुत अधिक प्रकाशमान दीवारें हैं। इसके गवाक्ष सुवर्णमय है और इसके राजमार्ग सुन्दर सोने के कलश कंगूरां

^{। &}quot;हरिवंशपुराण" एकवत्वा रिंश - 19,20

^{2 &}quot;हरिवंशपुराण" एकवत्वा रिंश - 25 वाँ

से अलंकृत है। इसके जलयन्त्रागार के फब्बारे पर मयूर, चातक, शुक्र, सारस आदि पक्षी निरन्तर विद्यमान रहते हैं। इस प्रकार इस पुरी से दूर रहकर भी इसका केवल नाम लेने से समस्त रेशवर्य प्राप्त होते हैं। इसके दर्शन से पापों की राशि भी विलीन हो जाती है तथा सेवन से मनुष्य संसार बन्धन से रहित हो मुक्ति का भागी हो जाता है।

विभिन्न अलंकारों के माध्यम से द्वारिका का वर्णन करके किव उमापति ने अपनी अलंकार प्रियता के साथ पुराणक्कता का परिचय भी बड़ी कुशनता के साथ दिया है। अनुपास का उदाहरण इस द्वारिकापुरी के प्रसंग में :-

"पदे पदेऽस्यास्तु मिथोमनोहरौ सदारमेते तरसी तरोवरौ"

क्लेष्ठ तथा उपमा अलंकारों के माध्यम ते द्वारिका की बावड़ियाँ का वर्णन बड़ा ही मनोहर है।

ह्वाणी पक्ष में हु

पुदकते हुए मीनरूपीमनोहर एवं गंगल नेत्रों वाली क्षण-क्षण में खिसकते हुए वस्त्र रूप शैमाल से सुशो भित होने वाली तथा चिरकाल तक उँगी जलराशि को उन्नत उरोजों के रूप में धारण करने वाली बाव ड़ियां ना यिकाओं की मांति किसके मन को नहीं हर लेती है।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य-। ते 25

² पारिजातहरण महाकाच्य-। ते 19

§ना यिका पक्ष में §

मीन की तरह चंचल नेत्रों वाली एवं क्षण-क्षण में शैवाल की तरह खिसकने वाले वस्त्र को धारण किए हुई चिरकाल तक खड़े उँचे स्तनों वाली ना यिकाएँ किसका मन नहीं हर लेती ।

हरिवंश पुराण के पंचायतम तर्ग में युद्ध का प्रारम्भ तथा एक पंचायतम तर्ग में युद्ध का अवान्तर वर्णन मिलता है । इसी प्रकार पारिजातहरण महाकाच्य में भी तोलहवें तर्ग में युद्धोद्योग का वर्णन हुआ है और स्त्रहवें तर्ग में नारायण तथा इन्द्र के युद्ध का वर्णन किया गया है ।

महान् ओजस्वी इन्द्र द्वारा अचानक अपने विशाल धनुष्ठा को बजाकर हाथ से खींची गयी धनुष्ठा की प्रत्यंचा कृष्ण के काल तक पहुँचा दी गई। भगवान् श्रीकृष्ण ने भी अपना धनुष्ठा युद्ध के लिए तैयार कर लिया जो देदा हो कर बड़ा ही भयंकर लग रहा था। हुँइन्द्र के पुत्र पुरन्दर तथा कृष्ण के पुत्र कामदेव दोनों काला तिपात के न सह सकने वाले रोष्ठ से पूर्ण थे। फेंके गए धनुष्ठ के समूह के पिंजरे से दोनों की काया प्रच्छन्न हो गई।

पुराणों में स्थान-स्थान पर भगवान् की स्तुति का उल्लेख मिलता है - ब्रह्म-पुराण में कृष्णावतार के पूर्व व्यास के द्वारा विष्णु स्तुति में

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - सप्तद्धा सर्ग - 3,7

² पारिजातहरण महाकाच्य - सप्तदश सर्ग - 13

चतुर्व्यूहात्मक, निर्मुण-शाश्वत और पुराण विष्णु की स्तुति । ब्रह्म्म पुराण में का लियदमन के प्रतंग में नाग पत्नियों के द्वारा कृष्ण की स्तुति का वर्णन है ।

विष्णु पुराण में कालयँवन के प्रसंग में मुचुकुन्द के द्वारा कृष्ण की स्तुति का वर्णन है। देवीभागवत में विष्णु स्वयं को देवी के अधीन बनाकर पृथ्वी की रक्षा के लिए उनकी स्तुति करते हैं। भागवत पुराण में कृष्ण जन्म के पूर्व ब्रह्ममा और पिन्न का वर्णन है। प्राम पुराण में वसुदेव और देवकी की कृष्ण के प्रति स्तुति है। पद्मपुराण में बाणासुर के आख्यान में मोहनास्त्र के द्वारा कृष्ण का पिन्न को मोहित कर देने का उल्लेख है। पार्वती की स्तुति से कृष्ण मोहनास्त्र का उल्लेख है। पार्वती की स्तुति से कृष्ण मोहनास्त्र का उल्लेख है। पार्वती की स्तुति से कृष्ण मोहनास्त्र का

श्रीमदभगवद्गीता में देवताओं की उपासना के बारे में बताया गया है। श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं — जो-जो सकामी भक्त जिस-जिस देवता के स्वरूप को श्रद्धा से पूजना चाहता है, उस उस भक्त की मैं उस ही देवता के प्रति श्रद्धा को स्थिर करता हूँ।

[।] ब्रह्मपुराण - 180

² ब्रह्मपुराण - 185

उ विष्णुपुराण- 2-23

⁴ देवीभागवत -4, 19

⁵ भागवतपुराण - 10, 2, 25, -45

⁶ पद्मपुराण उत्तरखण्ड - 272

⁷ पद्मपुराण उत्तर खण्ड - 277

⁸ श्रीमद्भगवद्गीता - अध्याय 8-20 वाँ

श्रीमद्भगवद्गीता से अर्जुन भगवान श्रीकृष्ण की स्तुति करते हैं – हे भगवन् ! आप परमब्रह्म और परमधाम एवं परम पवित्र हैं । ज्यों कि आपको सब श्रष्ठा जन सनातन, दिव्य पुरुष्ठा एवं देवों का भी आदिदेव, अजन्मा एवं सर्वव्यापी कहते हैं।

हे सम्पूर्ण विश्व के स्वामिन् ! आपको अनेक हाथ, उदर, मुख और नेत्रों से युक्त तथा सब ओर से अनन्त रूपों वाला देखता हूँ। हे विश्वरूप ! आपके न अन्त को देखता हूँ, न मध्य को और न आदि को ही देखता हूँ। पारिजातहरण महाकाच्य में स्थान-स्थान पर भगवान् की स्तृति का वर्णन किया गया है। काच्य के पंचम सर्ग में नारद के द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण की स्तृति की गई है। हे जगन्नाथ! आपने जो कहा सब सत्य है किन्तु संसारी लोग ठीक कह सकते हैं। हें संसार के तारने वाले! आपके दर्शन मात्र से कृतार्थ होने वाले हमारे प्रति आपके द्वारा यह प्रयोग योग्य नहीं है।

हे भगवान् । जाति १ जन्म१ आकृति क्रिया गुणों से आपका कोई वर्णन नहीं कर सकता क्यों कि नित्य शुद्ध - आत्मा के ये सभी असत्य उपाधि मात्र हैं ।

[।] श्रीमद्भगवद्गीता अध्याय 10-13

² श्रीमद्भगवद्गीता अध्याय ।।-।6

³ पारिजातहरण महाकाच्य - पंचम तर्ग - 3

⁴ पारिजातहरण महाकाच्य - पंचम सर्ग - 7

पारिजातहरण महाकाट्य के बारहवें तर्ग में गरूड़ के द्वारा कृष्ण की स्तुति का वर्णन हुआ है। गरूड़ श्रीकृष्ण ते कहता है – हे परमपूज्य ! वह मेरा शरीर और मेरा मन तुम्हारे चरण कमलों ते क्षण भर के लिए भी अलग नहीं हैं। यह तुम्हारा दर्शन इस संसार में मंगल दृष्टिट की प्रसन्नता की जो विधि है वह पहले ते अधिक प्रसन्न दिखाई दे रही है।

है निर्विकार । तुम्हारी मानव के रूप में जो पद और जो येष्टाएं हैं वह हम लोगों को प्रसन्नता देने वाली है । पवित्र और अनिर्मल होने पर भी समुद्र से अलग शरत्सरोवर सरोज सहित सुशो भित्त होता है ।

अद्ठारहर्वें तर्ग में युद्ध की शानित के लिए भगवान् के द्वारा शिव्य की स्तुति की गई है -

"नरोहरिस्तावदेरः प्रतिश्रुतं विधिन्त्यन् प्राणपणं महारणम् । निजस्यचाजेय तथा ४६ पत निर्णयं चिराय दध्यौ विध्यमें तदा विष्यम् ।

पुराणों में यथारथान यज्ञादि कर्मों का उल्लेख है । श्रीमद्भगवद्गीता में यज्ञादि कर्मों का उल्लेख हुआ है ।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - द्वादश सर्ग - 38

² पारिजातहरण महाकाच्य - अष्टद्भा सर्ग - 2

श्रीकृषण अर्जुन से कहते हैं - तुम शास्त्र विधि से नियत किए हुए स्वधर्म रूप कर्म को करो, क्यों कि कर्म न करने की अपेक्षा कर्म करना श्रेष्ठ है। हे अर्जुन ! बन्धन के भ्य से भी कर्मों का त्याग करना योग्य नहीं है। क्यों कि यज्ञ अर्थात् विष्णु के विभिन्न किए हुए कर्म के सिवाय अन्य कर्म में लगा हुआ ही यह मनुष्य कर्मों द्वारा बंधता है। इस यज्ञ द्वारा तुम लोग वृद्धि को प्राप्त होवों यह यज्ञ तुम लोगों को इच्छित कामनाओं को देने वाली हो वे इस यज्ञ द्वारा देवता औं की उन्नति करों देवता तुम लोगों की उन्नति करें।

श्रीमद्भगवद्गीता के अध्याय चार में फ्लसहित प्रथम - पृथक यज्ञों का कथन है। श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं, हे अर्जुन यज्ञों के परिणामस्वरूप ज्ञानामृत के भोगने वाले योगी जन सनातन पर ब्रह्मा परमात्मा को प्राप्त होते हैं और यज्ञ सहित पुरुष को यह मनुष्य लोक भी सुखदायक नहीं हैं फिर परलोक कैसे सुखदायक होगा।

और हे अर्जुन सांसारिक वस्तुओं से सिद्ध होने वाले यज्ञ से ज्ञानरूप यज्ञ सब प्रकार से श्रेष्ठ हैं क्यों कि हे पार्थ । सम्पूर्ण यावन्मात्र कर्मज्ञान में शेष्ठ होते हैं अर्थात् ज्ञान उनकी पराकाष्ठा है ।

[।] श्रीमद्भगवद्गीता अध्याय 3-8-11

² श्रीमद्भगवद्गीता अध्याय 4-31

³ श्रीमद्भगवदगीता - अध्याय ४-33

पारिजातहरण महाकाच्य के चतुर्थ सर्ग में यज्ञ का विशद वर्णन किया है।

परम योग्य वैदिनों के प्रतिपादित विधान एवं मन्त्र पाठ ते सर्वाधिक ऐश्वर्य ते शो मित तथा अवर्णनीय प्रीति को उत्पन्न करने वाले इस पर्वत पर यह स्वरूप मगवान् के द्वारा अधिकार प्राप्त कर, दिक्षणा स्वरूप दिक्षण स्वभाव वाली रुविमणी जी यह करने के हेतु प्रस्तुत हुई । यह की इतिकर्तट्यता का वर्णन भी इसी सर्ग में विस्तार के साथ किया गया है । मर्त्यलोकवासी मानगण पृथ्वी से उपजने वाले अन्नरसादि रूप सम्पत्ति से तृप्ति पाते हैं किन्तु स्वर्ग लोकीय अदुष्ट देवगण की तृप्ति के लिए, नियमरूप यह ही हैं जो वेदों के द्वारा शिक्षित हैं । यह यह ही है जो वेदों के द्वारा अनुशासित एक कर्म विशेष हैं ।

सत्पुरुषों ने सतत् इसका अनुष्ठान किया है इसलिए इसकी सफ्लता सिद्ध है तो फिर कौन इसको न करें। कर्मों के परिणाम तक ठीक पहुँचने वाली जिन विद्वानों की बुद्धि होती है, वे इष्ट सुख प्राप्ति के लिए इन यहाँ को ही अपनाते हैं क्यों कि अन्ततः कर्मों के द्वारा ही संसार की गति वियमित है। मर्त्यविहित यहां का वर्णन भी पारिजातहरण महाकाच्य में मिलता है – हे १इन्द्र देवलोक के स्वामी होते हुए भी पृथ्वी से उत्पन्न होने वाले औष्यि, रस आदि विषय विशेष्ठा जो देवमुख अग्नि में हवन रूप से

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - चतुर्थमर्ग - 29,30

² पारिजातहरण महाकाच्य - चतुर्थ सर्ग - 31

उ पारिजातहरण महाकाच्य - चतुर्थ सर्ग 32-40

दिया जाता है उससे तृप्त होते हैं अर्थात् मर्त्य विहित यहाँ से ही उनकी तृप्ति होती है। सोमरस की आहुति का वर्णन भी पारिजातहरण महाकाच्य में मिलता है यह संसार अण्निस्थली है जिसमें सोमरस कपी चेतना ही आहुति दी गई है। पहले यह में अधिष्ठित विराट पुरुष प्रजा के लिए उत्पन्न किया गया अब पुत्र बनकर नरकिमत् के परिणाम को प्राप्त होता है।

कृष्ण का स्वरूप भारतीय संस्कृति और साहित्य का एक प्राचीन विषय है। हरिवंश के विष्णु पर्व में कृष्ण की बाल्यावस्था से लेकर द्वासिका में उनके राज्यकाल तक का विस्तृत वर्णन मिलता है। हरिवंश के भविष्य पर्व में भी कृष्ण के जीवन से सम्बद्ध अनेक वृत्तान्त मिलते हैं। भारतीय साहित्य में कृष्ण का स्थान महत्वपूर्ण है। कृष्ण के चरित्र विस्तार का क्षेत्र व्यापक है। उपनिष्यं से लेकर पुराणों तक इस विस्तृत क्षेत्र में कृष्ण का व्यक्तित्व विकतित हुआ है। पुराणों में कृष्ण चरित निधियत रूप धारण करताहै। कृष्ण के इस प्राचीन व्यक्तित्व से वैष्णम भिक्त का निकट सम्बन्ध है। कृष्ण चरित्र एक प्राचीन वृतान्त है। अनेक ग्रन्थ कृष्ण के चरित्र से किसी न किसी प्रकार परियय की सूचना देते हैं। प्रायः सभी पुराणों में कृष्ण चरित्र का प्रारम्भ विष्णु की स्तृति तथा कृष्ण के वैष्णम स्वरूप पर प्रकाश डालने के उपरान्त होता है।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - दशम तर्ग 78

² पारिजातहरण महाकाच्य विंशासन - 11

³ पारिजातहरण महाकाच्य विशे तर्ग - 12

हरिवंश में कृष्ण के का लियदमन का वृतान्त है।

ब्रह्म्म पुराण में कृष्णमतार के पूर्व व्यास के द्वारा विष्णु स्तृति है । का लियदमन के प्रसंग में नागपत्नियों के द्वारा कृष्ण की स्तृति का वर्णन है । विष्णुपुराण के कालयवन के प्रसंग में विष्णुपुराण में मुचुकुन्द के द्वारा कृष्ण की स्तृति का वर्णन है ।

देवी भागवत में भी पृथ्वी की रक्षा के लिए कृष्ण की स्तुति का वर्णन कि मिलता है। पद्मपुराण में वसुदेव और देवकी की कृष्ण के प्रति स्तुति है। अग्निपुराण में कृष्ण वरित्र का वर्णन अत्यन्त संक्षिप्त रूप से हुआ है। इस पुराण का संक्षिप्त हरिवंश वर्णन हरिवंश के कृष्ण वरित्र से बहुत समानता रखता है।

विविध पुराणों के कृष्ण चरित्र में हरिवंश के कृष्ण चरित्र के स्थान का निर्णय अपेक्षित है। कृष्ण सम्बन्धी कृष्ठ महत्वपूर्ण तत्वों को प्रस्तुत करने के

[।] हरिवंश पुराण - 2 12

² ब्रह्ममपुराण - 180

उ ब्रह्मपुराण - 185

⁴ विष्णुपुराण - 2.23

⁵ देवी भागवत - 4-19

⁶ पद्मपुराण उत्तरखण्ड - 272

⁷ अग्निपुराण - अध्याय । 3

कारण हरिवंश के कृष्ण चरित्र का विशेष स्थान है। महाभारत का पर्वसंग्रह पर्व हरिवंश के विष्णुपर्व में कृष्ण कथा का निर्देश करता है। पाँचवाँ चरण हरिवंश में कृष्ण चरित्र का उल्लेख करता है।

वैष्णम पुराणों में विष्णु का व्यक्तित्व सांख्य, योग तथा वेदान्त की दार्शनिक विचार धाराओं के आचरण में व्यापक हो गया है। विष्णु पुराण में सांख्य, योग, वेदान्त का समन्वय प्राचीन काल में ही हो गया था। गीता में कृष्ण का सांख्य, योग और वेदान्तमय रूप को सूचित करता है। कृष्ण ज्ञानयोग के द्वारा सांख्य की निष्ठा तथा कर्मयोग के द्वारा योग की निष्ठा तथा का वर्णन करते हैं।

पारिजातहरण महाकाच्य में भी कृष्ण के चरित्र का वर्णन पुराणों में वर्णित कृष्ण के चरित्र के आधार पर ही किया गया है। पारिजातहरण महाकाच्य के प्रथम सर्ग में भगवान् श्रीकृष्ण को सर्वेश्वर तथा समस्त जगत् के नियन्ता कहा गया है – सर्वथा स्वाधीन और समस्त जगत् के नियन्ता सर्वेश्वर भगवान श्रीकृष्ण ने मनु सम्बन्धिनी या मानव सम्बन्धिनी समस्त सम्पत्ति को उपाधि रूप में धारण कर अर्थात् कपट मानुष्ठ हो कर भूतल को

[।] विद्योशचर्या विष्णोः कंसवधस्तया महाभारत । 2-82-83 विष्णु पुराण

² फ्र कृष्णस्य कर्माणि श्रूयन्ते जनमना सह महाभारत -1-2 अधिक पाठ अंत्रमरणं विष्णोर्यदिंद त्रिदशैः कृतम । क्ष्यार्थ पृथिनी द्राणौँ सवीमतद्कारणम् ।। हरिवंश पुराण 1-54-13

उ लोकेंऽ हिमन् द्विविधां निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानय । ज्ञानयोगे न आख्यानां कर्मयोगेन यो गिनाम् ।। श्रीमद्भगवद्गीता-अध्याय 3-3

कंस आदि दानवों के विनाश द्वारा स्वस्थ कर अपनी बसायी कुशस्थली इंदारिका है को सभी सुखों से पूर्ण कर दिया । जैसे कि पुराणों में यथास्थान कूषण की स्तुतियों का वर्णन मिलता है वैसे ही पारिजातहरण महाकाच्य में यथास्थान कृष्ण की स्तुतियों का भी वर्णन मिलता है। पंचम सर्ग में नारद के दारा भगवान कृष्ण की स्तृति की गई है। हे प्रभो। हमारे जैसे स्थल दृष्टिट वालों की दर्शन लालसा पूर्ण करने के लिए या निजभक्तों के प्रत्यक्ष उद्धारार्थ ऐसा सर्वोत्कृष्ट दिच्य अवतार धारण किए हुये आप ऐसा ॄनर साधारण साध्य हूं व्यवहार करते हुये अपने को छिपा क्यों रहे हो । द्वादश सर्ग में गरूड़ के द्वारा भावान् कृष्ण की स्तुति की बाई है - हे निर्विकार ! तम्हारी मानव के रूप में जो पद और जो चेष्टाएं हैं, वह हम लोगों को प्रसन्नता देने वाली है। पवित्र और अनिर्मेल होने पर भी समुद्र से अलग शरत्सरोवर सरोज सहित सुभो भित होता है। दूर से गिरी हुई जल की बूँदे मिद्टी में अनिल में या पृथ्वी में और कहीं लीन हो जाएं किन्तु परमार्थतः वह पथक नहीं है उसी प्रकार तुम एक ही जगत् के रचयिता हो । बीसवें सर्ग में नारद के द्वारा नारायण की स्तुति की गई है। गदा, पद्म, शंख, यक से मीना दि अनेक अवतारों से कीड़ा के लिए न दिखाई देने वाले भी

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - प्रथम सर्ग - ।

² पारिजातहरण महाकाच्य - पंचम सर्ग - 6

उ पारिजातहरण महाकाच्य - द्वादश सर्ग - 39

⁴ पारिजातहरण महाकाच्य - दादश सर्ग - 43

दिखाई पड़ने वाले स्वरूप होते हुए भी ज्ञान के काम रूप में तुम्हारी आत्मा होती है। हे भगवन् ! तुम्हें नमस्कार हो । मुनि के मुख से इस गीत स्तोत्र को सुनकर अभय की मुद्रा को धारण करते हुए कृष्ण बोले तुम्हें क्या या हिए मेरी स्तुति पढ़ने वालों का अभय निविचत हो जाता है। पारिजातहरण महाकाच्य के नायक कृष्ण है। इस महाकाच्य में कृष्ण को ईश्वर के रूप में माना गया है, वह समस्त जगत के नियन्ता है तथा सब कुछ जानने वाले हैं - आठवें सर्ग में कहा गया है विज्ञान अअखिल तत्व ज्ञान है के आधार पर भगवान कृष्ण का सत्यभामा को सही - सही कोपयुक्त जानकर विशेष उत्सुकता से उन्हें मनाने के लिए उनके घर की ओर चल दिए। दसवें सर्ग में कृष्ण का सांख्य दर्शन बताया गया है - कृष्ण नारद से कहते हैं -जो कुछ भी मनुष्य करते हैं कराते हैं उस कार्य के कारण प्रकृतिगत गुणों सत्व रजत, तमोरूप ते तर्वथा प्रतृत, बुद्धिधिकारमय निजी भाव हुमानस भावहुमय होते हैं। उसी के अनुसार प्राप्त परिणाम में चित्त को प्रका जिल करते हैं है कारण गुणानुरूप ही कार्य सिद्धि प्रसिद्ध है। एकादश सर्ग में वर्णित कर्मयोग तथा ज्ञानयोग का एक उदाहरण प्रस्तुत है - जो प्रभु दूषित दूषिट वाले १ंड्रन्द्र के १ तथा हमारे १ नारद के १ भी अधिक उपकारार्थ तथा कर्मयोग और ज्ञान योगात्मक होनों मार्गों की जिक्षा देने के लिए निजी माया से ही जनमना मनुष्य बने हुए हैं। अज्ञान से ही आप उस नारायण के उसर आक्षेप कर रहे हैं । उनकी निन्दा मूर्खता ही है ।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - विंश सर्ग - 30

² पारिजातहरण महाकाच्य - विंश सर्ग - 35

³ पारिजातहरण महाकाच्य - अष्टम सर्ग - ।

⁴ पारिजातहरण महाकाच्य - दशम सर्ग - 63

⁵ पारिजातहरण महाकांच्य - एकादश सर्ग - 85

पारिजातहरण महाकाच्य में अत्यन्त प्रतिद्ध पौराणिक आख्यानों के अतिरिक्त का भी उल्लेख किया है। अत्यन्त प्रतिद्धियौराणिक आख्यानों के अतिरिक्त अत्यन्त अपरिचित कथाओं का भी उल्लेख इस काच्य में किया गया है। समुद्ध्यान प्रतंग में किया ने आदि पुरुष्य चन्द्रमा को समुद्ध का पुत्र बताया है— चन्द्रवंश के भूष्यण भगवान कृष्ण को गिरि शिखर पर बैठे देख जोरों में लहराता हुआ समुद्ध मानों लहरों के बहाने बढ़े आनन्दोक्लास में उठलने लगा इसलिए कि भगवान के वंश के आदि पुरुष चन्द्रमा समुद्ध के ही पुत्र है पिन्र अपने वंश के भूष्यणीभूत भगवान को देख, समुद्ध क्यों न तरंगित हो। चतुर्थ सर्ग में भगवान कृष्ण राक्सिणी को अपने बालचरित्र का प्रसंग आदि सुना रहे हैं:—

अनेक योद्धाओं को पराजित कर इच्छानुसार अपने हर लाने की गाथा तथा उसी कारण विष्मुणाल का अपमान एवं अन्ततः उसको मार देने आदि का वृतान्त सुनती अपने ही जड़ से उत्पन्न वर के कारण अपने ही माई सुक्मि का पराजय एवं अपने द्वारा उसकी रक्षा आदि का वृतान्त उत्सुकता से पूछ रही 2 हे भगवन आपने कछुआ हो, पृथ्वी को धारण किया, सूकर हो पृथ्वी को पैलाया, सिंह बनकर हिरण्यक विष्मु जैसे अजेय दैत्य को मारा, कपट्यामन बन त्रिलोक को दो पग में ही नाप लिया । तपस्वी ब्राह्मण का अवतार धारण कर बहुत बड़े हुए क्षात्रिय राजमण्डल को प्रमधित किया । पिर स्वयं क्षात्रिय राम होकर अपने ही अवतार इस परशुराम को पराजित कर, ब्राह्मण कुलोत्पन्न लोक विजयी दशमुख रावण को समूल उखाड़ डाला ।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - तृतीय सर्ग - 66

² पारिजातहरण महाकाट्य - चतुर्थ सर्ग - 74

उ पारिजातहरण महाकाच्य - पंचम सर्ग - 11, 12

त्रिवेणी के वर्णन के प्रतंग में जिसके लिए सारे देवता स्पृहा करते हैं जिसके लिए भगवान् शंकर भी पार्वती कृत अवमान को सहन करते तथा सगर की सन्तानें जिसके लिए कर्तव्य का आदेश देती है। वह वही गंगा यमुना और सरस्वती से युक्त शो भित हो रही है।

रिक्मणी देवी की कही अपने अनुराग से रंज्जित चित्तवृति को सुनकर सभी गुण्मों से प्रांसित रीति वाली अपनी वीणा की विद्या गुर्द्धू पौराणिक कथा के अनुसार वीणा बजाने की अन्तिम विद्या रिक्मणी ने उन्हें दिया था था फिर बैकुण्ठनाथ ने इन्हें बीणाचार्य की उपाधि से विभूषित किया था। उस रुक्मिणी में नारद जी ने अपनी आत्यन्तिक भितत दिखाई। कुद्धसत्यभामा नारद से कृष्ण के बारे में कहती है – हे मुने । यह राधिकारमण नाम से प्रसिद्ध थे। इनकी राधारमणता को पहले ही कृष्ण ने कीका कर दिया था। श्री कृष्ण सत्यभामा से कहते हैं – घोर तपस्याओं से आराधित भणवान शंकर से जिस मृत संजीवनी विद्या को भुकाचार्य ने प्राप्त किया है केवल मेरे अर्थसिद्धि के लिए विधाता की दी हुई स्वभाव सिद्ध वह विद्या तुम्हारी आंखों में ही दे इन्द्र नारद से कृष्ण के बारे में कहते हैं – मेरे अंश को पृथ्वी पर उतार कर अर्जुन नामक मनुष्य में उसे रख मित्रता के बहाने उन्हें भी सेवक बनाकर हमें रिक्त क्षीनस्सार है जान पराभव हुदबा देने हैं के योग्य देख रहे हैं।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - पंचम सर्ग - 57

² पारिजातहरण महाकाच्य - ष्ट्रंठ सर्ग - 35

³ पारिजातहरण महाकाच्य - सप्तम सर्ग - 44

⁴ पारिजातहरण महाकाच्य - अष्टम सर्ग - 59

⁵ पारिजातहरण महाकाच्य - एकादश तर्ग - 57

नारद इन्द्र से कहते हैं - आपकी भयंकर वृष्ठिट के बयाने उन्होंने हुक्षण नेहुं बाल्यकाल में जो अद्भुत् विलास स्वरूप नख पर नगराज गोवर्धन को उठा लिया था, उस लीला को जानते हुए भी आप उन्हें क्यों भूल रहे हैं। बारहवें सर्ग में भगवान कृष्ण कहते हैं - मिदरा की सखी तथा कामदेव को जन्म देने वाली रमाहूं नक्ष्मीहूं मेरे कृष्ण के विना कुछ भी नहीं है इसलिए सम्पत्ति की उपेक्षा करके तथा समुद्र से उत्पन्न होने वाली नक्ष्मी की उपेक्षा करके शंकर विष्य की पी गए। कश्यप शक्ति भगवान कृष्ण तथा इन्द्र से कहते हैं - हे इन्द्र! जननी की स्तृति के लिए तुम्हारे द्वारा यह शलोक भी गाया गया था। महिष्य के मर्दन में शान्ति के लिए देवताओं के साथ व्यासो कित से वृद्धि को प्राप्त सप्तशत्ती में है तुम दोनों उसको फिर से रमरण करो । वह स्तृति मार्कण्डेय की दुर्गास प्तशत्ती में भी कही गयी है। तथा पारिजातहरण महाकाच्य के 20 वें सूर्ग में कही गई है - ते सम्मता जनपदेषु धनानि तेषां, तेषां पश्चासि न य सीदितिधर्मवर्गः प्राप्त स्वारम्भता प्रमती प्रसन्ता

बीतवें तर्ग में कश्यप श्रष्ठा के द्वारा भगवान् — कृष्ण की स्तृति के विषय में कहा गया है — शेष्टनाग के पन पर शयन है जितका, अपनी नाभि ते उत्पन्न कमल ते उत्पन्न, ब्रह्म्मा, ब्रह्म्मा ते उत्पन्न जो तेज है वह तेज तुम्हारा है, अनवस्था शृथ्वी में भुखमरी बाद आदि इत रूपी ग्रह ते ग्रस्त भूमार की धारा के लिए कर्मावतार धारण करने वाले माया के तुम आश्रय हो ।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - एकादश तर्ग - 96

² पारिजातहरण महाकाच्य - हादश तर्ग - 9

³ पारिजातहरण महाकाच्य - विंश तर्ग - 20

⁴ पाउरिजातहरण महाकाच्य - विंश तर्ग - 21

⁵ पारिजातहरण महाकाच्य - विंश तर्ग - 3।

इस प्रकार इन पौराणिक आख्यानों का वर्णन किव ने अपने पारिजातहरण महाकाच्य में कथा को आगे बढ़ाने के लिए किया है।

विष्णु पुराण में यथा स्थान सूक्तियों का वर्णन मिलता है। विष्णु-पुराण को कतिपय सूक्तियों का वर्णन प्रस्तुत है -

"मूदानामेव मवति कोधो ज्ञानवतां कृतः । दान के बारे में कहा
गया है कि बिना दान किए जो भोजन करता है वह विष्ठ खाता है । प्रिय
होने पर भी जो हितकर न हो उसे न कहे । अच्छा है हितकर कहना यद्यपि
वह अत्यन्त अप्रिय हो । सदाचार का उल्लधन करके कोई कल्याण नहीं पा
4

भागवत-पुराण तथा श्रीमद्भगवद्गीता में भी यथास्थान सूक्तियाँ का वर्णन मिलता है - जिस प्रकार जलयान से समुद्र पार करते हैं वैसे ही सभी आश्रमों का भरण करते हुए गृहस्थ अपने आश्रम में दुःख के समुद्र के पार जाता है। जो अपनी प्रतिज्ञा पूरी नहीं करता वह असम्य है। हम सभी ईशवर के लिए बलि वैसे ही वाहन करते हैं जैसे रस्सी से नया हुआ पशु मनुष्य के लिए।

[।] विष्णु पुराण - 1-1-17

² विष्णु पुराण - 3-11-72

³ विष्णु पुराण - 3-12-44

⁴ विष्णु पुराण - 3-17-2

⁵ भी गवत पुराण - 31-4-17

⁶ भागवत पुराण - 3. 17. 12

⁷ भागवत पुराण - 5.1.14

श्री मदमगवदगीता में आतमा के लिए कहा गया है कि यह श्रुआतमा श्रु न उत्पन्न होता है और न कभी मरता है। यह अज, नित्य शाश्वतऔर पुरातन है। शरीर के मारे जाने पर यह श्रुआतमा श्रुं नहीं मरता । कमी के द्वारा ही जनक आदि को पूर्ण तिद्धि मिली । "कर्मण्येवा धिकारस्ते मा पलेखु कदाचन" ।

पारिजातहरण महाकाट्य के प्रत्येक तर्ग में यथा स्थान तू कियों का वर्णन किया गया है। काट्य के चतुर्थ तर्ग में यज्ञ के वर्णन में कहा गया है - "कर्मों के दारा ही तंतार की गति नियमित है।" चतुर्थ तर्ग में गृहस्थ धर्म का निरूपण किया गया है - "अतिथि तेवा ते बढ़कर गृहस्थ का दूसरा धर्म ही नहीं है। भगवान कृष्ण ने नारद को अलभ्यनिधि के तमान तमज्ञा क्यों कि कृदुम्बियों को महात्माओं के दर्शन ते बढ़कर दूसरी वस्तु कमनीयनहीं होती। तथा तत्पुरक्यों का रेता करना स्वभाव ही होता है। प्रस्ताव के बिना तन्तों का अनुगृह किती पर नहीं होता। सन्तों का दर्शन निष्पाप ही प्राप्त करते हैं।

[।] श्रीमद्भगवद्गीता - 2.20

² श्रीमद्भावदगीता - 3.20

³ श्रीमद्भगवदगीता - 2,47

⁴ पारिजातहरण महाकाच्य - चतुर्थ सर्ग - 40

⁵ पारिजातहरणमहाकाच्य - चतुर्थ सर्ग - 104

⁶ पारिजातहरण महाकाच्य - चतुर्थ सर्ग - 105

⁷ पारिजातहरण महाकाट्य - चतुर्थ सर्ग - 106

⁸ पारिजातहरण महाकाच्य - चतुर्थ सर्ग - 107

९ पारिजातहरण महाकाव्य - चतुर्यं सर्ग - ।।।

नारद श्रीकृष्ण से कहते हैं :-

आपके वचनामृत का पान कर पाता तो स्वर्ग में भी कुछ नहीं रह जाता क्यों कि अमृत लाभ ही स्वर्ग की विशेष्ठता है। इन्द्र देवताओं का स्वामित्व जो गौरवर्गत है उसमें लज्जा से डूबे है। अर्थात देवस्वामी होकर में किसी दूसरे की सहायता केसे मांगू इस लज्जा से प्रत्यक्ष आकर आपसे याचना नहीं करते। यह लक्ष्मी का स्वभाव ही है कि बड़े विज्ञों को भी हठात् मोह १ अज्ञान में डाल देती है। सत्पुरुष दूसरों के कर्तव्यों की अपेक्षा न कर, व्यवहार करते हुए उपस्थित अवसर नहीं खोते। काव्य के 20वें सर्ग में कहा गया है - जिस प्रकार बड़ी निद्यों का सरा जल सूख जाए तो क्या उसकी सम्पूर्ण नालियां उसको भर सकेगीं।

आनन्दवर्धन कृत ध्वन्यालोक में हरिवंश को महाभारत का
उपसंहार पर्व माना है। ध्वन्यालोक के इस स्थल पर हरिवंश में शान्त
रस का प्राधान्य बतलाया गया है। पारिजातहरण महाकाच्य भी शान्त
रस प्रधान काच्य है। इस काच्य में स्थान-स्थान पर शान्त रस अथवा
भिक्त रस का चित्रण मिलता है। हिर के यश का गान करना ही किंव का
काच्य लिखने का मुख्य उद्देश्य था अतः इनके इस काच्य में रस का उतना अच्छा
चित्रण नहीं हो पाया है, फिर भी जमह-जमह पर ईश्वर की भिवत और

[।] पारिजात हरण महाकाच्य - वतुर्थ सर्ग - 119

² पारिजात हरण महाकाच्य - पंचम सर्ग - 31

उ पारिजात हरण महाकाट्य - पँचम तर्ग - 32

⁴ पारिजात हरण महाकाच्य - विंश तर्ग - 18

^{5 &}quot;तत्यं शान्तस्येव रतस्यां गित्वं महाभारते मोक्षस्य च तर्व पुरुषार्थेभ्यः प्राधान्यम् अयं व निगृद्धरमणीयोऽयों महाभारता वताने हरिवंश - वण्नेन समाप्तिं विद्धता कवि वेधता कृष्ण देपायनेन सम्यक् स्पुरीकृतः ।"

जीवों के इस संसार में बार-बार जन्म लेने और मरण के उदाहरण से ऐसा झात होता है कि यह काट्य शान्त रस अध्या मितत रस प्रधान काट्य है। शान्त रस का स्थायी-भाव निर्वेद है। मोक्ष रूपी परमपुर्खार्थ की प्राप्ति शान्त रस से होती है। मोक्ष रूप परमपुरखार्थ की प्राप्ति शान्त रस से होती है। शान्त रस काट्य के लिए परमावश्यक है शान्त व रस का उद्वीपन-विभाव संसार की असारता है। काट्य के पंचम सर्ग में नारद के द्वारा भगवान कृष्टण की स्तुति शान्त-रस का उदाहरण है - हे मुक्ति नाथ। अपने शरीर पर रेंगते खुद्राति खुद्र कीटों के समान संसार सारे जीवों को विशेष्ठ आस्था न होने के कारण जब तक आप उपेक्षित किए रहते हो अर्थात उनकी और ध्यान नहीं देते तब तक ये संसार में आते जाते बन्धन में पड़े रहते हैं जब कभी उनकी क्रियाओं या अपनी इच्छा से ही आपकी दृष्टिट के वे लक्ष्य बन जाते हैं तब बन्धन रहित मुक्त हो जाते हैं यही उनके मोक्ष है।

इस श्लोक में स्थायी भाव निर्वेद है और उद्दीपन विभाव जीवों का मुक्त हो

काट्य के छठे तर्ग में रितक्मणी के द्वारा कहा गया यह वचन शान्त रस का उदाहरण है - अपने पित से अलग सारे जमत को भी कुछ नहीं समझती रेसी सितयों के लिए यह त्रिलोक आनन्दमय हो उठता क्यों कि यह मेद संसरण अर्थात विविध ट्यवहारों वाला यह संसार है इस बन्धन को तोड़कर ही प्राणी परम सुख मोगता है । यहां स्थायी भाव निर्वेद है तथा सांसारिक बन्धन को तोड़कर प्राणी का परम सुख मोगना उददीयन विभाव है ।

[।] पारिजातहरण - पंचम सर्ग - 21

² पारिजातहरण महाकाच्य - षठ तर्ग - 28

पुराणों में दार्शनिक विचार धारा दर्शन ग्रन्थों ते अलग अपना
अितत्व बनाए रखने के कारण एक स्वतन्त्र अस्तित्व रखती है। दार्शनिक
विवेचन के अन्तर्गत कहीं पर सुष्टिट के आदि स्वरूप की और प्रकाश डाला
गया है, कहीं जीव, जगत् और माया के सिद्धान्तों का उल्लेख है। विष्णुपुराण, कूर्मपुराण, वराह पुराण तथा हरिवंश पुराण में सांख्य प्रमुख स्थान रखता है।
हरिवंश पुराण का दार्शनिक तत्व पौराणिक दर्शन के क्षेत्र में महत्व रखता है।
इस पुराण के भविष्य पर्व के अन्तर्गत सात से बत्तीसवें अध्याय तक आदि
सुष्टिट का और प्रकृति पुरुषात्मक विष्णु के स्वरूप का चिन्तन है। इस स्थन में
सांख्य और योग के विष्यों पर अलग-अलग विचार प्रस्तुत किए गये हैं।

हरिवंश में सांख्य विषयक विचार अनेक स्था में मिलते हैं। इस
पुराण में विष्णु पर्व के अन्तर्गत अर्जुन के प्रति कृष्ण की उक्ति में सांख्य प्रकृति
का विवेचन हुआ है। प्रकृति को व्यक्ताव्यक्त और सनातन कहा गया है।
इसमें प्रवेश कर योगविद मुक्तावस्था को प्राप्त होते हैं। प्रकृति के इस
स्वरूप का विवेचन गीता में हुआ है। हरिवंश में इस प्रकृति को परम ब्रह्मम
कहा गया है। गीता में प्रकृति को सांख्य पुरुष की सहचरी बनाकर अनादि
कहा गया है। जगत के विकार प्रकृति से ही उद्भूत माने गर हैं। हरिवंश
में प्रकृति को विकृती तिमका कहा गया है। विष्णु पर्व में वरण कृष्ण को

प्रकृतिः सा मम परा व्यक्ताव्यक्ता सनातनी ।
 यां प्रविश्य भवन्तीह मुक्ता योग विद्वत्तम : ।।
 हरिवंश पुराण 2. 144. 10

² महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः । भगनत्यन्यत्रमनसौ ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम् ।। श्रीमद्भगवद्गीता १-।3

उ हरिवंश पुराण 2-114-1

⁴ श्रीमद्भावद्गीता 13-19

⁵ पूर्व हिं या त्वया सुष्टा प्रकृतिर्विकृंता त्यिकता हरिवंश पुराण २ । १२७ ७ १६

विकृता त्मिकता प्रकृति का सुष्टा बतलाते हैं। इसी प्रसंग में कृष्ण को प्रकृति के विकारों के विकार का शमयिता कहा गया है।

प्रकृति का विकार द्वाय जगत् है। इस जगत् के विकार दुष्ट जन है। इनके शमन के लिए कृष्ण का बार-बार अवतार गृहण ही प्रकृति के विकारों का शमन है।

हरिवंश भविषय-पर्व में पृकृति को कारण कहा गया है, जिससे महत् की उत्पत्ति हुई। कृष्ण को उस प्रकृति का "कारणात्मक प्रधान पुरुष" कहा गया है। महत् से अहंकार की उत्पत्ति होती है। अहंकार से पंच तन्मात्रारं तथा पंचमहाभूत उत्पन्न होते हैं। पुरुष रूप कृष्ण को इन कारणों उ

हरिवंश में कृष्ण का सांख्य पुरुष से एकी भाव विशुद्ध सांख्यमत का पोष्ण नहीं करता । इस पुराण के सांख्य-पुरुष रूप कृष्ण में वेदान्त के परम ब्रह्म का समन्वय हुआ है । कृष्ण को प्रकृति का सृष्टा कहने के साथ ही प्रकृति के विकारों के विकार का शमयिता कहा है । गीता में भी पुरुष रूप कृष्ण में परब्रह्म का एकी भाव दृष्टिटगोचर होता है । अज और अव्यय होने पर भी प्रकृति को अधिष्ठित करके जगत का निर्माण करने वाले कृष्ण को सांख्य का विश्वद्ध पुरुष नहीं कहा जा सकता ।

[।] हरिवंश पुराण - २. १२७. ८ विष्णु पर्व

² हरिवंश पुराण - 3.8818-20 भविष्यपर्व

उ हरिवंश पुराण - 3.88.18-23 - भविष्यपर्व

⁴ हरिवंश पुराण 2. 127. 76, 81-82

⁵ अजो अपि सन्नव्ययात्मा भूतानामी इवरो अपि सन्। प्रकृति स्वामधिक ठाय संभावास्थात्ममायया।

हरिवंश में ब्राह्मण ते पुरक्ष की उत्पत्ति बतलाई गई है। इस पुरक्ष को सभी ओर ते बाहु तथा पाद्युक्त, सर्वत्र नेत्र तिर तथा मुख वाला सर्वज्ञात तथा सर्वव्याप्त कहा गया है। गीता के अन्तर्गत ब्रह्म के लक्ष्णों के कथन में उन्हीं विशेष्टणों का प्रयोग हुआ जो हरिवंश में सांख्य पुरक्ष के लिए प्रयुक्त लिए गये हैं।

हरिवंश में पुरुष श्वेताश्वर की माँति पुरुष तूक्त के पुरुष का बाचक है। पुरुष का कारण ब्रह्म माना गया है। तांख्य पुरुष ते अजन्मा होने के कारण स्वयं कारण और कार्य है। अतः यह पुरुष तांख्य पुरुष ते मिन्न तथा ब्रह्म ते उत्पन्न है। मनु स्मृति में कारण रूप सदसदात्मक ब्रह्म ते प्रकृति एवं पुरुष की उत्पत्ति बतलाई गई है। मनुस्मृति की यह विचारधारा हियंश ते पूर्णतः तमानता रखती है। हरिवंश का पुरुष सदसदात्मक ब्रह्म ते उत्पन्न होने पर भी तांख्य पुरुष ते मिन्न पुरुष है।

भागवत पुराण में प्रकृति के। कारण रूप तथा पुरुष की कार्य रूप माना है। कार्य रूप होने के कारण सुख तथा दुःख के भोग का दायित्व पुरुष पर है।

वायु पुराण 14. 12 यही शलोक कूर्म पुराण 2. 3. 2 यही शलोक ब्रह्म पुराण 235-30 यही शलोक

[।] हरिवंश पुराण 3-16-2-3

² हरिवंश पुराण 3-16-6

उ सर्वतः पाणि पादन्तं सर्वतो ऽक्षिप्तिरो मुख्य । सर्वतः श्रुतिमल्लो कं सर्वमा वृत्य तिष्ठति ।। गीता-।3-।3

⁴ हरिवंश पुराण

⁵ मनुस्मृति - ।-।।

⁶ कार्यकारण कर्तृत्वे कारणं प्रकृति विद्वः । भोक्तृत्वे सुखदुःखानां पुराधं प्रकृतेः परमं ।।

पारिजात हरण महाकाच्य में पुराणों के समान ही विभिन्न दार्शनिक तिद्वान्तों का उल्लेख हुआ है, जिसमें सांख्य तिद्वान्तों का उल्लेख कुछ अधिक हुआ है। पारिजात हरण महाकाच्य में सांख्य की इस प्रकृति के बारे में वहा गया है - भगवन् । यह तत्वा त्मिका है तांख्यमतानुसार २५ तत्वों में पैली हुई अन्य मतों में तद्धर्म, तत्शक्ति आदि रूपों में मानी जाने वाली जडा प्रकृति यामाया आपके दर्शनार्थ आपकी अधिष्ठित भूमिका में प्रदेश करते हुए लोगों को उन-उन तत्व रज तम रूप गुणों का दरवाजा छेंककर तम्मुख, निजी विलासों से छला करती है। पारिजातहरण महाकाच्य के पंचम सर्ग में पृथ्वी आदि का आदि कारण भगवान् कृष्ण की असाधारण इच्छा ही बतलाई गई है। काट्य में त्रिगुणा त्मिका प्रकृति के बारे में बताया गया है कि संसार के उद्भव स्थिति प्रलय को करने वाली जो त्रिगुणा त्मिका प्रकृति है जिसके वर्णन में १एकामजा नो हित शुक्ल कृष्णाम् इत्यादि वाक्य है, वही त्रिवेणी के रूप में प्रवाहित हो रही है। पारिजातहरण महाकाच्य में सांख्य सिद्धान्तों के इन प्रमाणों के विषय में कहा गया है । प्रत्यक्ष, अनुमान तथा आगम प्रमाण से भी इसकी तथ्यता पर विश्वास कर बुद्धिमान पुरुष इंटट सिद्धि के कारणी मूत अनुशासन वाले उस शास्त्रों में किए गए विवेक का अनुसरण करते हैं। पारिजातहरण महाकाच्य में सांख्य के प्रकृति-पुरुख के

[।] कार्यकारण कर्त्तृत्वे कारणं प्रकृतिं विद्धः । भोक्तृत्वे सुखदुःखानां पुरखं प्रकृतेः परमं ।। भागवत पुराण उ. 12. 8

² पारिजातहरण महाकाच्य - पंचम तर्ग - 10

³ पारिजातहरण महाकाच्य - पंचम सर्ग - 15

⁴ तांख्यकारिका - 2 शवेताश्वतरोपनिषद् 4/5

⁵ पारिजातहरण महाकाट्य - चतुर्थ सर्ग - 43

के संयोग के बारे में इस प्रकार कहा गया है - ऐसा ज्ञात है कि यह एक और संसार की प्रकृति जन्य मलिनता ही यमुना है और दूसरी ओर उस परम पुरुष की श्वेत विभूति ही गंगा है। इनके पदार बिन्द की प्रेमिका यह सरस्वती नदी इन दोनों को संहित कर रही है। काच्य के छठे तर्ग में मूल प्रकृति के बारे में इस प्रकार कहा गया है - इस नारायण की आठ पटरा नियां जो सांख्य शास्त्र प्रतिपादित आठ प्रकृतियों के समान है उनमें प्रधान मूल प्रकृति आप १ भगवान् श्रीकृष्ण ही है सांख्य की विकृतियों, के बाँरे में काट्य के 20 वें तर्ग में कहा गया है। जो चौबीत तत्त्व है, वह इत संसार के मूल है पुरुष में उनकी सात विभूतियां है, उसमें 16 हजार हुभूत भौतिकहु विकारों को कैद कर रखा है। कार्य से कारण का अनुमान बताते हुए कवि कहते हैं संसार की तभी शक्तियाँ से असाध्य संसार के अद्भूत विधान उत्पत्ति विनाश-शाली कार्य बिना कारण नहीं हो सकते, कार्य से कारण का अनुमान होता है जैसे घड़े से कूम्हार का । काव्य में कहा गया है - छोटे कारण से बड़ी प्रतिज्ञा क्यों हुई तो उपर्युक्त कारणों की लघुता या गुरताजीव के चित्तगण बोध का अनुसरण करती है। अतः सबकी गति समान नहीं होती। घर के प्रति कूलाल की अपेक्षा जैसे उसका पिता अन्य या सिद्ध कारण है इसी लिए ब्रह्मा जी जगत् कारण होते भी आपके द्वारा अन्यथा तिद्धि प्राप्त कर सही संसार के पितामह पद को धारण करते हैं । बड़े विवेक से प्रधान सत्ता की व्यापकता

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - पंचम तर्ग - 44

² पारिजातहरण महाकाच्य - ष्ठिठ सर्ग - 18

उ पारिजातहरण महाकाच्य - विंशसर्ग - 48

⁴ पारिजातहरण महाकाच्य - पंचम सर्ग - 7

⁵ पारिजातहरण महाकाच्य - द्यामतर्ग - 64

⁶ पारिजातहरण महाकाच्य - दशमसर्ग - 54

के आधार पर, नियति ने जगत में सम्बन्धों का ग्रथन किया है। यह सम्बन्ध ययि दो आश्रयों में रहता है किन्तु उन दोनों की तादातम्य सत्ता का भेदक नहीं होता तथा किसी को बढ़ा घटा कर नहीं जोड़ता। किन्तु औपाधिक आकृति के द्वारा जो दैत भासमान है उसे तो इस प्रकार के सही ज्ञान रहते भी विद्वानों को रखना ही होगा उसका विरोध करना उचित नहीं।

सत् ब्रह्म जो सबसे निरपेक्ष है उसका भी अद्भयत्वेन ज्ञान, अविद्या मूलक अज्ञान से अन्यथा भासमान, अतथ्य प्रपंप में बाधित ज्ञान के उत्तर अध्यवसाय, निज्ञचयात्मक ज्ञान में ही प्रमाणित होता है। तात्पर्य यह है कि जैसे रज्जु में सर्पज्ञान भूमात्मक है उसी प्रकार अद्वितीय ब्रह्म में सारा द्वैत प्रपंप भूमात्मक है। काव्य के दसवें सर्ग में पंचकोष्पात्मक ब्रह्म का निरूपण किया गया है - ये १ किसान १ जड़ अर्थात शास्त्रादि ज्ञान से शून्य होते हुए भी अपने किन परिश्रम से ब्रह्म सिद्धि के उपयोगी अन्तमय कोष्य को प्रपुर मात्रा में उत्पन्न करते हैं। चित्ररूप परमात्मा के बारे में बताते हुए किंच कहते हैं - ये सारे गुण या दोष्य बुद्धि में रहने वाले तथा बुद्धिगत विशेष्ण १ मेदक, रजसत्व आदि१ के विशेष्ण को भोगने वाले है जिसमें कोई विशेष्ण भेदक है ही नहीं ऐसे, चित्त स्वरूप परमात्मा में तो वास्तविक विशेष्ण विभाग ही नहीं है वह तो निर्लेप अद्धेत है। पारिजातहरण महाकाव्य में अना दिसद्ध चेतन निर्लिप्त पुरुष को ईवर कहा गया है – सांख्य शास्त्र

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - ब्रह्ठ तर्ग - 31

² पारिजातहरण महाकाच्य - सप्तमसर्ग - 38

³ पारिजातहरण महाकाच्य - दशम सर्ग - 20

⁴ पारिजातहरण महाकाट्य - एकाद्मा सर्ग - 87

वालों के मत से अना दि सिद्ध चेतन निर्लिप्त पुरुष ईश्वर है। जड़ा हिमका, त्रिगुणमयी उसकी प्रकृति ईश्वरीय चेतन्य से बिम्बित हो संसार की गुण दोष्मय सृष्टिट करती है। गुद्ध ब्रह्म की प्रकृति प्रतिच्छन्न हो बद्ध जीव बन जाता है। पारिजातहरण महाकाच्य में कृष्ण को मायाची कहा गया है – कृष्ण तो मायाची है इनकी माया तो विख्यात ही है जिसके वशीभूत होकर आप ही अज्ञान परम्पर से अपनी चेतना को मिलन कर रहे हैं। अखिलनायक भणवान के विषय में स्त्रैण बुद्धि करना भी आपका निजी स्वभाव को धोखा देना है क्यों कि वे तो उनकी सहज शक्ति रूप प्रकृतियाँ हैं, जिन्हें गुणों से रिज्जत करते हुए व्यवहारों का विधान करते हैं। अन्यथा इस निरंचन पुरुष को जगद्व्यवहार से क्या प्रयोजन।

पारिजातहरण महाकाट्य के एका द्या तर्ग में नार द, इन्द्र ते मगवान कृष्ण के कर्मयोग तथा ज्ञान योग के बारे में बताते हुए कहते हैं कि जो प्रमु, दिष्त दृष्टि वाले तुम्हारे तथा हमारे भी अध्कि उपकारार्थ तथा कर्मयोग तथा ज्ञान योगात्मक दोनों मार्गों की शिक्षा देने के लिए निजी माया ते ही जन्मना मनुष्य बने हुए हैं, अज्ञान ते ही, आप उस नारायण के उसर आक्षेप कर रहे हैं। उनकी निन्दा मूर्खता ही है। जो अभिनय कर अपनी बहुरंगी प्रकृति तथा सारे जगत् को निजी कलाओं से नचाता है।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - एकाद्या तर्ग - 72

² पारिजातहरण महाकाच्य - एका दक्षार्ग - 82

³ पारिजातहरण महाकाच्य - एकादासर्ग - 83

⁴ पारिजातहरण महाकाच्य - एकाद्मा सर्ग - 85

⁵ पारिजातहरण महाकाच्य - एकादश सर्ग - 86

का व्य में रुकिमणी को भिन्न-भिन्न मतों में भिन्न-भिन्न रूपों से कहा गया है - मेरे हिनारद के हैं मत से गुण लिंग आदि उपाधियों से रहित शुद्धान रूप परम ईश्वर स्वरूपिणी तुम्हों हो तुम्हें कोई है सांख्यमत वाले हैं प्रकृति कहते हैं । वेदान्ती तुम्हें हिचदुब्रहम्मह बतलाते हैं जो स्त्री पुरुष्य सामान्य का बायक है हैं वही तुम्हें माया कहकर भी प्रपंचित करते हैं । मीमांसक तुम्हें किया कहते हैं । योगदर्शन वाले तुम्हें तिद्धि मानते हैं और तार्किक तुम्हें बुद्धि इच्छादि ईश्वर के गुणों में गिनकर गुणात्मक बुद्धिरूप में देखते हैं । पौराणिक तुम्हें परमेश महिष्ठी पराम्बा कहते हैं । भाव यह है कि सर्वशक्तिशानिनी ईश्वर तुम्हीं हो ।

अवतार गणना पुराणों को दार्शनिक तत्व में महत्वपूर्ण स्थान रखती
है। वाहाहवतार को प्रमुखता देने पर भी विष्णु पर्व में एकार्णम का प्रसंग
मिलता है। हरिवंश में विष्णु के पौष्कर अवतार को आदि अवतार माना
गया है। विष्णु के नाभिक्रमल के प्रत्येक भाग में तमस्त ब्रह्माण्ड की कल्पना
पौष्करावतार के प्रतीकवाद की विशेष्टता है। इस नाभि क्रमल के प्रत्येक भाग
की विशेष्टता है। इस नाभि क्रमल के मध्य केसी दिव्य पर्वत । भविष्यपर्व के
अन्तर्गत विष्णु के पौष्कर प्रादुर्भाव के वर्णन में क्रमों से स्वतन्त्र, अव्यक्त कारण
रूप, नित्यब्रह्मण से निष्ठकल पुरुष्ठ की उत्पत्ति बतलाई गई है।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - घठत सर्ग - 41

² विष्णुपुराण - 1.2.3

उ हरिवंश पुराण - 3· 12· 4

⁴ ब्रह्म्म सम्बन्ध संबद्धमबद्धं कर्मिर्मृप । पुरस्ताद् ब्रह्मण संपन्नं ब्रह्मणो यददक्षिण्म् ।। अव्यक्तं कारणं यत्तन्नित्यं सदसदात्मकम् । निष्पनः पुरुषः तस्मात् संबभूवात्मयोनिजः ।।

पारिजातहरण महाकाट्य में भी यथा स्थान भगवान् कृष्ण के अवतारों का वर्णन किया गया है – कहीं – कहीं लीला से जलराधि पान करते तथा उतावली उठती लहरों पर जूब-जूब कर खेलते हुए निर्भ्यता से मन्द-मन्द रेंगते हुये बड़े-बड़े मीन्ष्मछिलयों श्रेष्ठतार भूत महामत्स्य की विडम्बना कर रहे हैं। नारद जी श्रीकृष्ण से कहते हैं – हे भगवन् ! आपकी ऐहिक लीला भी प्राकृतिक नियमों से रहित सर्वथा स्वतन्त्र है। अतः आपका सर्वोत्तर प्रभुत्वलौ किक व्यवहारों में भी छिप नहीं सकता। आपने मछली बनकर वेदों का उद्धार किया। किछा हो पृथ्वी को पीठ पर धारण किया, सूकर हो पृथ्वी को पैलाया, सिंह कपट्वामन बन त्रिलोक को दो पग में ही नाप लिया। तबस्वी ब्राह्मण का अवतार धारण कर बहुत बढ़े हुए श्रेष्ठात्रयश्र राज मण्डल को प्रमथित किया श्रेष्ठा श्रेष्ठा वार उजाइ डाला प्रिंग स्वयं क्षत्रिय राम होकर अपने ही अवतार उस परश्रुराम को पराजित कर ब्राह्मण कृतोत्पन्न लोक विजयी दशमुख रावण को समूल उखाइ डाला ।

हे सर्वेश । आज इस अवतार में भी, हाथ से उठाए छत्र के समान पर्वत शूगोवर्द्धन हैं को धारण करने वाले आप क्यपन में दावानल को जीते हुए यह प्रतीत करा चुके हैं कि आप किसी प्राकृत नियम के पराधीन नहीं अपितु सर्वथा स्वाधीन है फिर भी लौकिकता ही दिखा रहे हैं ।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - तृतीय सर्ग - 76

² पारिजातहरण महाकाच्य - पंचम तर्ग - 11

उ पारिजातहरण महाकाच्य - पंचम तर्ग - 12

⁴ पारिजातहरण महाकाच्य - पंचम सर्ग - 13

अगण कि अगण कि कि कि कि कि कि कि मिरी शरण लेने वालों का बेड़ा पार है किन्तु यह सन्देहा स्पद ही रह जाता है जब तक कि आपका अनन्त रेशवर्य अत्यन्त अलक्ष्य है। यह सन्देह मेरी और से किसी को न रह जाए मानो इस अपने दोष्ठं से बचने के लिए आप बड़े-बड़े लोको त्तर बलवान् हिरण्याक्ष आदि दैत्यों को गर्वित कर निजी अवतारों से खेलते हुए उन्हें मिटा देते हो। भाव यह है कि अवतार रेशवर्य अत्यन्त अलक्ष्य नहीं रहा। इतने पर भी यदि जीव, अपने उद्धारार्थ आपकी शरण न आरं तो आपका क्या दोष्ठ है। यही आपके अवतारों का रहस्य है।

पारिजातहरण महाकाच्य के द्वारता तर्ग में भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं। इस लक्ष्मी के द्वारा ही वद्या में किया गया है में विविध अवतारों को वहन करता हूँ। ईधारण करता हूँई जब भगवान् कृष्ण का वाहन गरूड़ आकाशा में उड़ रहा है तब लोग सोचते हैं - शैष्ट्रम काल में वृज में असुरों को मारना इस दुर्घटना को कितनी बार सुना गया, आज भी क्या भगवान् उन्हीं राक्ष्मों को मार रहे हैं।

काट्य के 20 वें तर्ग में ऋषि कश्यप भगवान कृष्ण की स्तुति करते हुए उनके अवतारों के रहस्य को बता रहे हैं - गदा, पद्म, शंख, चक्र ते मीना दि अनेक अवतारों ते क्रीड़ा करने के लिए न दिखाई पड़ने वाले भी दिखाई पड़ने वाले दृश्य स्वरूप होते हुए भी ज्ञान के धाम के रूप में तुम्हारी आत्मा होती है,

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - पंचम सर्ग - 14

² पारिजातहरण महाकाच्य - द्वादश सर्ग - 10

उ पारिजातहरण महाकाव्य - द्वाद्वा सर्ग - 34

तुम्हें नमस्कार हो केमाग के पन पर शयन है जिसका अपनी नाभि से उत्पन्न कमल, कमल से उत्पन्न ब्रह्मा, ब्रह्मा से उत्पन्न जो तेज है वह तेज तुम्हारा है। अनवस्था रूपी ग्रह से ग्रस्त भूमार की धारा के लिए कूमावतार धारण करने वाली माया के तुम आश्रय हो।

पाक विज्ञान

रू विमणी के यज्ञ के प्रसंग में कवि ने अपनी पाकशास्त्र सम्बन्धिनी कुशनता का परिचय दिया है। पारिजातहरण महाकाच्य के चतुर्थ सर्ग में इसका वर्णन किया गया है।

करण, भ्यानक, वीभत्स इन रहीं से रहित शेष छः काट्य के रहीं के समान छः रह के अपूर्व यज्ञांगभूत भोजन से ब्राह्मणों को तृप्त किया । अपने प्रेमाधिक्य से बनाए दिट्य भोगों को भी अतिक्रमण करने वाले अनेक् रूप में बने भिन्न-भिन्न उत्पन्न करने वाले इन्द्रियों के तर्पक रहीं के समान गौरस हुद्य, दही आदि से बने हुये पदार्थों को भोजन में दिया ।

पाक संस्कार विशेष से अगणित प्रकार वाले लेह्य, चोष्य, पेय आदि पदार्थों से युक्त असाधारण वस्तुरं भोजन में दी गई।

[।] पारिजातहरण महाकाट्य - विंश सर्ग - 30

² पारिजातहरण महाकाच्य - विंश तर्ग - 3।

उ पारिजातहरण महाकाच्य - चतुर्थ सर्ग - 60,61

⁴ पारिजातहरण महाकाच्य - चतुर्थ सर्ग - 62

इस प्रकार ब्राह्मणों तथा अन्य सुद्दु बान्ध्मों एवं अन्न चाहने वाले अन्य लोगों को भी उनकी इच्छानुसार भोजन दे तृप्त दिया । उन रूकिमणी जी ने, भोज्य-पदार्थों में क्या रहा जो भोजन में नहीं दिया तथा भोजन कराने योग्य कौन थे जिन्हें तृप्त नहीं किया । इसी प्रकार भोजन करने वाले बह कौन सी वस्तु थी जिसे अपूर्व नहीं माने अर्थात इस प्रकार सभी सन्तुष्ट थे।

पक्षिविज्ञानः

गरुड़ वर्धन के प्रसंग में स्थान-स्थान पर किव ने ऐसी सूक्ष्म बातों को उल्लेख किया है जो उनके पिक्ष विज्ञान की विशेष्ट्रताओं की द्योतक है।

बारहवें तर्ग में किव गरूड़ के स्वभाव का पूर्ण से परिचय देते हैं।
गरूड़ भगवान कृष्ण का वाहन है। बलपूर्व इन्द्र के गौरव को निरस्त करके
उन श्रीकृष्ण ने पारिजातहरण में उद्यम किया। हिर की रक्षा करने वाले
अद्भुत पराकृमभाली गरूड़ को भगवान् अपनी स्मृति में लाए। याद करते ही
श्रीकृष्ण के मन का अनुगमन करने वाले मार्ग से पखे के पड़फड़ाने की ध्वनि से
निवेदित आकाश में उड़ता हुआ गरूड़ मेघ खण्ड के समान दिखाई दिया गरूड़
के पंखों का वर्णन चरणों का वर्णन, चींच का वर्णन तथा पूरे भरीर का वर्णन
भी किया गया है – वेग के कारण हिलते हुए पंखों से उत्पन्न वायु से गिरे
हुए पंखों के समूह को नीचे गिराता हुआ आकाश में ओलों की वर्षा करता

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - चतुर्थ सर्ग - 63

² पारिजातहरण महाकाच्य - चतुर्थ सर्ग - 64

हुआ मेघ जैसा दिखाई दिया । उड़ते समय प्रसारित विशाल परें के रूकने से सूर्य के प्रकाश के आधिक्य से अपने प्रकाश से व्याप्त दिशाओं से आकाश को उस गरूड़ ने पहले से भी अधिक प्रदीप्त कर दिया । अपने भारी पंखों से गरुड़ ने सूर्य, चन्द्रमा ताराओं संबकों छिपा लिया । चरणों की अंगुलियों को पंचिका के भीतर किए हुए बहुत बड़ी शाखा को पकड़े हुए चंचल चाँच में ताँप के महान् शरीर को लटकाए हुए महान शरीर वाला वह गरूड़ भगवान के सामने उतरा । गरूड़ ने भगवान कृष्ण से मनुष्यों की वाणी में बोलने से पहले उनका चरणों में प्रणाम किया। फिर मनुष्यों की वाणी में बोला -पुष्यक विमान के होते हुये भी मैंने पृथ्वी पर इस लोक में आपकी अनुकम्पा को आपके द्वारा बिखेरा हैं। परमपूज्य ! वह मेरा शरीर और मेरा मन तुम्हारे चरण-कमलों ते क्षण भर के लिए भी अलग नहीं। गरूड भगवान कृष्ण की स्तुति करते हुए कहता है - हे निर्विकार ! तुम्हारी मानव के रूप में जो पद और चेष्टाएं हैं वह हम लोगों को प्रसन्नता देने वाली है। पवित्र और अनिर्मल होने पर भी समुद्र से अलग शरत्सरोवर सरोज सहित सुशो भित होता हैं। गरूड़ भगवान कूष्ण के वेदान्तमय रूप को स्पष्ट करता हुआ कहता है-हे अनन्त । नूतनता के व्यापार से नवीनता ही रमणीयता का आश्रय है।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - द्वादश सर्ग - 25-31

² पारिजातहरण महाकाच्य - द्वादश तर्ग - 34,35,36

³ पारिजातहरण महाकाव्य - द्वाद्या सर्ग - 37

⁴ पारिजातहरण महाकाच्य - द्वादश तर्ग - 38

⁵ पारिजातहरण महाकाच्य - द्वादश सर्ग - 39

है अनधीश ! §जो स्वयं ईश्वर है जिसका कोई ईश्वर नहीं है है तुम्हारे प्रकृति के पंचीकरण से आकाशादि पंचक इस प्रपंच से उत्पन्न हुए हैं । अलग-अलग करके लाखों अद्भुत जगत् अभिन्न लगता हुआ देखने वालों को भेद पैदा करता है । दूर से गिरी हुई जल की बूँदे मिद्टी में, अनिल में या पृथ्वी में और कहीं लीन हो जाएं किन्तु परमार्थतः वह पृथक नहीं है उसी प्रकार तुम एक जगत् के रचयिता हो । हे भूवनैकनाथ ! जिस भवन में तुम भूमण करना चाहते हो मुझे वहीं की आजा दो क्या मैं अपने चरण चंचुंओं से पृथ्वी को छेद डालूँगा या तुम्हारे चरणों का वाहन करने वाले स्वर्ग को आश्रय दूँ अर्थात स्वयं को जाऊँ।

इत पर भगवान गरूड़ ते बोले - हे विहगेन्द्र ! तुम्हारा मुझते अलग रेशवर्य नहीं है । मैं इन्द्र के नन्दनवन में विहार करने की इच्छा रखता हूँ।

धर्म मी तिशास्त्र ज्ञानः

नीतिशास्त्र तथा धर्मशास्त्र सम्बन्धी भावों का वर्णन पारिजातहरण महाकाच्य में अनेक स्थानों पर किया गया है। पारिजातहरण महाकाच्य में स्थान-स्थान पर नीतियों के बारे में कहा गया है। नारद भगवान् श्रीकृष्ण ते कहते हैं – हे भगवान् ! बढ़े मान वाली विभूति, सामनीति ते नहीं शान्त होती अर्थात् सम्मानीय रेशवर्य के द्वारा बड़े अभिमान वालों

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - द्वादश सर्ग - 40

² पारिजातहरण महाकाच्य - द्वादश तर्ग - 42

उपारिजातहरण महाकाच्य - दोद्या सर्ग - 54

⁴ पारिजातहरण महाकाच्य - द्वाद्या तर्ग - 56

को समझाकर शान्त कर लेना किठन है। इन्द्र भी ऐसे ही हैं, रहा दान द्वारा शान्त करना, वह धन चाहने वालों को प्रिय हैं, इन्द्र तो सकल कामना पूरक कल्पवृक्ष ही पाले हैं, वहाँ दान का क्या महत्व ! भेद नीति भी किठन है, क्यों कि जिनका भेदन करना है वे आपसे भी भिन्न हैं जैसे असुर फिर आखण्डल में दण्डनीति भी कहाँ तक उचित है किसी भी नीति की वहाँ उपयोगिता नहीं है ।

नीति वेदियों के नीति के यह वारों अंग अध्कितर महुओं के प्रति
प्रयोग योग्य होते हैं किन्तु जहाँ सौहार्द के द्वारा गुणान्तर हुस्वार्थ लिप्सा
आदिहूं छिपा रखे गए हैं ऐसे मित्र के विषय में कहीं भी इनका उपयोग
गुणादायक नहीं है।

अपने अर्थ की सिद्धि को लक्ष्य बनाकर सुन्दर बुद्धि योग से जो -जो प्रयत्न किए जाते हैं, इससे भिन्न कोई नीति नहीं है। एतन्मूलक अर्थात् इसी के साध्म शक्ति रूप तीन शक्तियां छः गुण, चार-साध्म, तीन सिद्धियां एवं तीन उदय इत्यादि विषयों को एकस्थ करने वाली उक्तियों के संगृह गृन्थ ही नीतिशास्त्र कहे जाते हैं। अच्छे लोग साम, दान, दण्ड, भेद रूप चार उपायों से ही सारे पारस्परिक जगद्व्यवहारों का पालन करते हैं, ऐसा नीतिशास्त्र में कहा गया है। नीतिशास्त्र में कहे गए वाक्य को

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - दशम सर्ग - 42

² पारिजातहरण महाकाच्य - दशम तर्ग - 43

उ पारिजातहरण महाकाच्य - एकादश सर्ग - 65

पारिजातहरण महाकाच्य में इस प्रकार कहा गया है - अपने अधिकार की सीमा के भीतर जो उद्योग करते हैं वे लोग तो प्रशंसनीय गुणों से उक्त सिद्धियाँ प्राप्त करते हैं किन्तु जो अधिकार सीमा का लंघन करने वाले बुद्धि १ विवेक १ हीन है वे अर्थ १ लौ किक १ सम्पत्ति १ तथा परमार्थ से भी च्युत हो जाते हैं। पूर्ण प्रभूत्व प्राप्त करके भी जिसने विवेक का अपनि नहीं किया ऐसे पुरख ते क्या लाभ है १ उसका जीवन व्यर्थ ही है। यदि तमुद्र की क्षारता तो वह भरा रहकर भी क्या किया । यह प्रभुता पुरुष को मत बना देती है, उसकी शानित के लिए विवेक बना हुआ है। उस विवेक के बिना नैतिक शिद्धि के लिए मानवों के उद्योग का केवल श्रम मात्र पल है या वह सर्वथा निष्फल है। विद्या श्वास्त्र ज्ञान । प्रभूता तथा उपमा से नीतिज्ञों की सर्वतः कार्य सिद्धि मानी जाती है। सज्जनों की रक्षा करने वाली मानवता बुद्धि को भूषित करती है। इस बुद्धि को पूर्ण-रूप से पारिशी लित १वात शास्त्रशो भित करता है, उस शास्त्र ज्ञान को अलंकृत करने वाला जय, नैतिक व्यवहार है। धर्मशास्त्र के बारे में बताते हैं इन्द्र नारद से कहते हैं-अमित प्रमाण वाले मुनि १महात्मा १ नीच कहकर जिनके गृहण का निडेश्च करते हैं उनकी गिनती की सांख्यपूर्ति बिना विरोध स्त्री वशीभूत पुरम्ब करता है अर्थात स्त्री के वदा में रहने वाले मनुष्यों के अन्न खाने में भी पाप धर्मशास्त्रकारों ने बताया है। अतिथि के यथासत्कार की शिक्षा एक बड़ी प्रिक्षा है, जो इस पारिजातहरण महाकाव्य से मिलती है। भारतीय सुरकृति में अतिथि का बड़ा महत्व है " उत्तम ते उत्तम वर्ण के यहाँ भी

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - एकादश सर्ग - 65

² पारिजातहरण महाकाच्य - एकादश सर्ग - 66-69

³ पारिजातहरण महाकाच्य - एकाद्या सर्ग - 73

कोई अतिथि वह चाहे कितना ही नीच हो यदि आए तो उसकी पूजा करनी चाहिए। कहा भी है -- "अतिथि धर्म रूपोहि गृहस्थानाँ गृहे-गृहे।" अतिथि की उपेक्षा करने से कितना हानि होता है, स्वयं कठोपनिषद में लिखा है:-

"आग के समान ब्राह्मण अतिथि घर में प्रवेश करता है, अच्छे लोग उस अतिथि की पूजा करते हैं, अतः है यम। इस ब्राह्मण अतिथि की शानित के लिए जल लाइए।"

अतिथि की ट्युत्पत्ति है - "ना स्ति तिथियंस्य स अतिथिः जिसकी कोई तिथि नहीं है अर्थात जो किसी दिन भी घर आ सकता है। जिस प्रकार अग्नि को शान्त करने के लिए जल का प्रयोग होता है उसी प्रकार अतिथि रूप अग्नि को शान्त करने के लिए जल, आसन आदि आवश्यक है। अतिथि साक्षात्कार ईश्वर है। कहा भी है: - "अतिथि जिसके यहां से निराश चला जाता है वह उस घर वाले का पुण्य ले लेता है और पाप दे जाता है।

अतिथि सत्कार के विषय में धर्म शास्त्रकारों ने बहुत कुछ कहा है। भगवान् मनु ने तो यहां तक कहा है कि "तृण, भूमि बल तथा सत्य एवं प्रियवाणी ये चार वस्तुरं सज्जनों के घर से कभी नहीं जाती।

[।] उत्तमस्यापि वर्णस्य नीचो ५ पि गृहमागतः । तस्य पूजा विधातव्य सर्वदेवमयो तिथिः ।। –भारतीय संस्कृति

² कठोपनिषद - प्रथमावल्ली - 17

उ एकरात्रं तु निवसन्नितिथिब्राहिम्णः स्मृतः । अनित्यं हि स्थितौ यस्मान्तस्मादितिथि रूच्यते ।। मनुस्मृति – 3-102

⁴ मनुस्मृति - 3/101

पारिजातहरण महाकाच्य में अतिथि सत्कार से बढ़कर दूसरा कोई धर्म नहीं माना गया है तथा नारद को गृहत्थी का पालन करने वाला बताया गया है।

रू किमणी सहित भगवान कृष्ण ने स्वयं अपने हाथ से नारद के पाद-प्रधालन आदि किए । क्यों कि अतिथि से बद्कर गृहस्थ का दूसरा धर्म ही नहीं है ।

मनु ने गृहस्थाश्रम का सब आश्रमों का आश्रयदाता, ज्ञानदाता तथा अन्नदाता बताते हुए उसे सबसे श्रेष्ठ माना है और उसके सबसे प्रयत्नपूर्वक पालन को स्वर्गेच्छुं का कर्तव्य बताया है।

हे मुनिवर १ नारद१ । अपने अभीष्ट वस्तु की उत्पत्ति ही सभी धर्मों का अन्तिम परिणाम है। गृहस्थी का पालन करने वाले हमारे सम्मुख आपने, अपने दर्शन से आज, वही उपस्थित कर दिया अभिग्राय यह है कि गार्हस्थ्य सम्बन्धि हमारे सभी धर्म आज आपके दर्शन से सफल हो गए। इससे बद्दकर हमारी अभीष्ट वस्तु क्या होगी।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य – चतुर्थ तर्ग – 104

यथा वायु तमा श्रित्यवर्तन्ते तर्वजन्तवः । तथा गृहस्थाश्रमा श्रित्य वर्तन्ते तर्वाश्रमाः । यस्मा त्त्रयो प्याश्रमिणो ज्ञानेना न्नेन चान्वहम् । गृहस्थे नैवधार्यन्ते तस्मा ज्जेष्ठ ठाश्रमो गृही ।। त तन्धार्य प्रयत्नेन स्वर्गमक्ष्य मिच्छता । सुखं चेहेच्छता नित्यं यो धार्यो दुख्नि न्द्रियैः मनुस्मृति 3/77-79

उ पारिजातहरण महाकाच्य चतुर्थ सर्ग - 109

गृह शब्द का अर्थ गृहीत होने वाला या गृहण करने वाला होता है। जिसे सज्जन १ महात्मा १ अनुगृहीत करते हैं या अपनी सेवा सत्कारादि गुणों से जो स्वयं महात्माओं को अपनी ओर खींच लेता है वही वास्तव में गृह है। आपके आ जाने से वैसा ही गृह यह हो गया। अपने रहने के स्थान को गृह नहीं कहते।

गृहस्थ से उत्तर कुछ मी अपेक्षा जिसे है वह अतिथि मात्रिमिश्च है । उनका को छ । असत्कारादि सामग्री भूमि सदावृत । आश्रम १ गृहस्थी । किर वाले हम लोगों को महात्माओं का शुभ दर्शन इस अधिकारी को सौंपने वाले दैव का दिया । उन्नति का प्रमाण रूप । पुरस्कार है ।

जो मनुष्य इत गृहाश्रम के तभी तुख दूतरों को न भुगा कर अपने ही भोगते हैं। वे लोकोपरारिणी तंस्था के तर्वस्व हड़प जाने वाली महान् पापी है।

गृह की कृतार्थता प्रत्येक जीवों की सेवा से ही होती है, पिर आप जैसे निरपेक्ष महात्मा जिसकी अपेक्षा कर दर्शन दे, तब तो कहना ही क्या है।

[।] पारिजातहरण महाकाट्य –चतुर्थ सर्ग – 112

² पारिजातहरण महाकाच्य - चतुर्थ सर्ग - 113

³ पारिजातहरण महाकाच्य - चतुर्थ सर्ग - ।।4

⁴ पारिजानहरण महाकाच्य - चतुर्थ सर्ग - 115

इन्द्र, नारद से कृष्ण की नीतियों के बारे में बताते हुए कहते हैं : जिन कृष्ण का मन केवल स्वार्थ में ही सर्वथा डूबा है अपनी सिद्धि १उन्नति है के लिए दूसरों को जो दबाने की ही ताक में रहता है, वह सन्धि विग्रह आदि नीति गुणों को व्यक्तिथत गुण मानकर नहीं प्रयुक्त करता अर्थात जिसकी उपयोगिता मान लेता है। कभी सन्धि कभी विग्रह, आदि का मनमाना अव्यवस्थित प्रयोग किया ही करता है। जो अपने तीन प्रकार के उद्य शृवृद्धि, क्ष्य, स्थान रूप श्रु अथवा प्रमृत्व मंत्र, उत्साह शक्ति, से फलित अभ्युद्य की चाह में रहने वाले कृटिल नीति परायण है, अपनी सिद्धि के लिए उनके व्यवसाय बिना किसी नियन्त्रण के उपर्युक्त तीनों शाक्तियों के बढ़ाने या अन्यगत के विनष्ट करने के लिए ही हुआ करते हैं। वह ओ अपनी सहायता से नरकासर को दबाने के लिए उद्योग करने का आदेश दे रहे हैं यह भी रहत्यपूर्ण है । अर्थात इसमें कूछ छिपी बात है । वह यह है कि अपनी शक्ति के उत्कर्ध को प्रधान रूप से रखते हुए छली, बहु को दूसरे प्रबल के साथ मुठमेड़ करा कर कुचलता देते हैं यह मेद-नीति हैं। इस समय भौमासुर नामक शत्रु के साथ वैर हो जाने से विषाद में पड़ा मुझे सर्वधा असमर्थ मनन हनीति जैसी है कि जब शत्रु दुःख में पड़ा हो तो उस पर चढ़ाई कर देनी चाहिए १ इसके अनुसार हठात् मुझे ह्र इन्द्र को परास्त कर स्वर्ग का धन ह्यारिजात वृक्ष रूप रत्न हे लूट लेना चाहते हैं। नीति के अनुसारमुद्ध पर चढ़ाई कर देना चाहते हैं।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - एकादश सर्ग - 53

² पारिजातहरण महाकाच्य - एकादश सर्ग - 54

उ पारिजातहरण महाकाच्य - एकादश सर्ग - 55

⁴ पारिजातहरण महाकाच्य - एकादश तर्ग - 58

⁵ पारिजातहरण महाकाट्य - एकादश सर्ग - 59

ज्योतिष्शास्त्र ज्ञानः

पारिजातहरण महाकाच्य में ज्योतिष्य शास्त्र के सिद्धान्तों का भी कहीं-कहीं उल्लेख मिलता है। काच्य के द्वितीय सर्ग में बताया गया है जैसे कोई ज्योतिषी ब्राह्मण, किसी धनी व्यक्ति के यहाँ शकुनों है पुश्नों के द्वारा सत्पुत्र की उत्पत्रि बनाकर रत्न आदि पारितो धिक प्राप्त करके जाता है, उसी प्रकार नक्षत्र मण्डल का शासक हुँ ज्यौ तिष्ठा-शास्त्रज्ञ हुँ चन्द्रमा प्रभात काल में शकुन १ पिक्षयों १ के कलरव से सूर्यों दय की सूचना दे विदाई के रूप में मिली हुई ताराओं को साथ लिए चला जा रहा है । एकान्त नीरव को पमवन के भीतर कोध से लाल तथा स्वेद के बुँदों से कलित आकार वाली वह सत्यभामा. चन्द्र ताराओं से मण्डित प्रदाष की रक्त प्रभा से अनुरंजित आकाश भूमि सी भीषण दिखाई पड़ रही थीं। काट्य के बारहवें तर्ग में जहाँ पर मीषण श्रीकृष्ण के पराक्रम का वर्णन किया गया है वहाँ पर बाँयी आँख का पहकना शुभ माना गया है। "क्रोध के कारण आतुओं से भरी हुई श्रीकृष्ण की बाँघी आँख फड़कने लगी और शुखदर्शि उनकी दाहिनी मुजा जिसमें सुदुर्शन सुशो मित हो रहा था, फ्हकने के बहाने विजय का अनुमोदन करने लगीं। भगवान् कृष्ण गरूड़ से कह रहे हैं कि रात्रि को क्षण भर में ही बिता दो । जब तक भगवान् सूर्य उदित होते हैं, वहीं शुभ समय है। जब अपना नक्ष्म सूर्य सुशी भित होता है, तुम्हारे उड़ने के लिए सूर्यों द्य तुम्हारा महोदय होगा।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - द्वितीय सर्ग - 8

² पारिजातहरण महाकाच्य - तप्तम तर्ग - 5

³ पारिजातहरण महाकाच्य - द्वाद्यां सर्ग - 24

⁴ पारिजातहरण महाकाच्य - द्वादाशर्ग - 57

तंगृहीत शोभा वाले श्रवणन क्ष्म, आदिम नक्ष्म आदि इस समय की अपेक्षा करके विलम्ब हो गई है १अथात् इस नक्ष्म में न जा सकने के कारण विलम्ब हो गई है। गिनती में चन्द्रमा अपने लिए १ जाने के लिए १ इस समय शुभ दसग्न आठवें सिद्धि से युक्त हैं।

चित्रात्मक ज्ञान:

काट्य में जहां-जहां वस्तु वर्णन मिलता है वहां कवि की चित्रात्मकता हिष्टगोचर होती है। वस्तुओं का बिलकुल सजीव चित्र कवि ने अपने काट्य में खींच दिया है।

द्वारिका वर्णन ते:

चित्र रूप में तीनों लोकों की आकृति लिए समुद्र से घिरी यह पुरी सर्वजगदाश्रय भूत नारायण के शरीर को भी धारण करती हुई, उनके श्री अंग से अपने आपको बद्रकर सिद्ध कर रही है। जगत् के कला कौ शल के सार से शो भित होने वाली यह पुरी मणिशणों से खियत तोरण मालाओं के किरण जालों से माना लक्ष्मी के द्वारा नीराजन प्राप्त कर रही है अर्थात इसके चारों और फैली हुई तोरणों की का न्तिमण्डली ऐसी प्रतीत होती है जैसे साक्षात् शोभा इसकी आरती उतार रही हो। इस पुरी के जलयन्त्रागार में चक्राकार नाचते हुए पट्वारों पर तनी हुई जल चादर रूप, शरत्कालीन बादलों के भीतर से टपकते

[।] पारिजातहरण महाकाव्य - द्वादश तर्ग - 58

² पारिजातहरण महाकाट्य - प्रथम सर्ग - 7,8,9

हुए मोती के आकार के बिन्दुओं पर लुभाए हुए मयूर चातक आदि पक्षीगण बराबर इसे धेरे रहते हैं।

इस पुरी के बाजार क्य-विक्यार्थ आने जाने वाले मनुष्यों के कोलाहल से युक्त है और धनी दुकानों में सजाई गई विविध प्रकार के बहुमूल्य रत्नरा प्रियों को धारण करता हुआ अनेकों रत्नकरों को भी नीचा विख्ञाता है। जिस प्रकार शब्द शास्त्र के विद्वान सूत्रवृत्ति आदि के विशेष्ठ विधान रूप साधनों से पटादि शब्दों के नाना प्रकार के रूपों की कल्पना किया करते हैं इसी प्रकार इस पुरी के उत्कृष्ट कला मर्मन्न शिल्पी गणसूत करधा आदि के व्यवहारों और ताने बाने आदि प्रकार विशेष्ठ से विविध वस्त्रों का निर्माण करते हैं। यह पुरी यन्त्रों के व्यवसाय से शोभित है। इस पुरी में कहीं राजनीति सम्बन्धी विशेष्ठ मन्त्रणार्थ अधिकारियों की बैठक विशेष्ठ रूप से सजायी गई है। कहीं योदाओं के युद्ध कला सम्बन्धी कौशल का प्रदर्शन हो रहा है। कहीं कुशल शिल्पयों की कलाओं की प्रदर्शनी सजायी जा रही है।

दारिकापुरी के राजमहलों का वर्णन भी किव उमापति द्विवेदी का चित्रात्मकता का प्रतीक है। इस राजमहल में कहीं तो युवक वृन्द की क्रीड़ा कौशनादि पूर्ण आनन्दमय व्यवहार चल रहा है। कहीं किसी सकान्त प्रान्त में पात्रवंचर समुद्र की लहरों का कोलाहल पूर्ण गान हो रहा है।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - प्रथम सर्ग -16

² पारिजातहरण महाकाच्य - प्रथम सर्ग - 24, 25

उपारिजातहरण महाकाच्य – प्रथम तर्ग – उ।

कहीं प्रत्येक दिशाओं की अप्सरार्श नाय रही हैं तथा कहीं परम निपुण या दवों की कौरेल सजकर बैठी हुई है। जो अन्तः पुर य-दन और मोती के यूने से जिस पर यूना कली की गई है, जो विमानों से भरा तथा सप्तमौम प्रासादों से भासमान है तथा जो अष्टागन्ध की अधिक मात्रा से सम्पादित अनेक रंगों से यित्रित सर्वथा प्रिय हैं। कहीं आनन्द भवन मयूर नृत्य कर रहे हैं। कहीं कला बाज चबूतरों की कला बाजी करा-कराकर नवसुव तियां उल्लब्सित हो रही हैं। जो राजभवन बहुत उँचा है तथा स्वच्छ विभागों से जड़ा है एवं देवताओं से सेवित है। जो राजमवन रत्नमय वेदियों से भूषित तथा सुधमानामक देव सभा मण्डब से सज्जत हैं।

पारिजातहरण महाकाट्य के तीसरे सर्ग में द्वारिका से रैवतक पर्वत की यात्रा का वर्णन किया गया है यद्यपि यह कोई विशेष्ट्रा यात्रा नहीं थी किन्तु यह रीति थी कि महाराजों की सपरवार यात्रा ससैन्य ही होती रही । इस प्रकार कवि की इस यात्रा का सांगोपांग वर्णन उनकी चित्रात्मकता को प्रदर्शित करता है ।

काम के पिता भगवान कृष्ण का यह यात्रोत्सव असंख्य काबुली घोड़ों से अत्यधिक सुभो भित हो रहा था । सोने की अमारी एवं जड़ाऊ

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - प्रथम सर्ग - 45

² पारिजातहरण महाकाच्य - प्रथम सर्ग - 48,49

उ पारिजातहरणं महाकाच्य - प्रथम सर्ग - 51

⁴ पारिजातहरण महाकाच्य - प्रथम सर्ग - 53

⁵ पारिजातहरण महाकाच्य - प्रथम सर्ग - तृतीय सर्ग

⁶ पारिजातहरण महाकाच्य - तृतीय तर्ग - 8

रंग बिरंगे जूनों में जड़े मणिणणों की प्रभा ही जहां विद्युत और इन्द्र धनुष की छटा दिखा रही है मद की वर्षा करती हुई घन घटा के समान गर्जों की घटा चल पड़ी । इलेंघ के द्वारा भगवान कृष्ण के कारण शरीर में भी सभी विशेष्ण संघटित होते हैं जैसे - भगवान सहनशीलों में धुरन्धर अर्थात अग्रगामी है तथा श्री नामक लक्ष्मी से उल्लिसित एवं चक्रधारण करने वाले नित्य है। पर्वत पर बैठे सिंह के समान सजे रथ पर बैठे कृष्ण चंचल मृग के समान चपल चेष्टा वाले लोचनों से शो भित हो रहे थे। भगवान् कृष्ण की रूपमहिमा का वर्णन करना भी उनकी कलात्मकता का प्रतीक है। भावान के स्वभावतः इयाम-विशाल वक्षस्थल में श्वेतवर्ण कौरत्म मणि की छवि,श्याम रंग के नभस्थल में अत्यधिक प्रकाशमान भगवान भारकर के प्रभा मण्डल का अनुकरण कर रही थीं। घने अन्धकार के मेदन कर, उद्याचल के शिखर पर आसीन सूर्य की भाँति भगवान के कर कमल को शो भित करने वाला यह चक्र सारे शत्रुओं को कॅपाता हुआ भगवान की तौगुनी शोभा बढ़ा रहा है । उत्प्रेक्षा अलंकार के माध्यम से कवि भगवान कृष्ण की रूप महिमा का वर्णन कर रहे हैं - दैदी प्यमान रत्न जाल से जड़ा हुआ कवच को धारण किए हुई मगवान की शरीर नाना प्रकार के फ़्लों से लदे लताओं के जान से आच्छा दित श्याम तमान तरूवर सी दिखाई दे रही थीं। नाना प्रकार के रंग विरंगे मणियां ते जड़ा भावान का मेघडम्बर छत्र सर्वथा अतुलनीय है।

। पारिजातहरण महाकाच्य - तृतीय मर्ग 🛶 👢

2 पारिजातहरण महाकाच्य – तृतीय सर्ग – 15

उ पारिजातहरण महाकाच्य - तृतीय तर्भ - 17

4 पारिजातहरण महाकाच्य - तृतीय सर्ग 20 IABAD.

5 पारिजातहरण महाकाच्य - तृतीय सर्ग - 24

6 पारिजातहरण महाकाच्य – तृतीय सर्ग – 27

7 पारिजातहरण महाकाच्य – तृतीय सर्ग – 42

वह रैवतक पर्वत नाना प्रकार की आकृतिवाली विलाओं के संघात से सजा गेर आदि विविध धातुओं ते रंजित थी । पर्वत पर कहीं तथान-तथान पर छल-छल करते इरने बह रहे थे, तो कहीं स्वच्छन्द मद माती विहंगमण्डली यहचहा रही थीं, कहीं भांति भांति के वृक्षों की श्रिणियां थीं। उपत्यका नीचे की भूमि हसमुद्र की उँची उछ्लती तरंगों से टक्कर लेती झलक रही है तथा अधित्यका ई उपर की भूमिई ते बर-बर् बरने वाले बरने बर रहे हैं, ऐसा अत्यन्त दर्शनीय वह पर्वत देखते ही बनता था। स्वभावतः प्रकाशित होने वाली महौं घिथां की प्रभा से प्रदीप्त हुई इस पर्वत की गुफार, कानों को प्रिय लगने वाले किन्नर, किन्नरियों के गीत भगवान के रथ की धूरी के शब्दों को रोक देरहे थे। काम को जगाने वाली पर झूक झुक कर उठती हुई प्रिय के आ लिंगन की चैष्टा करती सी दिखाई दे रही थीं। रथ से उत्तर कर दोनों अोर से झुकी कोमल लताओं से पूजोपहाररूप बरसार गरे, रंग-बिरंग पुष्पों से रंजित स्वच्छ शरीर वाले शोभमान उन कृष्ण ने प्राकृतिक पहाड़ की विष्म भूमि को स्कोमल पांव से पार किया गिरि पिखर से गिरती, अपनी झईर ध्वनि से इईर नामक बाजे को भी मात करती आनन्दोल्लास से उच्चै उछलती लहरों में लहराती निर्झिरिणियों को देख भगवान प्रतन्न हो रहे थे। भगवान कृष्ण श्याम तथा विस्तीर्ण वक्ष स्थल पर मोटे दानों वाली मोतियों की माला धारण

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - तृतीय सर्ग 42

² पारिजातहरण महाकाच्य - तृतीय सर्ग 44

उ पारिजातहरण महाकाच्य - तृतीय सर्ग 45

⁴ पारिजातहरण महाकाच्य - तृतीय सर्ग 47

⁵ पारिजातहरण महाकाच्य - तृतीय सर्ग 48

⁶ पारिजातहरण महाकाच्य - तृतीय तर्ग 55

⁷ पारिजातहरण महाकाट्य – तृतीय सर्ग 59

किए हुए थे। समुद्र वर्णन का प्रसंग भी किंदि उमापति के चित्रात्मक ज्ञान को प्रदर्शित करता है। ताराओं के समान प्रस्फुट केन मेगों को तथा उसी रूप श्रेष्ठ रचेत संखों एवं सुक्तिओं को धारण करता हुआ समुद्र ऐसा जान पड़ता था जैसे जल के ब्याज से पृथ्वी पर पड़ा आकाश का कोई एक भाग है। वह समुद्र रंग बिरंग रत्न एवं जल जन्तुओं से चित्रित आश्रम वाला था जैसे पृथ्वी रूप हिथा के पीठ पर पड़ा रत्नादि से चित्रित झूल हो।

यज्ञ की वेदियों का बड़ा ही चित्रात्मक वर्णन कि ने अपने
पारिजातहरण महाकाच्य में किया है — कारीगरों द्वारा अनेक सुन्दर विभिन्न
रंगशाली चांदिनियां सजायी गई तथा चारों और सुवर्ण के बने केले के खम्मे खड़े
कर दिये गये ४ शंख, गदा, चक्र, पद्यम, से चिहिनत, चार तोरण्द्वार जिसके आमे
बने हुए है ऐसे चारों ओर खुले सुन्दर चार दरवाजों से विराजमान, मुक्ता तथा
मणियों की झालरों वाली यवनिकाओं ४ पदों १ से ढका हुआ वह यज्ञ मण्डप था।
उस मण्डप में सोने के पूर्ण कलश स्थान—स्थान पर स्थापित किए गये थे। नाना
प्रकार के नील दूर्वाकुरों, पल्लवों पर शोभित दीपकों की श्रेणियों नीले आकाश
में ताराओं के समान शोमा पा रही थी। प्रवाल मूंगे से बने पल्लवों तथा
रत्नों से कल्पित पुष्पों से सजे बन्दनवारों से चिरे तथा सुवर्ण कल्पित पिट्टकाओं
से लहलहाती ध्वजाओं से शोभित धने उचै वितान तम्बू थे। उन परमण्डपों की क्षकतारों भिन्न—भिन्न रंग की शोभित हो रही थी।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - तृतीय तर्ग - 64

² पारिजातहरण महाकाच्य - तृतीय सर्ग - 68

³ पारिजातहरण महाकाच्य - चतुर्थ सर्ग - 5

⁴ पारिजातहरण महाकाच्य - चतुर्थ तर्ग - 15

⁵ पारिजातहरण महाकाच्य - चतुर्थ तर्ग - 16, 17

⁶ पारिजातहरण महाकाच्य - वतुर्ध तर्ग - 18-20

प्राग भूमि का चित्रात्मक वर्णन काट्य के पंचम तर्ग में किया गया है - इस प्रयाग भूमि में सूर्य पुत्री यमुना की घनी नील तरंगों से आक्रान्त तथा लाल रंग में तरंगित सरस्वती को अंक में लिए स्वभाव से ही श्वेत वर्ण्वाली गंगा शो भित हो रही है । इन तीन रंग वाली तीनों नदियों का मिला रंगा प्रवाह रूप त त्रिवेणी, राधा रूपिणी लता से कलित कल्पतरु स्वरूप आपकी खिले पूलों की लाल कान्ति से लितत श्याम छाया के समान ज्ञात होती है । वह त्रिवेणी भौरों के झुण्डों की नील प्रभा से प्रतिविम्बित, गजबदन बालगण्डा के स्वभावतः लाल मुख में प्रवेश करती पयो निध्य की दुग्धभारा है । नीलमणि मूंगे तथा मो तियों की यह माला प्रयाग भूमि को सर्वतः शो भित कर रही है ।

इन्द्र का ममन अर्थात स्वर्ग का वर्णन किव के चित्रात्मक ज्ञान को प्रकट करता है। इस इन्द्र के भमन के बीच मिणमय भित्ति पर रत्नों की पच्चीकारी द्वारा कदी लता पूष्पादि से अंकित नाना प्रकार के प्रतिविम्बमय सुन्दर चित्रकारी से चित्रित कल्पनातीत सजावटों से सजी देवसभा सुधमा को देखा। जिसके चारों और सुन्दर फाटक लगे हैं। भिन्न-भिन्न अनेकों कक्षाओं से जो शोभित है। रत्नों से जड़े खम्भों तथा तोरणों से सजी जिसमें पताकारं फहरा रही है। बीच में बने मिणमय वेदिका पर देवराज का सिंहासन जिसमें सजा हुआ है। आस-पास चारों और जिसके सर्वसाधारण के पीठ १कृ सिंघां १

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - पँचम सर्ग - 42

² पारिजातहरण महाकाच्य - पंचम तर्ग - 46

³ पारिजातहरण महाकाच्य - पंचम सर्ग - 53

⁴ पारिजातहरण महाकाच्य - पंचम सर्ग - 54

समे रखे हैं। दाहिनी और देवगुरु का तदन्तर देव धियाँ के और बांयी और देवताओं के आतन समे हुए है। उत्तम आस्तरणों से समी चारों और विलासोपयोगी नाना विधान की कक्षाओं से जो बिलसित है अत्यन्त सर्वोत्तर मधुर बाले वाले सुवर्ण-सार से बने पिंजरों में टैंग शुक्त सारिका आदि पिक्षमों से जो गूँज रही थी, ि एक में कड़े भी सत्य के समान अनेक रंगों वाले को किल कब्रूतर आदि पालतू दिव्य विहंगमों से शोभमान थी। नाना वर्ण के सूर्य चन्द्र के किरण जालों से जो चारों और से चमक रही थी, कहीं जिसमें घन घटा सी घिरी हुई थी, कहीं चन्द्रकान्त मणियों के पिंघले जलों से शीतल सार वाली थी। जिसके भीतर ही कल्प लता के कुंजों से शोभित तट्याली पीयूष्य पुष्किरणी बनी शोभित हो रही है, कहीं कृड़ा शैन के शिखर पर बने महलों की चोटियों से झरने गिर कर बह रहे हैं। मनोहर मरकत मणियों की चित्रित सब्ब भूमि में जो सजी है तथा स्वतस्तिक, अर्द्धचन्द्र, कमल वृत्त आदि विभिन्न आकार में बने छोटे—छोटे जलाश्य तथा चब्रूतरों से विशेष्ठ रूप से शोभमान है। सैकड़ों फटवारों से जो मन को मुग्धकर रही है कतारों में कल्पित, रंग, बिरंग रत्नों से रिचत पादपों से जो भरी है। जिसमें कही लतामण्डपों के झूले लगे हुए है।

बाहर से बिसमें गारों ओर कुवरक आदि की वृत्ति है होरे हैं तथा अत्यधिक प्रकाशमान रत्नों की कल्पित चित्रों से सजी दीवारें एवं मनोहर अंकुर

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - एकादश सर्ग - 4

² पारिजातहरण महाकाच्य - एकादश सर्ग - 12, 13

उ पारिजातहरण महाकाच्य - एकादश सर्ग - 14

कलशी आदि बनी हुई है। आइने के मध्य भाग के तमान स्वच्छ तमतल चिकने तथा यमकदार चित्रों ते चित्रित चौराहे चौक चबूतरों ते जो विलक्षित है।

मातियों की झालरों वाली जवनिकाओं से जिसका मध्य भाग दका हुआ है तथा छायामय शरीरधारी सूर्य, मेघ, चन्द्रमा, वायुरूप देवताओं से जो अनुक्षण रक्षित है । कहीं जिसमें सुन्दर फ्रां है । कहीं गेंद आदि खेलने का सजा मैदान है तो कहीं भीतर ही भिकार के उपयोगी बन बना हुआ है। कहीं पर उपासना के उपर्युक्त मन्दिरों जैसे उपनिवेश है, कहीं खिले फुलों में या प्रगट कामदेव के द्वारा जो हम सी रही है। सुगन्ध से आकृष्ट भूमर श्रेणियों की मादक इंकार में जो निरन्तर गायी जा रही है। वे झीलों में उबक चुभक कर खेलते हुए जल-जन्तुओं तथा तारत आदि पिक्षयों एवं दिव्य कमल आदि पूडपों ते जो मन को लुभा रही है । पुष्ठपों के तमूह से भरी तजी घनी शोभा से युक्त किंच सुन्दर मनोभाव ते भरी भनी जधन की शोभा वाली अच्छे पिक्षारें के गुंजना ते युक्त पुष्प गुच्छकों से शो भित या नई अवस्था तथा स्तन रूप गुच्छक से लसित चित्रों से सजी स्वर्गीय श्रेष्ठ भूमि की अलंकृत करती हुई, और भी रंग बिरंगी साड़ी गहनों ते शो मित रक्षा योग्य रमणी के तमान जो रमणीय है। तोने की लरों के रचना विशेष्य से जो शो भित है तथा देव ललनायें जिसके सभग पदों हैप्रति सन्दर स्थानों है में विहर रही हैं, पूरे पुण्य पल अर्जन न करने वालों को जो तदा दुर्लभ रहे हैं। जिसके शिखर पर दिव्यगज हिरावत है के चिह्न से चिह्नत महाध्वज फ्टरारहा है।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - एकादश सर्ग - 16-21

कामशास्त्रज्ञान :-

कवि के लिए नायक-ना यिकाओं के भावों के घात-प्रतिघात से परिचित होना, इनके मनोवैज्ञानिक विश्लेषण में सहायक होता है। विलास लीला वर्णन में इस शास्त्र की सहायता कवि को अपेक्षित होती है। कवि की अपनी प्रतिभा भी इसमें सहयोग देकर अपूर्व कुतूहल उत्पन्न करती है।

दारिकापुरी की जो बाव ड़ियां तथा सरोवर हैं वह नायक तथा ना यिका की भांति परस्पर रमण करने से प्रतीत होते हैं। प्रस्तुत इलोकों की यह उपमा किव के कामशास्त्र ज्ञान को बताने में सहायक प्रतीत होती है। वायु के आधात से धुब्ध हुए इन जलाशयों में जो जल की तरी उठती है, उन्हीं के ब्याज से मानों नायक-ना यिकाओं के अन्तः करण में बढ़े हुए काम-विकार के कारण इसकी लहरें उठ रही हैं। सारस पक्षी के कलरव के बहाने वे रसमग्न प्रेमी मानों वार्तालाप सा कर रहे हं। प्रफुल्ल पंकजों के रूप में उनके चंचल नेत्र ही कटा धमात आदि की चेष्टाओं में निरत है। मारों के गुंजारव के च्याज से उन मध्मत्त रसिकों के असंबद्ध प्रेमालाप ही चिरकाल तक श्रवण गोचर होते है।

पुदकते हुए मीनरूपी मनोहर एवं वंवल नेत्रों वाली क्षण-क्षण में खिसकते हुए वस्त्र रूप शैचाल से सुशो भित होने वाली तथा विरकाल तक उँची जलरा शि को उन्नत उरोजों के रूप में धारण करने वाली बाव डिया ना यिकाओं की भांति किसके मन को नहीं हर लेती।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - प्रथम सर्ग - 18, 19

² पारिजातहरण महाकाच्य - प्रथम सर्ग - 20

पारिजातहरण महाकाच्य के द्वितीय सर्ग में रात्रि की उपमा गर्भवती स्त्री से दी गई है जो किव के कामशास्त्र ज्ञान को प्रकट करती है।

रात्रि गर्भवती स्त्री के समान प्रतीत होती थी, उसका चन्द्रमा रूपी मुख पीला पड़ गया था । उसने अपने भीतर बाल रूपी सूर्य को धारण कर रखा था।

वह शीघ़ ही प्रतव करना चाहती थी, अतः उसकी काम वासना शिथिल हो गयी थी तथा वह मान भी छोड़ चुकी थी, उसकी यह अवस्था देख मानो निशापति चन्द्रमा ने अपनी विलास वासना को विरत करके उसे सहवास से मुक्त कर दिया।

यह रात्रि एक ऐसे ज्यो तिर्मय पिष्मा को जन्म देना चाहती है जो आनन्द का धाम है - कबूतरों के कलरवे के बहाने मानों यही प्रसव की पीड़ा से कराह रही है।

प्रकृति की दूसरी विडम्बना देखिए सारी रात काम विनोद में बिताकर स्त्रियां प्रिय के बाम भाग में ही सोई हुई है।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - द्वितीय सर्ग - 4

² पारिजातहरण महाकाव्य - द्वितीय सर्ग - 5

³ पारिजातहरण महाकाच्य - दितीय तर्ग - 7

⁴ पारिजातहरण महाकाच्य - द्वितीय सर्ग - 9

कितनी रमणियां अपने प्रियतम को बाहुपाश में बांधकर अपने स्तनों का उनके वक्षा का पीड़क अस्त्र बनाकर सोई हुई वे रतिक्रीड़ा के समय प्रियतम द्वारा किए हुए अपने मर्दन का मानों इसी रूप में बदला ले रही हैं।

गादी नींद के श्वास से जिसका अग्रभाग थिरक रहा है वह थकी-मादी सोयी स्त्रियों के मुख पर बिखरा केश ऐसा जान पड़ता है मानों आनन्द से पूँछ हिला-हिला कर सर्पिणी मुख्यन्द्र सुधा का पान कर रहा है।

प्रभात के कारण द्वीप के प्रभा मिलन ही जाती है किन्तु कवि ने प्रस्तुत इलोक में उसका १दीप का १ लिजित होना बताया है जिसका तात्पर्य यह निकलता है कि दीप की प्रभा मिलन हो गई है।

रात्रि भर की सुरत क़ीड़ा में ताक्षी बनकर जो दीपक युवक युवितयों का नाम करता है वह उद्या काल में उन्हें तोस देख मानो निज्जत हो रहा है।

रात्रि में छिपी पान अनुराग जन्म बाली का लेखा सूर्य दे रहा है -रात्रि में काम क्रीड़ा परायण दम्पत्तियों के रतराग पानादि से उत्पन्न जो नाली रही, उसे पूर्ण दिशा में उदित हुआ सूर्य अभी एक करके दिखाएगा ।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - द्वितीय सर्ग 10

² पारिजातहरण महाकाच्य - द्वितीय सर्ग 14

उ पारिजातहरण महाकाच्य - द्वितीय सर्ग 20

⁴ पारिजातहरण महाकाच्य - द्वितीय सर्ग - 38

प्रभात हो गया है, प्राभातिक वायु का संचार प्रत्येक स्थान में हो गया है इसी की उपमा कवि ने अपने काम विषयक ज्ञान को प्रकट करके दी है -

सम्मोग के अनन्तर लौटी हुई अभिशारिकाओं के कपोल स्थल में प्रस्वेद रूप मधु-द्रव को चाटता हुआ पवन, मानों उन्हीं को ढूंढ़ता हुआ घर-घर में घूम रहा है।

श्रुतिज्ञान :-

वेद ज्ञान-दारा प्रतिपादित यज्ञीय परिपाटी का संकेत पारिजातहरण महाकाच्य में विस्तार के साथ मिलता है।

वैदिक धर्म को यज्ञों का धर्म कहा जाता है। प्रायः सभी विद्वानों की मान्यता है कि वेदों का प्रतिपाद विषय यज्ञ है। पित्रचमी विद्वानों ने वेदों के प्रसिद्ध भाष्यकार सायण को "यज्ञिक-भाष्यकार" नाम दिया। सामान्यतः अग्नि जलाकर हवन करने और उसमें आहुतियां देने को खज्ञ कहा गया था। परन्तु यज्ञ के और भी अर्थ है। ब्रह्म यज्ञ, द्रव्य यज्ञ, तपोयज्ञ, योग यज्ञ, स्वाध्याय यज्ञ, दान यज्ञ, आदि का उल्लेख परवर्ती साहित्य में मिलता है। अनेक श्रष्टियों ने यज्ञ का अर्थ परोपकार किया है।

[।] शुक्त यजुर्वेद - ।।-।८ अध्याय

यजुर्वेद में यज्ञों का बहुत विस्तार के साथ वर्णन मिलता है। शुक्ल यजुर्वेद के आरम्म के दोनों अध्यायों में दर्श तथा पौर्णमास इिट्यों से सम्बद्ध मन्त्रों का वर्णन है। तृतीय अध्याय में अग्निहोत्र तथा चातुर्मास्य ्रेचार महीनों पर होने वाला यज्ञ ्रे के लिये उपयोगी मन्त्रों का विवरण है। इसके अनन्तर आठ अध्यायों तक यज्ञीय होमाणिन के लिस वेदिनिर्माण का वर्णन बड़े ही विस्तार के साथ किया गया है। सोमयागों तथा राजसूय यज्ञों का भी बड़े विस्तार के साथ इसमें वर्णन किया गया है। ब्राह्मण युग में यज्ञ का सम्पादन ही धर्म का मुख्य उद्देश्य था। समस्त कर्मों में यज्ञ ही श्रेष्ठितम माना जाता था। "यज्ञों वै श्रेष्ठितम कर्म" ब्राह्मणों में यज्ञ की इतनी महिमा तथा आदर है कि विश्व का सबसे श्रेष्ठ देवता प्रजापति भी यज्ञ का ही रूप है — "एठा वै प्रत्यक्षं यज्ञों यत् प्रजापतिः" विष्णु का प्रतीक यही यज्ञ है "यज्ञों वै विष्णुः।" आकार्श में दीप्यमान भी आदित्य यज्ञ रूप है" — सयः यज्ञों उसौ आदित्य :।"

तमस्त कर्मों में श्रेष्ठतम होने के कारण इस विश्व में यज्ञ ही परम आराध्य वस्तु है। जगत् के जितने पदार्थ हैं यहां तक कि देवों का जनक रूप प्रजापति भी, यज्ञ के ही आध्यात्मिक प्रतीक है। यज्ञ से ही सुष्टिट हुई, इस वैदिक तत्त्व का परिचय हमें पुरक्ष सूक्त में ही मिल जाता है। अग्निहोत्र के अनुष्ठान से प्राणी अपने सब पापों से छूट जाता है। अवमध्य से यज्ञ करने वाला यजमान अपने समग्र पाप कर्मों को, समस्त ब्रह्म हत्या को दूर भगा देता है।

[।] शुक्ल यजुर्वेद - ।।-।८ अध्याय

² शहापथ ब्राह्मण - 4/3/4/3/

उ शतपथ ब्राह्मण - 4/3/4/3/

⁴ शतपथ ब्राह्मण - 14/1/1/16

⁵ सर्वस्मात् पा प्मनो निर्मुच्यते य एवं विद्वानिग्न होत्रं जुहो ति । शतपथ ब्राह्मण 2/3/1/16

⁶ शतपथ ब्राह्मण - 13/5/4/1

यज्ञ कर्म के भीतर नाना कर्मों का अनुष्ठान पाया जाता है और वह भी एक विशिष्ट क्रम से सम्पन्न होता है। ब्राह्मण ग्रन्थों में यज्ञीय अनुष्ठान के छोटे से छोटे विधि-विधानों का विशद वर्णन किया गया है।

पारिजातहरण महाकाच्य में यज्ञ तथा यज्ञकमों का वर्णन किया गया है। परम योग्य वैदिकों के प्रतिपादित विधान एवं मन्त्र पाठ से सर्वाधिक सेशवर्य से शोभित तथा अवर्णनीय प्रीति को उत्पन्न करने वाले इस पर्वत पर यज्ञ स्वरूप मगवान् के द्वारा अधिकार प्राप्त कर दक्षिणा स्वरूप दक्षिण स्वमाव वाली रू विभाणी यज्ञ करने के हेतू प्रस्तुत हुई । यज्ञ की इतिकर्तव्या का विश्वद – वर्णन इस महाकाव्य में किया गया है – मर्त्यलोकवासी मानव-गण पृथ्वी से उपजने वाले अन्न रसादि रूप सम्पत्ति से तृतिष्त पाते हैं किन्तु स्वर्ग लोकीय अद्यूष्ट देवगण की तृष्ति के लिए नियम रूप यज्ञ ही है, जो वेदों के द्वारा शिक्षित हैं । यह यज्ञ वेदों से अनुशासित एक कर्म विश्वेष्ठ है । सत्पुरुष्यों ने सतत् इसका अनुष्ठान किया है इसलिए इसकी सफ्लता सिद्धि है तो फिर कौन इसको न करे । अतः रूक्षिणी जी का यज्ञ प्रस्ताव सहेतु है । कैसा भी कर्म हो बिना किसी परिणाम के शान्त नहीं होता । यह अनुभूत और सर्वसम्मत है । फिर यज्ञ रूप कर्म की सफ्लता भी स्वतः सिद्ध है ।

इस महाकाच्य में यज्ञ रूप कर्म की प्रामाणिकता भी सिद्ध की गई है-अनन्त कर्मों के होते हुए भी ये तीन राषियों में बंटे हुए हैं जैसे - दिष्टट §अनिष्ट§, इष्ट § हितकर§, उदासीन §दोनों से भिन्न§ सिद्धान्ततः इनके पन भी वैसे ही होते हैं।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - चतुर्थ सर्ग - 29,30

² पारिजातहरण महाकाच्य - चतुर्थ सर्ग - 31,32

³ पारिजातहरण महाकाच्य - चतुर्थ तर्ग - 33, 34

शास्त्र और लोक से भी जिसका विधान अनुशासित है अर्थात् सत्पल के विचार से जिसके करने की आजा पायत है वही इष्टटकर्म है तथा कुपल के अनुसन्धान से जिसके करने की मनाही की गई है उसे दिव्य कहते हैं। हित. हानि दोनों से रहित पल की भावना से जिसे करने की कोई आजा या निडेध कुछ नहीं है वह अनियन्त्रित कर्म ही तीसरा उदासीन कहा जाता है। यज्ञों को ही इंडट कहते हैं। अतः यह इंडट कर्म मनमाने दंग ने नहीं होने या हिए अपित उसके विधान साधन शास्त्रोक्त है। शास्त्र भी हमारे कल्पित मान्य नहीं है। जिन ऋषियों ने अध्यात्म बोध के लिए बड़ी-बड़ी आयु में समय लगाकर कठिन तपः क्लेश उठाया है साथ ही इसी विवेक में सारा जीवन व्यतीत किया है, जिनकी शक्ति संसार प्रसिद्ध है, ऐसे ही महात्माओं के लिखे टयवहार प्रबन्धों को शास्त्र कहा जाता है। इच्छा विषय होने से सुख को भी इंडट कहते हैं। उन शत-शत सुखों को यह यज्ञ ही फ्लते हैं तथा द्विडट कर्म जो निष्टि है, वह अनिष्ट पन देते हैं। अन्य विधि निष्ध से रहित कर्मों की स्थिति साधारण है। विधि होते हुए भी मन की पेरणा से ही इन कमों में प्रवृत्ति होती है क्यों कि प्रथम भोग्य को लक्ष्य करके ही उसकी सिद्धि के लिए कोई भी कर्म में प्रवृत होता है। यह विहिता विहित साधारण कर्म जैसे अनन्त है, उसी प्रकार उनके पल स्वरूप भोगों की भागणना नहीं है। किन्तु इन्हीं कर्मों के प्रयोजनीभूत पल रूप भोगों के विषय में जिनकी बुद्धि पुरा काम नहीं देती ऐसे लोग निष्दि कर्मों को भी कर बैठते है । किन्तु कमों के परिणाम तक ठीक पहुँचने वाली जिन विदानों की बुद्धि होती है वे इंडट सख प्राप्ति के लिए इन यहाँ का ही अपनाते है, क्यों कि अन्ततः कर्मो के ही द्वारा संसार की गति नियमित है। कर्म स्थून और सुक्ष्म दो प्रकार के हैं। स्थान कर्म लोक धन्धे जिनका भोज्य पल यही प्राप्त हो जाता है।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - चतुर्थ तर्ग - 35 से 40

जैसे भोजन बनाया खाया धुधा निवृत्त हो गई। सूक्ष्म कर्मी का पल प्रत्यक्ष नहीं ज्ञात होता । मानस व्यापार रूप, जप, तप, उपासना आदि अनेक हैं। दूष्ट पल साधक तथा अदूष्ट पल साधक, इस प्रकार यह कर्म ऐ हिक, आमुष्टिमक नाम से भी दो है। इस शरीर के लिए ऐ हिक तथा अमर आत्मा की उपर स्थिति के लिए आमुिष्मक श्वारलौ किक है कर्म है। यह कर्म स्वभाव से ही शरीर, मन, वाणी के द्वारा किसी न किसी रूप में होते ही रहते हैं। §निह कम्रित क्षणमि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत् कायतिह्वशौ जन्तः सर्वःप्रकृतिजेगुणैः § किन्तु उन्हीं की व्यवस्था के लिए अर्थात वह उच्छंखन रहकर, प्रतिकल न पड़े अपितु अनुकूल तफ्ल हो इसके लिए शास्त्रों में अनेक प्रकार से विवेक किया गया है। पृथ्वीजल, वायु, अग्नि, आकाश इन पांचों तत्वों के सूक्ष्म अंशों से सम्पन्न हुआ यह यागांग हवन से उत्पन्न धुम रस रूप जल देने वाला मेघ बन जाता है। इन्हीं निजी रतों को बरताकर भूमि रता दि रूप में परिणत हो औषधि रूप खाद पदार्थी १अन्ना १ को उत्पन्न कर प्राणी के दीर्घ जीवन को बढ़ाता यह यज्ञ, प्रत्यक्ष ही सुखंद लक्षित होता है। व्यापार परम्परा स्वरूप कर्मों की एकत्रित स्थिति नहीं होती । न तो वह भोग के बिना कभी क्षीण होते हैं और न कर्मों के बिना कोई रह ही तकता है। इस लिए उसके विवेकार्य अपने उत्तर दायित्वभार को मिटा रखने के लिए बुद्धि के द्वारा , शास्त्रगत विधियों की उपेक्षा नहीं करनी वाहिए। उनके आधार पर चलना ही श्रेयस्कर है। जिन यज्ञां की पल प्राप्ति जन्मान्तर या कालान्तर में निर्धारित है। यज्ञ से ही उत्पन्न अपूर्व १अदूष्टर रूप व्यापार, उसकी उस समय तक रक्षा करता है और समय पर पन प्राप्ति होती है। केवन प्रत्यक्ष पन पर ही विश्वास रखने वाले मूझ जो इहलौ किक पल मात्र के लिप्तु तंतार में बड़े-बड़े व्यापार करते हुए

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - चतुर्थ तर्ग - 41-42

भी तार्विदिक कल्याण के भागी नहीं होते। ऐता जानकर ही शास्त्रीय विधि वाक्यों द्वारा बोधित देवताओं की तृष्ति चाहती हुई रूक्मिणी यह में तत्पर हुई। क्यों कि उती को अमृत कहा गया है।

यज्ञ करने की विधि का भी उल्लेख इस महाकाट्य में मिलता है —
यज्ञ में प्रमृत हुई रूकिमणी जी ने सभी वेदों के ज्ञाता अत्विक गणों की बतलाई
विधियां अंग पूजा आदि के साथ आरम्भ कर दी । संकल्प पूजन आदि के
समय कुढ़ुंग से रंगे अक्षाों को छोड़ता रूकिमणी जी का कर कमल पुष्परस से रंगे
निकलते मंगरों से युक्त कमल पुष्प के समान शो मित हो रहा था । सर्वथा
कल्याण मा गिनी यह रूकिमणी होताओं के द्वारा अग्नि आहुतियां दिलाने लगी
श्री रूकिमणी जी ने किसी भी अ अग्निय वस्तु का समर्पण नहीं किया और
न ही कोई प्रिय वस्तु किसी को देने के लिए बाकी रखा, देवताओं की प्रसन्नता
के हेतु अग्निदेव को सबसे अधिक तृप्त किया करूण, म्यानक, वीभत्स इन तीन
रसों से रहित शेष छः काच्य रसों के समान छः रस के अपूर्व यज्ञां ममूत भोजन
से ब्राह्मणों को तृप्त किया।

वेद की श्रवा के बारे में इस महाकाट्य के दूसरे सर्ग में कहा गया है स्वर मून, मेद, उदात्त, अनुदात्त, स्वरित से युक्त श्रवा को पढ़ता आहु
ताम्रवृड्ड हैमुर्गे रूप श्रीत्वजों का वृन्द शुम सम्पत्ति के लिए जगत् के सारे
टयसनों का तेजस्वी सूर्य में हवन कर देना वाहता है हैमुर्गों का बोलना
पाकृतिक है ताम्रवृड्ड हैमुर्गे अग्निहोत्र का समय हो गया है ऐसा जानकर

[।] पारिजातहरण महाकाट्य - चतुर्थ तर्ग - 44-50

² पारिजातहरण महाकाच्य – चतुर्थ तर्ग – 51

उ पारिजातहरण महाकाच्य - चतुर्थ सर्ग - 53-58

⁴ पारिजातहरण महाकाट्य - चतुर्थ सर्ग - 60

अग्निहोत्रियों को जगाते हुए यह आदेश दे रहे हैं कि हाथ में जुहू हुहवन साधन पत्र विशेष्ण उठाओं " कु कु हू कू" नहीं अपित करें जुहू ऐसा कह रहें हैं। हे देव । अग्नि को दीप्त करने वाली श्र्चाओं को पढ़ते हुए अग्निहोत्री ब्राह्मणमण, कुशकण्डिका आदि विधि से शोमित कुण्ड वाले मण्डप में बैठे स्वाहाकार आनापते हवन कर रहे हैं।

मर्त्यविहित यहाँ ते ही देवताओं की तृप्ति होती है। ऐसा बताते हुये नारद जी कहते हैं - वे १इन्द्र१ देवलों के स्वामी होते हुए भी पृथ्वी ते उत्पन्न होने वाले औषाधि रस्त, आदि हविष्य विशेष्ट्र जो देवमुख अग्नि में हवन रूप ते दिया जाता है, उसते तृप्त होते है अर्थात् मर्त्यविहित यहाँ से ही उनकी तृप्ति होती है।

पारिजातहरण महाकाच्य में सुष्टि की वैदिक प्रक्रिया का निरूपण किया गया है - यह तंतार अग्नि स्थली है जितमें तो मरत रूपी चेतना की आहुति दी गई है। यह तंतार अग्निवेदी है रजो गुण अग्नि है विधियुक्त अपना पराक्रम तो मरत इस अग्नि में हुत है हृद्दा किया गया है । पहले यहा में अधिष्ठित विराद पुरुष प्रजा के लिए उत्पन्न किया गया। अब पुत्र बनकर नरकमित् के परिणाम को प्राप्त होता है।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - दितीय तर्ग - 43-45

² पारिजातहरण महाकाट्य - दाम तर्ग - 78

³ पारिजातहरण महाकाट्य - विंश तर्ग - 11, 12

दार्शनिक सिद्धान्त :-

श्री उमापति दिवेदी विरचित पारिजातहरण महाकाट्य में विभिन्न दार्शनिक तिद्वान्तों का उल्लेख हुआ है जिसमें सांख्य तिद्वान्तों का उल्लेख कुछ अधिक हुआ है।

तांख्य :-

पारिजातहरण महाकाट्य में तांख्य तिद्वान्तों का उल्लेख हुआ है।
प्रत्यक्ष, अनुमान तथा शब्द प्रमाण में ही तभी प्रमाणों के अर्न्तभूत होने के
कारण तांख्य को ये तीन ही प्रमाण मान्य प्रमाण ते ही प्रमेयों का ज्ञान होता

प्रमाण प्रमा या यथार्थकान का मुख्य ताथन है। यह ह्रिप्रमाण वह पित्तवृति है जिसका विध्य निश्चित रूप से बात हो रहा हो, बाधित होने वाला न हो तथा पूर्व ते बान न रहा हो। ऐसी पित्तवृत्ति से उत्पन्न, अतस्व उसका पलभूत पुरस्कार्ती बोध प्रमा है। इसी के साधन को प्रमाण कहते हैं।

ये तीन प्रकार कौन है यह कहते है - प्रत्यक्ष अनुमान तथा शब्द या आगम । यह त्रिविधत्य कथन लौकिक प्रमाणों के ही अभिप्राय से कहा गया है, श्रंथित साधारण बनों के ज्ञानोत्पादन में उपयोगी प्रमाण तीन ही है

[।] सांख्यकारिका - 4

क्यों कि शास्त्र साधारण जनों के ही ज्ञानार्थ होता है और इस कारण से लौ किक प्रमाण ही यहाँ निरूपण के विध्य हैं पारिजातहरण महाकाट्य में सांख्य सिद्धान्तों के इन प्रमाणों के विध्य में कहा गया है :-

प्रत्यक्ष, अनुमान, तथा आगम प्रमाण से भी इसकी तथ्यता पर विश्वास कर बुद्धिमान पुरुष इष्ट सिद्धि के कारणीभूत अनुशासन वाले उन शास्त्रीं में किस गर विवेक का अनुसरण करते हैं।

तेर्डस अवान्तर तत्वाँ के रूप में परिणत होने वाली सांख्य की यह
प्रकृति "अजा" अर्थात् अनादि और अनन्त अर्थात् अविनाधिनी है इसमें सत्व,
रजस, तथा तमस् तीन मुण हैं इसलिए यह त्रिमुण कहलाती है। इन सत्व
इत्यादि तीनों की "मुण" संज्ञा इनके "परार्थ" अर्थात पुरुष्ठ के मोगापवर्ग
के लिए होने के कारण है। जिसकी स्थिति दूसरे के लिए होती है, अपने
लिए नहीं, उसका उस दूसरे की अपेक्षा अप्रधान भाव – मुण्णाव कहता है।
इसी से सत्व इत्यादि मुण कहे जाते हैं। ये तीन मुण प्रकृति के धर्म या
स्वभाव भी महत् अहंकार, तन्मात्र इत्यादि प्रकृति के कार्यों में भी आ जाते
हैं, क्यों कि यह तो नियम ही है कि कारण के मुणों या धर्मों से ही कार्य में
मुणाया धर्म आते हैं। इस प्रकार इनसे उत्पन्न सारा जगत् ही त्रिमुणात्मक
तथा सुख-दुःख मोह-स्वरूप है।

[।] सांख्यतत्पका मुदी, पूर्व - 101

² पारिजातहरण महाकाच्य चतुर्थ सर्ग - 43

² त्रिमुणमिविके विषयः सामान्यमधेतनं प्रसवधर्मि । व्यक्तं, तथा प्रधानं, तदिपरीतस्तथा च पुमान् ।। सांख्यका रिका-।।

⁴ तांख्यकारिका - 12, 17

^{5 &}quot;सत्वादीनामतद्वर्मत्वंतद्वपत्वात् । सांख्यसूत्र ६/३।

^{6 &}quot;एते गुणाः प्रधान शब्द वाच्या भवन्ति"-योगसूत्र 2/10 का ट्यासभाष्य

पारिजातहरण महाकाट्य में बताया गया है तीनों गुणों को प्रकृति धारण किर हुए है - तत्त्वगुण ते युक्त स्वच्छ जलों में सरजा अर्थात् रजो गुण ते युक्त किंव परागों ते भरे तमः कण्डेंतमो गुणा के कणों ड्रेंबिच अन्धकार कणों के तमान अमरों की श्रेणियों ते धिरी लाली लितत कमलों की मालायें मानों, शोभामय प्रकार ते बनाकर अपने तीनों गुणों को प्रमट करके प्रकृति धारण किर हुई है।

पारिजातहरण महाकाट्य में तांख्य की इत प्रकृति के बारे में कहा गया है।

मगवान् ! यह तत्वा तिमका ईसांख्यमतानुसार 24 तत्व रूप में मेनी हुई अन्य मतों में तद्धर्म, तत् शक्ति आदि रूपों में मानी जाने वाली जड़ा प्रकृति या माया आपके दर्शनार्थ आपकी अधिकिठत भूमिका में प्रवेश करते हुए लोगों का उन-उन सत्व, रज, तम, रूप गुणों का दरवाजा छेंककर सम्मुख निजी विलातों से छला करती है । जिन्होंने उत्तरोत्तर वृद्धि के लिए यदि प्रकृति सम्मव शरीर धारण किया है तो प्रकृति के गुणों का अनुरोध भी बलात् उनको है कृष्ण कोई करना ही पड़ता है । किन्तु अपने भावानुसार उनके दोष्मय या गुणा मय रन्जन है उपयोगई समय तथा करने वाले मेद्र से स्थान विशेष में सम्मव है । तदिमतः तात्पर्य यह है कि काम, क्रोधादि विकार युक्त त्रिगुणात्मक प्राकृतिक शरीरधारी जितने हैं सबमें यह विकार रहते ही है ।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - दशम सर्ग - 13

² पारिजातहरण महाकाट्य - पंचम तर्म - 10

उ पारिजातहरण महाकाच्य - दशम सर्ग - 62

प्रकृति से महत् या बुद्धि तत्व, महत् से अहंकार और अहंकार से पांच तन्मात्र तथा ग्यारह इन्द्रियां इन सोलह तत्वों का समूह उत्पन्न होता है। इन सोलहों के समूह में अन्तर्भूत पांच तन्मात्रों से पांच महाभूत १ आकारां। इत्यादि१ उत्पन्न होते हैं। पारिजातहरण महाकाट्य के पंचम सर्ग में कहा गया है - भगवन् ! आपके प्रभाव से संसार के मूलमूत जो परमार्थतः सत् नहीं है रेसे पृथ्वी आदि पंच भूतों के रहते भी प्रपंच के विचित्रता का जो भान होता है इसका निदान १ आदि कारण अपकी असाधारण इच्छा ही बतलाई गई है।

तांख्य के प्रमेय या पदार्थ मुख्यतः दो ही है एक तो जड़ प्रकृति और दूतरा चेतन पुरुष और तारा जड़ जगत् इती जड़ प्रकृति का परिणाम है और इती परिणाम का नाम तर्ग या सुष्टित है। वह परिणाम त्रिगुणात्मक प्रकृति का प्रकृति रूप ही परिणाम है। इते ही तद्भा परिणाम भी कहा गया है जो प्रलय काल में होता रहता है। इत तद्भा परिणाम में प्रकृति के गुणों का पारत्परिक ताम्य नष्टत नहीं होता उती ते कोई अभिनव सुष्टित नहीं होती ।

स्वयं अनुत्यन्न होकर भी महत् इत्यादि कार्यों को उत्पन्न करने वाली एक होकर भी रजस्तवतमोरूप त्रियुणा त्मिक मूल प्रकृति को हम नमस्कार करते हैं।

[।] सांख्य तत्त्व कौ मुदी - तांख्य का रिका - 22

² पारिजातहरण महाकाट्य - पंचम तर्ग - 15

उ तांख्य तत्व को मुदी पू0 56

⁴ साँख्य कारिका - 1" 1"

पारिजातहरण महाकाट्य में सांख्य की इस प्रकृति के बारे में इस
प्रकार कहा गया है - यह एक ही त्रिदेव की त्रिमुणा ित्मका शक्ति जो
जगत् का अन्त करने वाला अपना सार लेकर रद्ध शक्ति या जगत् के अस्त
करने वाला यम की बहन यमुना का लेकर तमोमय श्याम मेद धारण करती
ब्रह्म शक्तिरूपिणी किंच स्वमाव से सत्वमुण का श्वेत रूप धारण करने वाली
जो त्रिमुणा ित्मका प्रकृति है, जिसके वर्णन में इस्कामजा लो हित शुक्ल
कृष्णा मुद्धत्या दि वाक्य हैई बही त्रिवेणी के रूप में प्रवाहित हो रही है।

पृक्ति के दर्शन द्वारा पुरख की कैवल्य तिद्धि के लिए प्रकृति और पुरख का तंभी म होता है जिससे सुष्टिट होती है। स्पष्ट है कि पुरखार्थ तिद्धि के लिए प्रकृति और पुरख का परस्पर संयोग होता है। पुरख के द्वारा प्रधान का दर्शन तथा प्रधान के द्वारा पुरख का केवल्य सम्पन्न होने के लिए पंड मु और अन्ध के समान दोनों का संयोग होता है जिससे सुष्टिट होती है।

पारिजातहरण महाकाच्य में प्रकृति पुरक्ष के संयोग के बारे में इस प्रकार कहा गया है - ऐसा बात होता है कि यह एक ओर संसार की प्रकृति जन्म मिलनता ही यमुना है और दूसरी ओर उस परम पुरक्ष की श्वेत विभूति क्रिश्चर्य ही गंगा है उनके पदार विन्द की प्रेमिका यह सरस्वती कवि वाणी या सरस्वती नामक नदी इन दोनों को संहित कर एक में मिला रही है अर्थात् प्रकृति पुरक्ष के संयोग को अनुराग मरी कवि सरस्वती जैसे बखान रही है।

[।] तांख्य कारिका - । वितायवतरोय निषद् 4/5

² पारिचातहरण महाकाट्य - पंचम तर्ग - 45

उ सांख्य कारिका - 21

⁴ पारिचातहरण महाकाट्य - वैद्यम सर्ग - 44

सारा जड जगत् इसी प्रकृति का परिणाम है इसी को पारिजातहरण महाकाट्य के बीसवें सर्ग में इस प्रकार कहा गया है - पुरुष्ठं की अगम्य चेतना को आत्मगत करके उपलक्षित है दिखाई देने वाले है विशव की आधारशक्ति है प्रकृति है अथवा सम्पूर्ण जगत् को धारण करने वाली वह परा प्रकृति है, उसका कौन अतिकृषण करें।

तांख्य शास्त्र में कहा गया है कि मूल प्रकृति किसी का विकार अथवा कार्य नही है। महत् इत्यादि हैबाद के हैं सात तत्त्व कारण और कार्य दोनां ही है। तांख्य शास्त्र में यह समस्त विश्व 25 तत्त्वों का खेल माना गया है इनके दो मुख्य विभाग है – पुरक्ष और प्रकृति । इनमें से पुरक्ष अथवा आत्मा तो चैतन्य स्वरूप है वह न तो किसी तत्त्व से बनता है और न उससे कुछ बनता है। प्रकृति के आठ विभाग माने गए है और उसमें तोलह विकारों की उत्पत्ति कही गई है, आठ प्रकृतियां ये है – है। है मूल प्रकृति है2 महतत्त्व हें बुद्धि है है अहंकार है 4 है शब्द है5 है स्पर्श है 6 है रूप है 7 है रस है गन्ध । तांख्य में प्रकृति उसको कहते हैं जिससे आगे चलकर कोई अन्य तत्त्व उत्पन्न हो।

प्रकृति विकृति रूप जो सात महत्तवादिक है उनका मूल कारण होने ते उनको मूल प्रकृति कहते है उसका नाम प्रधान भी है, वह मूल प्रकृति जो है, वह अविकृति है अर्थात् वह किसी का भी कार्य नहीं है।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - विंश सर्ग - 14

² तांख्य दर्शन - महर्षि कपिल

उ मूनप्रकृतिर विकृतिर्महदाद्याः प्रकृति विकृतयः क्षोडाकस्तु विकारो नप्रकृतिर्निवृतिः पुरुषः ।।
"सांख्य तत्त्वसुद्दी धिनी का रिका "3"

पारिजातहरण महाकाट्य के छठे तर्ग में इती मून प्रकृति के बारे में इत प्रकार कहा गया है – नारायण की आठ पटरानियां जो तांख्य शास्त्र प्रतिपादित आठ प्रकृतियों के तमान है उनमें प्रधान मून प्रकृति आप ही हो इस निष्य को आज भगवान ने तत्य कर दिखाया ।

इस प्रकार प्रकृति विकृति रूप जो सात महतत्वा दिक हैं उनका मूल कारण प्रकृति है। प्रकृति के आठ विभाग माने गए है और इसमें सोलह विकारों की उत्पत्ति कही गई है।

पारिजातहरण महाकाच्य में प्रकृति विकृति के बारे में बीतवें तर्ग में इत प्रकार कहा है - हे राक्षत ! इत तंतार का मूल "प्रकृति" है उनकी तात विकृतियां है उतमें तोलह हजार "मूत-मौतिक" विकारों को कैद कर रखा गया है तुम उन तोलह हजार विकारों रूपी राज कन्याओं को दुः खी कर रहे हो ।

गुणमती रवं उपकारिणी प्रकृति बिना किसी स्वार्थ के ही इस निर्मूण रवं प्रत्युपकार विहीन पुरका का अनेक उपायों द्वारा कार्य साधन करती है। जैसे सर्वगुण सम्पन्न रवं उपकारी होने पर भी सेवक निर्मूण रवं प्रत्युपकार विहीन स्वामी से अपनी सेवा का कुछ भी पन नहीं पाता उसी प्रकार यह गुणमती रवं उपकारिणी उदार प्रकृति अनुपकारी पुरक्ष के निर प्रयत्न या कार्य करने पर भी स्वयं निष्यन ही रहती है। इस प्रकार पुरुष के निर ही यह प्रवृत्त होती है, अपने निर नहीं।

[।] पारिजातहरण महाकाट्य - क्रड सर्ग

² पारिजातहरण महाकाच्य - विंश तर्ग - 48

उ सांख्यकारिका - 60

सम्पूर्ण जड जगत् इसी जड प्रकृति का परिणाम है और इसी परिणाम का नाम सृष्टिट है। वह परिणाम त्रिगुणात्मक प्रकृति का प्रकृति रूप ही परिणाम है।

मुणों वाली और उपकार करने वाली प्रकृति नाना प्रकार के अपायों को करके अनुपकारि पुरुष के लिए चेष्टा करती है, अर्थात देव मनुष्य तिर्यंगा दियों नियों के तम्बन्धों को करा के और तुख दुख मोहभाव को पुरुष को प्राप्त कराके तथा शब्दादिक विषयों को प्राप्त कराके, नाना प्रकार के उपायों को करा के अपने को प्रकाश्य करके पश्चात् पुरुष्टा को ऐसा ज्ञान कराती है " मैं अन्य हूँ" "तुम अनय हो" फिर पुरुष से हट जाती है । नित्य जो पुरका है उसके लिए व्यर्थ ही प्रकृति चेवटा करती है जैसे कोई परोपकारी सबपर उपकार करता है । परन्तु अनेन प्रत्युपकारी की अर्थात् बदले की इच्छा नहीं करता है सर्व प्रकृति भी पुरुष के लिए उपकार को करती है, पत्रचात् आत्मा का अपने स्वरूप का प्रकाश करके निवृत्त हो जाती है। पारिजातहरण महाकाट्य में तांख्य शास्त्र के इस मत का इस प्रकार से निरूपण किया गया है - सांख्य शास्त्रवालों के मत से अना दि सिद्ध चेतन निर्लिप्त पुरका ईश्वर है, जड़ा त्यिका, त्रिमुणमयी उसकी प्रकृति ईश्वरीय चैतन्य से विम्बित हो संसार की मुण दोष्प्रमय सुष्टिट करती है। इसी प्रकार प्रकृति के विशेष अंगों से जायमान स्त्रियां है अतः कारणमत जडता को पाकर उसके अनेक विकारों से भरी होती है। इस लिए निर्लिप्त वेतन पुरका के अंशों से उत्पन्न हम पुरखों का उन क्षियों के अधीन विलास बन्धन ही होता है. क्यों कि शुद्र ब्रह्म ही प्रकृति प्रतिच्छन्न हो बद्र जीव बन जाता है।

[।] साँख्य तत्त्वसुबो धिनी

² पारिजातहरण महाकाच्य - स्कादश्वर्म - 72

पारिजातहरण महाकाच्य में नारद जी इन्द्र ते कहते है – हे देय !
अखिन नायक मगवान कृष्ण के विषय में, स्त्रैण बुद्धि करना भी आपका
निजी स्वभाव को धोखा देना है । वे तो उनकी सहज्याक्ति रूप प्रकृतियां
है – जिन्हे शृंगुणों ते हैं रिज्जत करते हुए व्यवहारों का विधान करते है,
अन्यथा इस निरंबन पुरुष को जगह व्यवहार से क्या प्रयोजन ।

न्याय:-

पारिजातहरण महाकाच्य में न्याय वैशेषिक तिद्वान्तों का यत्र-तत्र उल्लेख मिलता है। न्याय तिद्वान्तों में कहा गया है - जिसका कार्य से पहले होना नियत हो और जो अन्यथा तिद्व नहीं होता वह कारण कहलाता है जैसे - तन्तु तथा वेमा इत्यादि पट के कारण होते हैं। यह सर्वसम्मत है कि कारणों के होने पर ही कोई कार्य होता है, अतः कारण को कार्य से पूर्वभावी कहा गया है। उदाहरणार्थ - पट एक कार्य है, उसके कारण हैं तन्तुवाय, तुन्तु, तुरी, वेम इत्यादि। वे पट से पूर्व ही विद्यमान रहते हैं।

उती प्रकार जो नियमरूप से कारण के बाद में १पश्चाद मावी १ हो तथा जिसकी सत्ता अनावश्यक एवं आकृष्टिमक न १अनन्यथा सिद्ध १ हो उसे कार्य कहते हैं।

[।] पारिजातहरण महाकाट्य - एकाद्मा तर्ग - 83

² अनन्यथा तिद्ध नियत पूर्वमा वित्वकारणत्वम् हेतर्कमा बा हु पूछ । 3 कारणमिति चानेतरे कार्यनियतपूर्ववितातीयवृति पदार्थविभाजकको पाधि सत्वम् । वैध्यछ। /। /८ पर उपस्कार

उनन्यथा सिद्ध नियत पश्चादमा वित्वं कार्यत्वम् हैतर्क-माधा पूछ । उ है कार्य मिति प्राममाव प्रति यो मितृति पदार्थ विभाजको पाधि मृत्यं/ वैठसूछ । / । / ८ पर उपस्कार

पारिजातहरण महाकाट्य के पंचम तर्ग में कहा गया है – हे मगदन् । जाति क्षेजन्म आकृति किया गुणों ते आपका कोई वर्णन नहीं कर तकता । क्यों कि नित्य गुद्ध आत्मा के ये तभी अतत्य उपाध्मित्र है । अतः इन परिचायक चिह्नों के द्वारा आपका ठीक-ठीक स्वरूप ज्ञान तर्वथा अतम्भव है । पिर भी तंतार की तभी शक्तियों ते अताध्य तंतार के अद्मृत सुविधानउत्पत्ति, विनाश, कार्य बिना कारण नहीं हो तकते, कार्य ते कारण का अनुमान होता है जैते छड़े ते कुम्हार का इत अनुमान ते कारणीमूत आपकी चेतनात्मक तत्ता की प्रतीति कैते मिटाई जा तकती है ।

अव्याकृत अवस्था में अज्ञान में सत्वादि गुणों का जो क्रमहतारतम्यहू होता है, उसी क्रम से कार्यों में भी गुण उत्पन्न हो बाते जैसे-जैसे कार्य वैसे-वैसे उनके कारणों में रहने वाले सत्वादिगुण उन कार्यों में कार्यों की उत्पत्ति के साथ ही उत्पन्न हो जाते हैं।

नृतिंह सरस्वती के कारण गुण पूक्रम की व्याख्या करते हुये वैशेषिक के "कारणमुणा हि कार्यगुणानारमन्ते" इस तिद्धान्त को उद्धृत किया है"। कारणमुणा प्रक्रमन्याय की व्याख्या इस प्रकार की गई है। कारणमुणाः सजातीयगुणान कार्य आरमन्ते यथा तन्तुरूपादयः स्वकार्ये पटे सजातीय रूपादीनारमन्ते न विजातीयानेवं यत्रकारणमुणानुगमस्तत्रास्य प्रवृत्तिः

[।] बारिजातहरण महाकाच्य - पंचम तर्न - 7

कारणस्या व्याकृतस्य ये मृणाः सत्वा दयस्तेष्वांपृक्रमेण,
 ता न्युणा ना रम्य यथा कार्यकृमं सत्वा दियुणाः सहैव कार्येस्तेष्ट्रत्यवन्त इत्यर्थः
 -विद्र न्यनो रंजनी "

उ तर्कभाषा

⁴ वाचरपत्यम् में वैशेषिक दर्शन के अनुतार लिखी गई व्याख्या

§3 ई न्याय दर्शन के अनुसार कार्य की उत्पत्ति में तीन कारण होते हैं
-1- समवािय अथवा उपादान कारण §2 ई असमवािय §3 ई निमित्त
कारण।

दण्ड चक्रसूत्र आदि असमवाधि कारण तथा कुम्मकार अथवा अन्य कोई
अद्भूष्ट वस्तु निमित्त कारण है। समवाधि कारण के गुण, कार्य में समवेत
नित्य-सम्बन्ध रूप इसमवाध से प्राप्त इते हैं किन्तु असमवाधि तथा निमित्त
कारण के गुण समवेत नहीं होते। दण्डचक्र आदि के हरित या पीत होने का
तथा कुम्मकार के गौर या श्याम होने का घट के रंग पर कोई प्रभाव नहीं
पड़ेगा।

पारिजातहरण महाकाट्य में न्याय के इस कार्यकारण सम्बन्ध को इस
प्रकार कहा गया है - जो कुछ भी मनुष्य करते या कराते है, उस कार्य के
कारण प्रकृतिगत गुणों, सत्व, रजः तमो रूप से, सर्वथा-प्रसूत, बुद्धि विकारमय
निजी भाव मान भाव मय होते हैं। उसी प्रकार के अनुसार प्राप्त
परिणाम से चित्त को विकसित करते हैं। कारणमुणानुरूप ही कार्यसिद्धि
प्रसिद्ध है।

नयाय सूत्र 3/1/25 पर वात्स्यायन माध्य कारण मावात्कार्य मावः वैशेषिक सूत्र-4/1/3 पृथिव्यां रूप रसगन्धक्षां कारण मुणमूर्वका इति रूपाश्रयस्य घटोदेर्यत्समवायि कारणं कपालादि तदेमुणमूर्वकाः तथाचकपाल रूपं कारणेकार्य समवाय प्रत्यासत्याघळस्पावसमवायिकारणम् एवं रसादीवपि। वैशेषिक सूत्र 7/1/6 पर उपस्कार

² पारिजातहरण महाकाट्य - दशम सर्ग - 63

कारण व्यापाकर के पूर्व भी कार्य ईकारण मेंई विद्यमान रहता है क्यों कि असत् या अविद्यमान होने पर कार्य की उत्पत्ति हो ही नहीं सकती । सांख्य की ही माँति न्याय भी कार्य को सत् ही मानता है । पारिजातहरण महाकाच्य के दशम सर्ग में कहा गया हहै – इसलिए आपने जो कहा, छोटे कारण से बड़ी प्रतिज्ञा सा क्यों हुई तो उपर्युक्त कारणों से किसी भी कार्य के कारणों की लघुता या गुस्ताजीव के चित्तगत बोध का अनुसरण करती है अतः सबकी गति समान नहीं होती है

१९८ की उत्पत्ति में। तन्तु के रूप को नियत पूर्वभाव १ नियम पूर्वक
पहले रहना। तो है ही, किन्तु वह १ तन्तु-रूप। अन्यथा तिद्ध है क्यों कि पहले के
रूप के उत्पादन में ही वह चरितार्थ हो चुका है। भाव यह है कि किसी
कारण में कार्य के उत्पादन की कोई शक्ति होती है वह शक्ति जब किसी एक
कार्य के प्रति उपयुक्त हो चुकती है तो वह कारण। अनक। के प्रति पूर्वभाव जाने
बिना जिस पदार्थ का व प्रस्तुत कार्य के प्रति पूर्वभाव नहीं जाना जाता। अथात
कारण का भी कारण। वह अन्य तिद्ध है जैसे कुम्भकार के प्रति पूर्वभाव जाने बिना
कुम्भकार के पिता का घट के प्रति पूर्वभाव नहीं जाना जाता अतः कुम्भकार का
पिता घट के प्रति अन्यथा तिद्ध है। कुलाल जनको अपर

पारिजातहरण महाकाट्य में ब्रह्मा जी को जगत् का कारण बताते हुए कहा गया है --

[।] तांच्य तत्व कौमुदी - तांच्य कारिका - 9

² पारिचातहरण महाकाट्य - दशम तर्ग - 64

³ तर्कमाचा - पूष्ठ - 20

सबके उत्पादन तथा रक्षा में दक्ष होने के कारण अपने ही जात का पितृत्व प्राप्त कर लिया है श्रूंसबके पिता हो चुके हो है इस लिए ब्रह्माव जी जगत्कारण होते भी श्रूंघर के प्रति कुलाल की अपेक्षा जैसे उसका पिता अन्यथा सिद्ध कारण है श्रूं आपके द्वारा अन्यथा सिद्धि प्राप्त कर सही संसार के "पितामह" पद को धारणा करते हैं।

इस लिए "पितामह" ऐसा उनका नाम है।
-याय वैशेषिक में अनुमन दो प्रकार का माना गया है - हूं। हूं यथार्थ
हु अयदार्थ।

१ । १ वस्तु के सत्यरूप का ज्ञान यथार्थ अनुमन प्रमा या प्रमिति कहा जाता है जैसे रणत में "यह रजत है" यह ज्ञान १ २ १ किसी वस्तु को कोई दूसरी वस्तु जो वह नहीं है समझ लेना अथथार्थ अनुमन है । इसी को अप्रमा या विभ्रम कहते हैं। जैसे सीपी में "यह रजत है" यह ज्ञान।

अयथार्थ अनुभव या विभूम तीन प्रकार का होता है है। है संबंध है विकल्पात्मक ज्ञान है 2 है विपर्यय है मिथ्याज्ञान है 3 है तर्क । अयथार्थ अनभव विपर्य है । जो वस्तु जैते न हो उते उत रूप में जान लेना विपर्यय कहलाता है – "विपर्ययस्तु अतिस्मन् तद्ग्रहः इस भूम या भ्रान्ति भी कहते हैं । उदाहरणार्थ कोई दूर ते चमकती हुई तीधी हुंगु क्तिका है को देखता है, उते चाँदी हुंर जत है समझ लेता है । वहां जो चाँदी नहीं है, उत्तमें "यह चाँदी है" इस प्रकार का अनुभव हो रहा है । अतः यह विपर्यय या भ्रान्ति ज्ञान है ।

[।] पारिचातहरण महाकाट्य - द्याम तर्ग - 54

^{2.} तर्ब संग्रह:, प्रत्यक्ष परिच्छेद पृ०५०-५३ चौ० सं० सी० १९३५

³ तर्कतंत्रह - पृ0 173-139

⁴ तर्बभाषा - पृष्ठ ।4

⁵ पारिजातहरण महाकाट्य - स्काद्मा सर्ग - 76

पारिजातहरण महाकाच्य में विपर्यय ज्ञान को बताया गया है कि इन्द्र से नारद जी कहते हैं कि एकाएक ज्ञात हो पड़ी समता के कारण रस्सी में उदित हुई सर्पबुद्धि किसी की भी हो सबके लिए भ्रान्ति ही है।

उत्तर मीमांता वेदान्त --

वेदा न्तियों के तिद्धान्तों का उल्लेख पारिजातहरण महाकाट्य में किया गया है। सन्निकृष्ट पदार्थों में जो अपने धर्मों का आधान १आरोप१ कर देता है उसे उपाधि कहते हैं। भारतीय दर्शनों से प्रयुक्त होने वाला यह एक बहुत ही महत्वपूर्ण पद है। केशम मिश्र ने प्रयोजक को उपाधि कहा है। वाचर पत्थम में दिसा नक्षण हस प्रकार दिया गया है - अन्यथा रिथतस्य वस्तुनी हन्यथा प्रकाशनरूपे।

जब कोई वस्तु अपने स्वरूप से भिन्न रूप में प्रकाशित हो, तो भिन्न रूप में प्रकाशित होने का जो प्रयोजक हेतु होता है, उसे उपाधि कहते हैं। अतः अज्ञान ही उपाधि है। जब सिच्चिदानन्द ब्रह्म, ईश्वर याजीव के रूप में प्रकाशित होता है तो ईश्वरत्व का प्रयोजक समष्ट्यज्ञान और जीवत्व का प्रयोजक व्यष्ट्यज्ञान उपाधि बनता है। पश्चात्य विद्वानों ने उपाधि का अनुवाद प्रायः इन शब्दों में किया है — 1. Associate, 2. Limiting adjunct,

3. Environment.

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - स्काद्मासर्ग - 76

² उपसमीपवर्तिनि पदार्थे आदधाति स्वकीयं धर्ममित्युपाधिः वेदान्तसार पृ०५७

³ प्रयोजकायोपाधिः इत्युच्यते - तर्कमाषा

^{4 &}quot;वाचरपत्यम्"

प्राज्ञ १ जीव १ की अपेक्षा ईश्वर इसलिए बल्कुट है क्यों कि वह माया का स्वामी होता है।

पारिजातहरण महाकाट्य के ठाठ तर्ग में कहा गया है - ब्रह्म पर्यन्त तारे जगत् के ट्यवहारों को जड़, तथ्य न होता हुआ भी तत्य के जैता यह एक दूसरे को जोड़ता है। यद्यपि यह सम्बन्ध बहुत से औपाधिक नामों से कहा जाने वाला स्वस्वामि गुरु, फिर्म्य पितृ-पुत्र-पित-पत्नी भावादि भेदों से विभिन्न प्रकार का है। यह सम्बन्ध यद्यपि दो आश्रमों में रहता है किन्तु उन दोनों को तादात्म्य सत्ता का भेदक नहीं होता तथा किसी को बढ़ा घटाकर नहीं जोड़ता किन्तु औपाधिक आकृति के द्वारा जो दैत भातमान है उसे तो इस प्रकार के सही ज्ञान रहते भी विद्वानों को रखना ही होगा ।

अद्रैत वैदान्त के अनुसार जगत् की सुष्टिट वास्तविक नहीं है। जैसे
सीपी में भ्रम के कारण चाँदी भासित होने लगती है अथवा रस्सी में साँप
दिखाई पड़ने लगता है, उसी प्रकार अद्रैत आत्मतत्व पर अज्ञान के कारण
जगत् की भ्रमात्मक प्रतीति हो रही है। इसी को अध्यारोप कहते हैं।
शारीरिक भाष्य के प्रारम्भ में अध्यास का लक्षण इस प्रकार दिया है —
"स्मृति रूप: परत्र पूर्व दृष्टावाकातः। कभी भी सर्पभाव को न प्राप्त होने
वाली रस्सी पर सर्प के आरोप के समान वस्तु पर अवस्तु का आरोप करना
ही अध्यारोप है।

[।] वारिजातहरण महाकाच्य - घडठ सर्ग - 30

² पारिचातहरण महाकाच्य - ष्रघ्ठ सर्ग - 31

उ शारीरिक माध्य में अध्यात माध्य

⁴ असर्पभूताया रज्यों सर्पारोपवद वस्तुन्यवस्त्वारोपोअध्यारोपःवेदान्तसार-।।

अध्यारोप के विषय में Dr. Fitgeddward Hall लिखी हैं -

When the Vedantins speak of the origin of the world, for instance, they do not believe its origin to be true. This mode of expression they call false imputation.

पारिजातहरण महाकाच्य में अदैतता को सिद्ध करने के लिए बताया
गया है कि अविचल प्रेम में, अतात्मिक बाहरी व्यवहारों का क्या सम्बन्ध है
तो हे नारद ! रेसे प्रेम में भी व्यवहार की उपेक्षा नहीं की जा सकती क्यों कि
व्यवहार से तो यह जाना जा सकता है । सत् ब्रह्म जो सबसे निरपेक्ष है,
उसका भी अद्धयत्वेन ज्ञान, अविद्या मूलक अज्ञान से अन्यथा भासमान, अतथ्य प्रपंध
में बाधित ज्ञान के उत्तर अध्यवसाय, निषचयात्मक ज्ञान में ही प्रमाणित छोता
है । तात्पर्य यह है कि जैसे रज्जु में सर्प-ज्ञान भ्रमात्मक है, इसी प्रकार
अद्धितीय ब्रह्म में सारा देत प्रपंध भूमात्मक है । मूलतः सत्य एक ही है ।
इस प्रकार का दृष्टान्त जो दिया जाता है इसमें यदि रज्जु ज्ञान भी अध्य
ब्रह्म में असत्य है तो विष्ठम उदाहरण है किन्तु असत्य ज्ञान के बल, दृष्टान्त में
पुष्ट कर यथार्थ का बोध करा देने मात्र में इस व्यावहारिक उदाहरण की
आवश्यकता है । अन्यथा उसकी अद्भैतता कैसे सिद्ध होगी ।

[|] Rational Refutation, Page 209

² पारिजातहरण महाकाट्य-सप्तम सर्ग - 38

स्थून शरीरों की व्यष्टि है अर्थात एक स्थूनशरीरहूँ से उपहित चैतन्य, सूक्ष्म शरीर के अस्मिन का बिना परित्याग किए हुए स्थूनशरीर आदि में प्रविष्ट होने के कारण "विश्व" कहा जाता है। इस विश्व की भी उपाधिमूता यह व्यष्टिट इसका स्थून शरीर है अन्न का विकार होने के कारण हूँ और कोश के समान आत्मा का आच्छादक होने के कारणहूँ ही इसे अन्नमयकोष कहा जाता है।

पारिजातहरण महाकाच्य में कहा गया है - ये, जड़ अर्थात शास्त्रादि जान से शून्य होते हुए भी अपने किठन परिश्रम से ब्रह्म सिद्धि के उपयोगी १ पंचको ब्रात्मक ब्रह्म निरूपणा में प्रतिपादित १ अन्नमध्यको ब्रां के प्रचुर मात्रा में उत्पन्न करते हैं। जिस प्रकार रज्जु का विवर्त १ अर्थात रज्जु में भ्रान्ति के कारण प्रतीत होने वाला १ सर्प रज्जुमात्र ही होता है। उसी प्रकार १ ब्रह्मरूप वस्तु का विवर्त १ अर्थात ब्रह्म रूप वस्तु में अज्ञान के कारण भासित होने वाला १ जो अवस्तुभूत अज्ञाना दि प्रपंच है, उसका वस्तु मात्र ही रह जाना अपवाद कहलाता है।

तमस्त कार्यवर्ग की कारणस्वरूप से मिन्न कोई भी सत्ता नहीं है ऐसा भ निश्चय करना ही अपवाद है।

[।] वेदान्तसार - 32

² पारिचातहरण महाकाट्य - द्माम सर्ग - 20

उ वेदान्तरार - 47

⁴ कार्यस्य कारणमात्रसत्ता विशेष्टमं, कारणस्वरूपव्यतिरेकेण कार्यस्यासत्तावधारणमापवादः-विद्वन्यनोरंजनी

*तत्वतोडन्यथाभावः परिणामः, अतत्वतोडन्यथा भावो विवर्तः

पूर्वावस्था का परित्याग किए बिना ही दूसरी अवस्था का भासित होना उस वस्तु का विवर्त है, जैसे रज्जु का रज्जु रूप में रहने पर भी सर्वरूप से भासित होना ।

वेदान्तियों को माया के कारण जगत् में बाह्यतः मेद दिखाई पड़ता है। जैसे रज्जु में सर्पज्ञान भूमात्मक है इसी प्रकार अद्वितीय ब्रह्म में सारा दैत प्रपंच भूमात्मक है।

पारिजातहरण महाकाव्य में इन्द्र से नारद जी कहते हैं कि एकाएक इति हो पड़ी समता के कारण रस्ती में उदित हुई सर्प बुद्धि किसी की भी हो, सबके लिए भ्रान्ति ही है। जो सर्वधा परिपूर्ण आत्मा वाला नहीं है जो सभी विष्यों में प्रतिबुद्ध नहीं है अर्थात् जो सर्वज्ञ नहीं है तथ्यज्ञान से गिरे पुरुष्य की पद-पद पर भ्रान्तियां होती है।

जिस प्रकार मकड़ी अपना जाला बनाने के लिए रही, लकड़ी और यन्त्र आदि लोक प्रसिद्ध वस्तुओं की अपेक्षा नहीं रखती उसी प्रकार ईश्वर सुष्टि के पूर्व अकेला ही बिना किसी की सहायता की अपेक्षा केवल अपनी माया शक्ति के द्वारा सम्पूर्ण जगत् की सुष्टिट कर देता है । वेदान्त का यह सिद्धान्त मायावाद कहलाता है ।

[।] ब्रह्म सूत्र 1/2/21 पर वेदान्त कल्पतरूपरिमल

² अवस्थन्तरमानं तु विवतो रज्जुसर्पवत् - पंचवशी 13/8-9

³ पारिजातहरण महाकाच्य - एकादश तर्ग - 76,77

⁴ वेदान्त सार पू0 63

पारिजातहरण महाकाट्य में कृष्ण को मायावी बताया गया है। कृष्ण की माया तो विख्यात ही है जिसके वशीमूल होकर आप भी अज्ञान परम्परा से अपनी चेतना को मलिन कर रहे हैं।

भगवान् श्रीकृष्ण ही इस सारी सुष्टि के रचियता हैं ऐसा बताते हुए कि वि कहते हैं कि — दूष्टित दृष्टित वाले तुम्हारे हूं इन्द्र के तथा हमारे हुनारद के हैं भी अधिक उपकारार्थ तथा कर्मयोग और ज्ञानयोगात्मक दोनों मार्गों की विक्षा देने के लिये निजी माया से ही जन्मना मनुष्य बने हुए है, अज्ञान से ही आप हुन्द्र उस नारायण के उसर आहेम कर रहे हैं। उनकी निन्दा मूर्खता ही है, जो अभिनय कर अपनी बहुरंगी पृकृति तथा सारे जयत् को निजी कलाओं से नियाता है।

जिस प्रकार एक ही महाकाश आम, पलाश आदि के वनों से अविच्छिन्न होने पर विभक्त जैसा प्रतीत होता है अथवा जिस प्रकार एक ही महाकाश अलग-अलग तालाबों में प्रतिविम्बित होने पर विभक्त हुआ जैसा प्रतीत होता है परन्तु वस्तुतः अलग-अलग बनों से अविच्छिन्न होने के कारण अथवा अलग-अलग तालावों में प्रतिविम्बित होने के कारण आकाश में किसी प्रकार का पार्थक्य नहीं होता, उसी प्रकार एक ही जैतन्य कारण सुष्टित की उपाधि से उपहित होने पर ईश्वर और प्राइ, सूक्ष्महृष्टित की उपाधि से उपहित होने पर हिरण्यगर्भ और तैजस तथा स्थूल सुष्टित की उपाधि से उपहित होने पर वैश्वानर और विश्व कहलाने के कारण विभक्त हुआ जैसा प्रतीत होता है,

[।] पारिजातहरण महाकाच्य रकादश सर्ग - 82

² पारिजातहरण महाकाच्य - एकादश सर्ग - 85

परन्तु आकाश के समान निर्नेष होने के कारण उपाधि भेद से चैतन्य में किसी प्रकार का भेद या पार्थक्य उत्पन्न नहीं होता । अतः तात्विक दृष्टित से ईश्वर हिरण्यगर्भ और वैश्वानर तथा प्राइ तैजस और विश्व सब एक ही हैं।

इस महाप्रपंच और उससे उपहित चैतन्य से, तप्त लौहिषण्ड के समान अलग न प्रतीत होता हुआ अनुपहित चैतन्य "सर्व छिल्विदं ब्रह्म" अर्थात् यह समस्त प्रपंच ब्रह्म ही है।

यह तम्पूर्ण विशव इस वैतन्य पुरुष की महिमा अर्थात् विभूति है।

इस सम्पूर्ण जगत् को मैं एक अंश से व्याप्त करके त्थित हूँ - इस प्रकार
कृष्ण ने अर्जुन से ब्रह्म के एक अंश में जगत् की त्थिति बताई है । पारिजातहरण
महाकाव्य के द्वादश सर्ग में मगवान् कृष्ण को शुद्ध चैतन्य बताया गया है - प्रकृष्ट
झान १शुद्ध चैतन्य। द्वारा जड़ जगत् को परिमार्जित करता हुआ इस जड़ जगत्
को विभिन्न जनमों में प्रकाशित करते हो १ अर्थात विभिन्न जन्म नेकर तुम इस
संसार को प्रकाशित करते हो १ तुममें प्रणा होने पर वह व्यापक वाइ मय तुम्हारे
गुण, जाति, कर्म की शुद्धता से प्राप्त है। हे अनन्त । प्रतिदिन नए जगत् का
निर्माण करते हो । जैसे सद और अर्मूत को विस्तृत करते हो वैसे ही इस
वाइमय जगत् को विस्तृत करते हो ।

[।] वेदान्तसार - 34

² छान्दोग्य 3/14/1

उ भग्वेदसंहिता 10/90/3

⁴ पंचदशी 2/56

⁵ प्रारिजातहरण महाकाच्य - दादश सर्ग - 45

⁶ पारिचातहरण महाकाच्य - दाद्मा सर्ग - 46

काट्य में कृष्ण को निर्लेप अद्वैत बताया गया है। ये तारे गुण या दोष बुद्धि में रहने वाले तथा बुद्धिगत विशेष्ण हैम्द्रक, रज, तत्त्व आदि के विशेष्ण को भोगने वाले हैं जितमें कोई विशेषण मेद्रक है ही नहीं ऐते चित्तस्वरूप परमात्मा में तो वास्तविक विशेष विभाग ही नहीं है वह तो निर्लेप अद्वैत है। आकाशादि स्थूनभूत पंचीकृत होते हैं। आकाशादि पाँच सूक्ष्मभूतों में प्रत्येक दो तमान भागों में विभक्त करके इत प्रकार प्राप्त होने वाले उन दश मागों में जो प्राथमिक पाँच माग हैं, उनमें प्रत्येक के चार तमान भाग करके, उन चार भागों को अपने-अपने दितीय अर्थनाग को छोड़कर अन्य भूतों के दितीय अर्थनागों में जोड़ देना ही पंचीकरण है।

"पृत्येक मून को दो भागों में विभक्त करके, फिर प्रथम भाग को चतुर्धा विभक्त करके अपने - अपने ते भिन्न चार मूतों के द्वितीय भाग में जोड़ देने ते वे आकाशादि पंचीकृत हो जाते हैं।

पाँच महाभूतों के, तमान रूप से पंचात्मक होने पर भी उनमें अपने-अपने अभाग का विशेष भाव होने के कारण उस-उस नाम से व्यवहार होता है।

"त्रिवृत्करण की श्रुति पंचीकरण को भी उपलक्षित करती है ।

"पंचीकरण के पश्चात माँ तिक सुष्टित होती है। बार प्रकार के समस्त स्थून शरीर कृमशः स्कत्व और अनेकत्व की बुद्धि के विषय होने से, वन या जनाश्य के समान समष्टित होते हैं तथा वृक्ष या जनविन्दु के समान व्यष्टित भी होते हैं।

[।] पारिजातहरण महाकाट्य - एकाद्मा सर्ग - 87

² १व१ पंचदशी - 1/26 १व१ शेकराचार्य की पंचीकरण प्रक्रिया

³ ब्रह्मसूत्र - 2/4/22

⁴ छान्दोग्य - 6/3/2

⁵ वेदान्तसार - \$31\$

पारिजातहरण महाकाट्य में वेदान्त की इस पंचीकरण प्रक्रिया तथा उसके बाद होने वाली मौतिक हृष्टिट का वर्णन किया गया है -

"हे अनधीश श्वर्थात् जो स्वयं ईश्वर है जिसका कोई ईश्वर नहीं है श्र तुम्हारे श्वमानान् कृष्ण के श्रे पंचीकरण से आकाशादि पंचक इस प्रपंच से उत्पन्न हुए हैं। अलग-अलग करके अद्भुत जगत् अभिन्न होता हुआ भी देखने वालों में मेद पैदा करता है।

"दूर से गिरी हुई जल की बूँदे मिद्दी में अनिल में या पृथ्वी में और कहीं लीन हो जाएं किन्तु परमार्थतः वह पृथक नहीं है उसी प्रकार तुम एक ही जगत के रचयिता हो । किव ने पारिजातहरण महाकाच्य के घठित सर्ग में सांख्य, वेदान्त तथा न्याय आदि अन्य सभी दर्शनों के सिद्धान्त का वर्णन एक किव ने पारिजातहरण महाकाच्य के घठित सर्ग में सांख्य, वेदान्त तथा न्याय आदि अन्य सभी दर्शनों के सिद्धान्त तथा न्याय आदि अन्य सभी दर्शनों के सिद्धान्त का वर्णन एक ही इलोक में करके अपनी अद्भुत प्रतिमा का परिचय दिया है।

मेरे मत ते गुण, लिंग आदि उपाधियों ते रहित शुद्ध ज्ञान रूप परम ईश्वर स्वरूपिणी तुम्हीं है सिक्मणी है हो, तुम्हें कोई कोई है सांख्यमत वाले हैं प्रकृति कहते हैं। वेदान्ती तुम्हें चिद्धहम बतलाते हो, वही तुम्हें माया कहकर भी प्रपंचित करते है। मीमांसक तुम्हें क्रिया कहते हैं। योग दर्शन वाले तुम्हें तिदि मानते हैं और तार्किक तुम्हें बुद्धि इच्छादि ईश्वर के गुणों गिनकर गुणात्मक बुद्धि रूप में देखते हैं। पौराणिक तुम्हें परमेश महिष्यी पराम्बा कहते हैं।

[।] पारिजातहरण महाकाट्य

² पारिजातहरण महाकाच्य

³ पारिजातहरण महाकाच्य - घठ तर्ग - 41

भाव यह है कि विभिन्न मतान्तरों ते देखी जाने वाली सर्वशिक्तशालिनी ईशवरी तुम्ही हिंस किमणी हो।

उपनिषद् ज्ञान

पारिजातहरण महाकाट्य के चतुर्द्धा तर्ग में योगक्षेम का वर्णन मिलता है, जो किंद-उमापित के उपनिष्ठद ज्ञान को प्रकट करता है। कठोपनिष्ठद में कहा गया है श्रेय और प्रेय जब दोनों मनुष्य के पात आते हैं तो विद्वान उन दोनों की इंटिंगी तरह परीक्षा करके विवेचन करता है। धीर व्यक्ति प्रेय की अपेक्षा श्रेय का वरण करता है और मूर्ख योगक्षेम के कारण प्रेय का वरण करता है।

योगदेम का तात्पर्य है - लालच और आसि कि कारण। "बिना पाई वस्तु का पाना योग है तथा पाई हुई वस्तु की रक्षा करना देम है।

योगक्षेम की व्युत्पत्ति इत प्रकार की गई है :-योगेत्रच क्षेमत्रच तयो तमाहारः इति योगक्षेमम्, तस्मात् योग क्षेमात् । इतमें "हेतौ" पंचमी है ।

^{। &}quot;अप्राप्तस्य प्राप्ति योगः, प्राप्तस्य रक्षणम् केषाः । कठोपनिष्यः - दूसरी वल्ली - 2

पारिजातहरण महाकाट्य में म्मवान् कृष्ण मुक्त पर बैठकर नन्दन वन जाते हैं। मार्ग में उन्हें यम की नगरी भी मिलती है, उसी नगरी का वर्णन करते हुए किव कहता है – स्वधा का आचरण करते हुए अर्थात्स्वधा से तृप्त करते हुएवही यह यम की नगरी है जहाँ देव लोग पिता लोगों का भरण करते हैं। कर्म के द्वारा प्राप्त उन-उन विशेष्ठ जनों के योग्य १ जैसे-जैसे कर्म के लिए १ योगदेम से १ असा कित के कारण १ उन-उन पितरों की प्रतिभावना करते हैं।



[।] पारिजातहरण महाकाच्य - चतुर्दश सर्ग - 20

पंचम अध्याय

"पारिजातहरण महाकाच्य में काव्यात्मक सौन्दर्य"

वस्तु वर्णन तथा प्रकृति चित्रण :

प्रकृति मानव की सहचरी है। जब से मानव ने आंखे खोली है, सूर्य, चन्द्रमा, नक्ष्म, पृथ्वी, आकाश, वायु, जल, वृक्ष, पक्षी आदि विभिन्न रूपों में प्रकृति सदैव उनके साथ रही है। जीवन पर्यन्त प्रकृति रहने के कारण मनुष्य का प्रकृति के साथ रागात्मक सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। संस्कृत काव्यों में प्रकृति उभ्य रूपेण चित्रित की गई है – आम्बन रूप से तथा उद्दीपन रूप से आलम्बन रूप वाले वर्णनों में प्रकृति स्वयं वर्णम विष्म रहती है। तथा उद्दीपन रूप में उसका मानव प्रकृति के उमर उत्पन्न प्रभाव ही वर्ण्य विष्म रहता है। काव्य के जीवित तत्व रस के उपनिबन्धन में तत्पर किव को अपने काव्य में उद्दीपन-विभाग के रूप में प्राकृतिक दृश्यों का आश्रय मृहण करना पड़ता है।

कवि अपनी सहृदयता तथा वर्णन कौशन के द्वारा काट्य में आर हुए इतिवृत्तात्मक अंशों को भी सरस बना देता है। संस्कृति कवियों की यह विशेष्टता रही है कि वे अपने काट्य में एक अत्यन्त नगण्य वस्तु को भी अपनी सूक्ष्मदर्शिता के आधार पर श्रोता के सम्मुख एक अत्यन्त आकर्षक चित्र उपस्थित कर देते हैं। काट्य में आलम्बन ही मुख्य होता है। कवि अपने काट्य में जिन वस्तुओं का वर्णन करता है, वे किसी न किसी रूप में आलम्बन ही मानी जाएगी। काट्य में वर्णित प्रत्येक वस्तु किसी न किसी पात्र के किसी भाव की आलम्बन होती है जो किसी पात्र के किसी भाव की आलम्बन नहीं होती वह किसी या पाठक के भाव की आलम्बन होती है। किव अपनी सहृदयता से उस वस्तु का किसी भाव के साथ गृहण करता है और उसी रूप में पाठक के सम्मुख रखने का प्रयास करता है जिससे पाठक को भी उस वस्तु का उसी रूप में गृहण हो । यदि किव ने अपने शब्द-चित्र द्वारा उस वस्तु का वह अभिनेत रूप उपस्थित कर दिया जो पाठक के भी उसी भाव को उद्खुद कर दे तो मानों उसे अपने काट्य में बड़ी सफलता मिल गई । उसे उस वस्तु में स्वयं रमना पड़ता है तथा साथ ही पाठक को रमाना पड़ता है । वन, पर्वत, नदी, ऋतुओं पुरी विवाह, यात्रा प्रभा, सन्ध्या, रजनी, यन्द्र, रूप-सौन्दर्य आदि वस्तुर रेसी है जिसमें मनुष्य की रागात्मक वृत्ति रमती है । ये उसमें रागात्मक भावों के आलम्बन है अतः उन वस्तुओं का वर्णन भी रसात्मक ही माना जारगा ।

पृकृति के नाना रूप जैसे वन, उपवन, नदी, रैल, सूर्योदय, यन्द्रोदय, वसन्त, को किलस्वर एवं मेघ्माला, आदि मनुष्य के विविध भावों को उददीप्त करने वाले होते हैं। संस्कृत महाकवियों दारा धित्रित प्राकृतिक दृश्यों में पृकृति के मंजूल तथा भयावह रोमांचकारी स्वरूप का दर्शन होता है। पृकृति के मंजूल रूप से आश्रम उसके सुकृमार रूप जैसे – उपवन, बसन्त, चन्द्रोदय एवं तपोवन आदि से है तथा भयावह रूप से आश्रम उसके भीम रूप जैसे अट्यी, गीष्म आदि से है। इस प्रकार वर्ण्य विषय के आधार पर पृकृति के दो रूप होते हैं – १११ सुकृमार रूप एवं १८६ भीमरूप। कवियों ने सौन्दर्य का मूल अधिकान पृकृति को स्वीकार किया है और पृकृति का रूपात्मक एवं आलंकारिक चिल्ला किया है। पृकृति के पदार्थों का चेतनिकरण और पृत्तिकात्मक पद्धित पर स्वतन्त्र चिल्ला इन कवियों की विशेष्क्रता रही है। कवियों ने पृकृति और पृकृति वातावरण को चेतन स्वरूप में स्वीकार किया है जिस पर मानदीय – भावनाओं विचारों और क्रियाओं का स्थायी प्रभाव पड़ता है।

सुष्टिट के प्रारम्भ से ही मानव हृदय प्रकृति-सौन्दर्य की और आकृष्ट होता है। वृक्ष, पर्वत, नद, नदी, सर, वादी, पुष्प, तृहिन, तृषार पशु, पक्षी, जीव, जन्तु, आकाश, चन्द्र, चाँदनी, उद्या, प्रभात, प्रदोष, सन्ध्या, निशीथ, तारे, सभी में उसके सौन्दर्य के दर्शन किए है। पहले आश्चर्य मिश्रित आह्लाद से और फिर परिचय जन्य प्रीति स्वं अनुराग से प्रभावित हो मानव मन उनकी और बार-बार झूका है और जब भी जगत के संघर्षमय कोलाहल से श्रान्त हो उसकी आत्मा बेघेन हो उठी है तब-तब उसने प्रकृति की मनौरम रंगस्थली में दो चार क्षण बैठकर विश्वान्ति लाभ किया है। वेदों के हिरण्यमर्भः समवर्तताग्रे" में जो आनन्दोल्लास मिश्रित श्रद्धा का स्वर है वह हैपत्रय दैवस्य कार्व्यं न ममार न जीर्यति" जैसे ऋचाओं में और स्पष्ट हो गया है। और यह देव का काच्य क्या है। समस्त निसर्ग। इस लिये वेदों में ब्रह्म को कवि कहा है। फिर मना लोक में उस दायित्व का उत्तराधिकारी कवि प्राकृतिक सौन्दर्य की ओर क्यों न आकृष्ट होता । हमारा सम्पूर्ण काट्य रेते रमणीय वर्णनां ते भरा पड़ा है । कवि उमापति द्विवेदी ने अपने पारिजातहरण महाकाच्य में प्रकृति के आलम्बन तथा उददीयन दोनों रूपों को अपनाया है। कवि ने अपने रूपकों में द्वारिकावर्णन, प्रभात वर्णन, शरद-वर्णन, प्या ग गंगा वर्णन, वसन्तवर्णन, नन्दनवन वर्णन आदि प्रसंगों में प्रकृति के सकुमार रूपों का चित्रण किया है। सन्ध्या वर्णन, समुद्र वर्णन तथा युद्ध-वर्णन आदि प्रतंगों में प्रकृति के भीम रूपों को प्रदर्शित किया है । कुछ स्थलों पर प्रकृति चित्रण बड़ा भव्य है। कहीं-कहीं प्रकृति का ऐसा वर्णन किया है मानों हृदय के सामने सम्पूर्ण द्वाय अंकित हो गया हो । पारिजातहरण महाकाट्य में कई प्रकार से प्रकृति का वर्णन किया गया है। आलंकारिक रूप में उनका प्रकृति का चित्रण तो बहुत ही मनोहर है । विभिन्न अलंकारों के माध्यम से

किव ने प्रकृति का वर्णन किया है जिसमें उपमा, रूपक, उत्पेक्षा आदि अलंकार मुख्य है। कितात्मक रूप के प्रकृति चित्रण में उन्होंने प्रकृति का कित सा उपस्थित कर दिया है। मानवीकरण के रूप में प्रकृति मानव का रूप गृहण कर लेती है। विभिन्न दर्शनों के माध्यम से भी किव ने प्रकृति का वर्णन किया है।

कवि उमापति द्विवेदी विरचित पारिजातहरण महाकाट्य के रूपकों मैं चित्रित प्रकृति के नाना उपादानों की झाँकी विभिन्न व शीर्षकों के अन्तर्गत इस प्रकार प्रस्तुत की जा सकती है।

दारिकापुरी वर्णन :-

कवि ने अपने पारिजातहरण महाकाच्य में द्वारिकापुरी का वर्णन
विभिन्न रूपों में किया है। इनके द्वारिकापुरी के वर्णन में विभिन्न अलंकारों की छटा दिखाई पड़ती है। विभिन्न अलंकारों के माध्यम से उन्होंने इस पुरी का वर्णन किया है। रूपक अलंकार के माध्यम से द्वारिका का वर्णन पृस्तुत है – वे भगवान श्रीकृष्ण समुद्रस्पी अपने वस्त्रों को संवारती एवं दैदीप्यमान भूष्ण रूप रत्नों को धारण कर, मेधों को अपना केशपाशा बनार, एक असाधारण नायिका के वेश को धारण करती हुई उस द्वारिकापुरी का शासन करते थे। उपमा तथा रूपक के माध्यम से द्वारिका का बहुत ही मनोरम चित्रण काच्य में किया गया है। द्वारिकापुरी की बावड़ियों की तुलना नायिकाओं से

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - प्रथम सर्ग - 2

की गई है - पुदकते हुए मीन्हिंपी मनोहर एवं चंचल नेत्रों वाली क्षण-क्षण में खिसकते हुए वस्त्र रूप शैमाल से सुशो भित होने वाली तथा चिरकाल तक जूंची जलराशि को उन्नत उरोजों के रूप में धारण करने वाली बावडियां ना यिकाओं की भांति किसके मन का नहीं हर लेती । यह पुरी कही पिथकों के गमनागमन से उठी हुई धूलियों से किंचिन्मात्र भी मिनन हो उसके लिए समय-समय पर चन्द्रकान्त मिण के द्रव से निकलते हुए जल के व्याज से चन्द्रमा ही मानो सुधा कर होने के नाते सुधा १ यूने१ के माध्यम से यहां से लीप जाया करता है । उत्प्रेक्षा अलंकार के माध्यम से यहां द्वारिका का बड़ा ही मनोरम चित्र उपस्थित किया गया है ।

शब्दालं कारों के माध्यम से भी द्वारिकापुरी का वर्णन इस काट्य में किया गया है। अनुप्राप्त का उदाहरण प्रस्तुत है -

"पदे पदेइस्यास्तु मिथो मनोहरौ सदारमेते सरसी सरोवरौ ।

दारिकापुरी के वर्णन में प्रकृति का उद्दीपन रूप भी मिलता है।
किव के इस दारिका वर्णन में शृंगारिक भावनाओं का समावेश पाया जाता
है। दारिकापुरी में स्थित मनोहर बावड़ी और सरोवर नायक नायिका
के भाव को उद्दीप्त करने वाले है। जलाश्यों में जो जल की तरंग उठती है
वह मानों नायक नायिकाओं के बदे हुए काम विकार है।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - प्रथम सर्ग - 20

² पारिजातहरण महाकाच्य – पृथम सर्ग – ।।

³ पारिजातहरण महाकाच्य - प्रथम सर्ग - 19

⁴ पारिजातहरण महाकाच्य - प्रथम सर्ग - 18, 19

मानवीकरण के रूप में भी दारिका का वर्णन किया गया है। वह दारिका पुरी समुद्ध रूपी अपने वस्त्रों का संवारती एवं दैदी प्यमान भूषण रूप रत्नों को धारण करती है तथा मेघों को अपना केत्रमात्रा बनाती है। इसकी मनोहर बावड़ी को नायिका तथा सरोवर को नायक की उपमा दी गई है। इसके जलात्राय की जल की तरंगों को नायक नायिका के बढ़े हुए काम विकार से तथा सारस पक्षी के कलरव को रसमग्न भूमी के वार्तालाप से उपमा दी गई जिस प्रकार मनोहर एवं चंचल नेत्रों वाली खिसकते हुए वस्त्र से सुन्नों मित होने वाली तथा उन्नत उरोजों को धारण करने वाली नायिकाएं सबका मन हर लेती है उसी प्रकार द्वारिकापुरी की बावडिया सबका मन हर लेती है जिसमें प्रवक्ती हुई मीन है, जो शैमाल से सुन्नों मित है तथा जिसमें जूँची उँची जलरात्रि है । इस प्रकार बावड़ियों का मानवीकरण नायिकाओं के रूप में किया गया है।

चित्र रूप में तो द्वारिकापुरी का सजीवचित्र ही कवि ने अपने काट्य में अंकित कर दिया है:-

इस पुरी में गुम एवं दैदी प्यमान गगन चुम्बिनी अद्दालिकाएं हैं। इस पुरी में जहां मरकतमणि विभूषित महल है वहां वर्षाकाल का आनन्द है जो सूर्यकान्तमणि जिल्ल है वहां दिन के समान प्रकाश है नीलम जिल्त महलों पर अमारात्रि की शोभा है तथा चन्द्रकान्तमणि जिल्ल भवनों पर पूर्ण ज्योसना बिहार कर रही है। ऐसे विविध रत्नों की विधित्र प्रभा से द्वारिकापुरी की अपूर्व छटा दिखा रही है।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - प्रथम तर्ग - 2

² पारिजातहरण महाकाच्य - प्रथम सर्ग - 20

उ पारिजातहरण महाकाच्य - प्रथम सर्ग - 3

⁴ पारिजातहरण महाकाच्य - प्रथम तर्ग - 6

यित्ररूप में तीनों लोकों की आकृति लिए तमुद्र से घिरी यह पुरी सर्वजगदाश्रय मूत नारायण के शरीर को भी धारण करती हुई उनके श्री अंग से अपने आपको बद्रकर सिद्ध कर रही है इस पुरी की दीवारें बहुत ही प्रकाशमान है जिससे यह अम हो जाता है कौन प्रतिविम्ब है तथा कौन प्रतिविम्बी १

इसके चरणप्रान्त में सदा सरिताओं का स्वामी समुद्र लहराता रहता है तथा अद्दालिकाओं के मिखर पर जटित चन्द्रकान्त मणि प्रत्येक चन्द्रोदय के समय पिछलती रहती है।

यह पुरी तदैव विजली के पंखों से वीजित होती हुई अपने लिए वायु की भी अपेक्षा नहीं करती फिर भी इसके आदर से प्रसन्न चित्त हो वायुदेव शीतल मन्द सुगन्ध आदि गुणों से इसकी सेवा में लगे रहते है इस पुरी की भित्तियों पर जड़े हुये सूर्यकान्तमणियों को अधिक से अधिक अपनी किरणों द्वारा चमकाने के लिए सूर्य ही इसका आश्रय लेते हैं। दैदी प्यमान सुवर्णमय गवाक्षों की माला से सुशो भित, सुन्दर सोने के बने कलश-कंगूरों से अलंकृत तथा उचित विभाग पूर्वक बनाए गए राजमार्ग, विश्रामस्थन एवं चौराहों से युक्त अथवा राजाओं के यह स्थन एवं प्रांगण से सम्यन्न यह पुरी ऐसी जान पड़ती है मानों इस पृथ्वी की मूर्तिमती चिरंतन प्रतिष्ठा हो। इसके जलयन्त्रागार में चक्कार नाचते हुए पट्वारों पर तनी हुई जल चांदररूप.

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - प्रथम सर्ग - 7.8

² पारिजातहरण महाकाच्य - प्रथम तर्ग - 10

उ पारिजातहरण महाकाट्य - प्रथम सर्ग - 12, 13

शरत्कालीन बादलों के भीतर से टपकते हुए मोती के आकार के बिन्दुओं पर लुभाये हुए मयूर, चातक आदि पक्षीगण बराबर इसे धेरे रहते हैं। इस पुरी का वारियन्त्र निरन्तर नाचता रहता है।

इस पुरी में कहीं क्रीड़ापर्वत सुशो मित हो रहा है, जो अपनी उँचाई के कारण आकाश को लाँधता सा जान पड़ता है। वह उँचे तक पैले हुए प्रकाश से दी प्रितमान है, विविध प्रकार के पूले हुए वृक्षों और लताओं से उल्लिसित है तथा विलासिनी ललनाओं के धारण किए हुए सुरतकालीन मनोहर सुगन्ध्युक्त अंगराग आदि के द्वारा अत्यन्त सौरभ का भार सा दो रहा है।

दारिकापुरी पाष्प्रणिनिर्मित घनी ग्रहणिक्तयों से मेघों की घटा सी प्रतीत होती है। योद्धाओं के यमयमाते हुए आयुध ही वहां बिजली सी यमका रहे हैं। उच्चस्वर से बजने वाली मंगलसूचक दुन्दिभिन्मों की ध्वनि ही उन मेघों की गर्जना सी जान पड़ती है और उंग बिरंग छज्जों के रूप में मानों इस परी ने इन्द्र धनुष्प धारण कर रखा है।

यहाँ के घरों में पहराती हुई ध्वजार मानों, हाथ हिला कर काल को मनमानी करने ते रोकती और अपने को स्वाधीनता की स्थापना का तंकेत करती हुई आकाश को भी उपर उठार हुए हैं।

[।] पारिजातहरण महाकाव्य - प्रथम सर्ग - 15, 16

² पारिजातहरण महाकाच्य - प्रथम सर्ग - 21

³ पारिजातहरण महाकाच्य प्रथम तर्ग - 23

⁴ पारिजातहरण महाकाट्य - प्रथम सर्ग - 28

यहाँ की विशाल सड़कों पर नाना प्रकार के रथ निरन्तर इधर से उधर दौड़ते हैं, जिनकी घरघराहट मेघ गर्जना को मात करती तथा मनस्वी कुशल सारिथ्यों का हाँकना और सुशिक्षित घोड़ों की लीला लसित गति देखते ही बनती है।

इस पुरी के स्थान-स्थान पर टिकाई गई यादवों की सेनाएं, चमकते चौखे अस्त्र-शस्त्र रूप मीन, मकर आदि जल जन्तुओं से भरी, निजी पराकृम से सारे जगत् को भी बहा देने में समर्थ, पारस्परिक साहंकार कोलाहल करती दूसरे महासमुद्र, सी दिखाई देती है।

कुलक रीति से द्वारिका पुरी के राजमहल का वर्णन किया गया है। राजमहल के वर्णन में किय ने चित्रात्मक हैली को अपनाया है तथा राजमहल का चित्र पाठकों के सामने उपस्थित कर दिया है। इसी द्वारिका पुरी में विशाल परिधि से युक्त खूब चमकते हुए मणिगण से जटित, एवं प्रमा से प्रज्ञवित विशेष शालाओं से जो सुशो मित है। शास्त्रास्त्रों से सज्जित पृहरीगण स्थान-स्थान पर जिसकी रक्षा के लिए खहे है।

जित राजमहल में कहीं तो युवक वृन्द का क्रीड़ा कौशना दि पूर्ण आनन्दमय व्यवहार चल रहा है, कहीं प्रत्येक दिशाओं की अप्तराएं नाच रही हैं, कहीं परम निपुण यादवों की कौं तिल तजकर बैठी हुई है। कहीं यह हो रहे हैं, कहीं प्रजाओं के व्यवहार निर्णय के लिए विशेष्णा धिकारियों की दरबार लगा हुआ है। कहीं आनन्दमग्नमयूर नृत्य कर रहे हैं, कहीं कलाबाज कबूतरों

[।] पारिजातहरण महाकाट्य - प्रथम सर्ग - 32

² पारिजातहरण महाकाच्य - प्रथम सर्ग - 35

उ पारिजातहरण महाकाट्य - प्रथम सर्ग - 44

⁴ पारिजातहरण महाकाट्य - प्रथम सर्ग - 45, 46

की कलाबाजी करा कराकर नवयुर्वितयां उल्लिसत हो रही हैं। उँची अद्दालिकाओं पर लीला-विलास में लगी ललनाओं के द्वारा हजारों चन्द्रमा की जैसी कान्तियों से जो राजमहल प्रकाशमान है। जो बहुत उँचा है तथा स्वच्छ शीशों से जड़ा है सवं देवताओं से सेवित है, जिसमें व्यवहार की रीति संश्म रहित है। कार्य के सम्मादन में लगी लोगों की भीड़ जिसके मार्ग तथा द्वार पर लगी है तथा अनेक सामन्तों की मोटर आदि विभिन्न सवारियों से जिसका प्रांगण भरा हुआ है।

स्वर्ग-वर्णन :-

पारिजातहरण महाकाच्य के रकाद्मा तर्ग में स्वर्ग तौन्दर्य के वर्णन में किव ने अपनी अद्भुत प्रतिभा का प्रदर्शन किया है। किव ने इस वर्णन में स्वर्ग का छित्र तां अंकित कर दिया है। किव ने स्वर्ग के मिणमय और सुवर्ण होने की चर्चा बार-बार की है। तस्मितः यह किव परम्परावश ही किया गया है। दिव्य रत्नों से जिल्ल होने के कारण बढ़ी शोभा से भा तित दोनों तत्वाली स्वर्गपुरी की परिखा के समान देव नदी को पार कर एक कनक पर्वत शुमुमेल हैं के शिखर के बीच इन्द्र नील मिण के बने प्राकार के भीतर विशाल प्रांगण वाले जितमें सभी दिग्पाल घूम रहते थे, ऐसे इन्द्र के भवन में प्रवेश किया। इस इन्द्र के भवन के बीच मिणमय मिति पर रत्नों की पंच्यीकारी द्वारा कढ़ी, लता पुष्पादि से अंकित नाना प्रकार के प्रतिविम्बमय सुन्दर धिकारी को चित्रित कल्यनातीत सजावदों से सजी श्रुटमार्ग समा को देखा।

[।] पारिजातहरण महाकाट्य - प्रथम सर्ग - 49,53

² पारिजातहरण महाकाच्य - एकाद्या सर्ग - 2-4

किव ने चित्रात्मक शैली ते सुध्मां सभा का चित्र सा उपस्थित कर दिया है। जिसके चारों ओर ते सुन्दर फाटक लगे हैं। भिन्न-भिन्न कक्षाओं ते जो शो भित है जिसमें रत्नों ते जड़े खम्मे हैं। बीच में बने मणिमय बेदिकापर देवराज का सिंहासन जिसमें सजा हुआ है। चित्र में कद्रे भी सत्य की समान अथवा आश्चर्यमय अनेक रंगों वाले सत्यरूप के पालतू विहंगमों ते जो शोभमान थी। नानावर्ण के सूर्यचन्द्र के किरण जालों ते जो चारों ओर ते चमक रही थी कहीं जिसमें धन घटा सी धिरी, हुई थी कहीं चन्द्रकान्त मणियों के पिघले जलों ते शीतल सार वाली थी। जिसके भीतर ही कल्प लता के कुंजों ते शो भित तट वाली पीयूष्य पुष्कारिणी बनी शो भित हो रही है, कहीं कीड़ा शैल के शिखर पर बने महलों की चो टियों ते झरने गिर कर बह रहे थे।

तुधर्मा तभा के तामने रमणमूमि १ रमना १ थी, उतका भी कई शलोकों में वर्णन किया गया है। मनोहर मरकत मणियों की चित्रित तब्ब्र्यूमि में जो तजी है तथा स्वस्तिक, अर्द्धचन्द्र कमलवृत्त आदि विभिन्न आकार में बने छोटे-छोटे जलाश्य तथा चबूतरों ते विशेष्ठ रूप ते शोभमान है। कतारों में कल्पित रंग- बिरंगे रत्नों ते रचित क्यारियों ते तुरक्षित पुष्पों, लता, पादपों ते जो भरी है, जिसमें कही केलि पार्वत बने हैं, कहीं चन्द्रशालाएं शोभित हो रही है, कहीं तन्द्रशालाएं शोभित हो रही है, कहीं तजे

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - एकादश सर्ग - 5,6

² पारिजातहरण महाकाच्य - एकादश्सर्ग - 8

³ पारिजातहरण महाकाच्य - एकादश तर्ग - 9, 10

⁴ पारिजातहरण महाकाट्य - एकादश सर्ग - 12

लता मण्डलों में झूले लगे हुए है । जिसमें चारों और अत्यध्कि प्रकाशमान रत्नों की किल्पित चित्रों से सजी दीवारें हैं एवं मनोहर अंकुर कलशी आदि बनी हुई है । यिकने, समतल तथा चमकदार चित्रों से चित्रित चौराहे चौक चबूतरों से जो विकसित है । मोतियों की झालरों वाली जवनिकाओं से जिसका मध्य भाग दका हुआ है । कही जिसमें सुन्दर पर्धा है, कहीं गेंद आदि खेलने का सजा मैदान है तो कहीं मीतर ही शिकार के उपयोगी वन बना हुआ है । कहीं पर उपासना के उपर्युक्त मन्दिरों जैसे उपनिवेश है, कहीं खिले पूलों में या प्रगठ का मदेव के द्वारा जो हैंस सी रही है ।

पुष्पों के तमूह ते भरी तजी धनी शोभा ते युक्त तुन्दर मनोभाव ते भरी भनी जधन की शोभावाली अच्छे पिह्मों की गुंजना ते युक्त पुष्प गुच्छकों ते शोभित या नई अवस्था तथा स्तन रूप गुच्छक ते लितत चित्रों ते तजी स्वर्गीय श्रेष्ठ भूमि को अलंकृत करती, रंग बिरंगी, ताड़ी गहनों ते शोभित रक्षा योग्य रमणी के तमान जो रमणीय है। तोने की लरों के रचना चिशेष्ठा ते जो शोभित है तथा देव ललनायें जितके प्रत्येक सुन्दर स्थानों में विहर रही हैं। जितके शिखर पर दिव्यगज ११रावत के चिहन ते चिहनत महाध्वज फहरा रही है, ऐसी तभा के फाटक पर पहुँचे।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - एकादश सर्ग - 14, 16

² पारिजातह महाकाच्य - एकादश सर्ग - 17

उ पारिजातहरण महाकाच्य - स्कादश सर्ग - 19,21

यात्रा का वर्णन

ती सरे सर्ग में द्वारिका से रैवतक-पर्वत की यात्रा का वर्णन किया गया है यद्यपि यह कोई विशेष यात्रा न थी किन्तु यह रीतिथी कि महाराजाओं की सपरिवार यात्रा ससैन्य ही होती रही । अतः किव ने पारिजातहरण महाकाच्य में भगवान कृष्ण की यात्रा का सांगोपांग वर्णन किया है ।

कवि ने क गर्जों की उपमा धनधटा से दी है। सोने की अमारी एवं जड़ाऊ रंग विरंगे झूलों में पड़े मणिणणों की प्रभा ही जहां विद्युत और इन्द्र धनुष्य की छटा दिखा रही है। मद की वर्ष्या करती हुई घटा के समान, जो भन्नुओं की घटना को विधाटित करने वाली है ऐसी गओं की घटा चल पड़ी।

रथ के घोड़े ऐसे चलते थे मानों पृथ्वी पर पांव ही नहीं पड़ते उपर ही उमर उड़े चले जा रहे हो इसे उत्प्रेक्षित करते हुए कह रहा है। मेरी वेग शालिनी गित में यह भी कुछ प्रतिबन्धक न हो जाए मानों, यही सोचकर पृथ्वा पर पर न जमाते हुए घोड़े हिलती गर्दन के जड़ाऊ वालों से छिटकती प्रमा को वेलाते हुए रथ को खींच रहे थे।

क्लेष के द्वारा कवि भगवान के रथ का तथा भगवान के कारण क्षरीर के सभी विक्रेष्णों का वर्णन कर रहे हैं :-

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - तृतीय सर्ग - 10

² पारिजातहरण महाकाच्य - तृतीय सर्ग - 13

दृढ़ धुरी को धारण करने वाला शोभा भार ते उल्लितित होता हुआ चक्के, युग्रुं जुये रूपं उपर की बैठकों से शो भित वह जमत के प्रभु का पुश्य नामक रथ, उनके कारण शरीर का अनुकरण कर रहा था। इलेख के दारा भगवान के कारण इसीर का अनुकरण कर रहा था । इलेंडा के दारा भावान के कारण शरीर में भी सभी विशेषण संघटित होते है जैते - भगवान सहन शीलों में धुरन्धर अर्थात अगुगामी हैं तथा श्री नामक लक्ष्मी से उल्लिसित एवं चकु धारण करने वाले सत्ययुग आदि सभी युगों के उत्तरकाल तक रहने वाले नित्य है। इस विशेष यात्रा का वर्णन करते तमय कवि यात्रा में उपलब्ध सभी वस्तुओं का चित्र सा उपस्थित कर देते हैं - यात्रा काल की विशेष्टा मांगलिक सामग्रिओं को सम्मुखकर जगत् के कारण भगवान कृषण क्रम से दलबन्दी के साथ सजे सैनिकों से युक्त सारथी के साथ वल पड़े। नाना प्रकार के शस्त्रास्त्रों को पेरते फरकाते वीर सैनिकों का दल चल पड़ा । भगवान रथ युद्धों की सरसराहट में पटह, भेरी, मुदंग आदि बाजों की ध्वनि खण्डित करते से यले । सैनिक गति से यलने वाले, पैदल, घोडे, रथ हा थियों से युक्त सेना के साथ भगवान चल पड़ें। काम के पिता भगवान कृष्णं का यह यात्रोत्सव अत्यन्त तीव्र गतिशाली वायु के समान वेग वाले, मुख में पड़ी वल्गा से तज, असंख्य का बुनी घोड़ों से अत्यधिक शो मित हो रहा था। अपनी भीमकाय से पर्वतों को भी जो जीते हुए हैं, ऐसे पहाड़ी श्रेष्ठ हा थियों से भगवान की वह दल वद्ध सेना, अधिक उल्लिसित हो रही थीं। जिसके आस पास चंवर बल रहे हैं। उपर से देव मण्डल पूलों की वर्धा कर रहा है, सारे जगत् का अभिनन्दन प्राप्त करता हुआ पुष्य नामक रथ, भगवान यदुनन्दन श्रीकृष्ण

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - तृतीय सर्ग - 14

² पारिजातहरण महाकाच्य - तृतीय तर्ग - 9

को ले चल पड़ा इस प्रकार तजे हुए रथ पर भगवान ऐसे बैठे हुए थे जैसे पर्वत पर लिंह बैठा हो । पर्वत पर जल्दी पहुँचने की इच्छा से भगवान कृष्ण सारथी को रथ के घोड़ों को तेज हांकने की आज्ञा देते हैं इसी का वर्णन किव यहां पर कर रहे हैं --

बाग दीली कर देने पर, वेग से पथरीले मार्ग को भी अपने खुरों से खोदते हुए सूर्य के रथ की खींचने वाले दिट्य घोड़ों का अभिमान चूर करते हुए से मानों सारी पृथ्वि को एक बार में ही लांघने की इच्छा रखने वाले वे घोड़े बढ़े । जैसे आगे के मार्ग को निकलता और पीछे को उगलता जा रहा हो इस प्रकार वह रथ जो खड़खड़ाता एवं उचकता नहीं उस अगाध गुणों से शो भित भगवान को बिना रोक टोक दुर्गम पर्वत पर शीड़ा पहुँचा दिया

रूपमहिमा का वर्णन --

पारिजातहरण महाकाच्य में किव ने भगवान कृष्ण की रूप महिमा का बहुत मनोहारी चित्रण किया है। इस वर्णन में भगवान के एक-एक उपकरणों का पृथक-पृथक वर्णन किव ने किया है। भगवान के स्वमावतः त्रयाम विशाल वक्षात्रथम में त्रवेत-वर्ण कौ स्तुभ मार्ग की छवि, त्रयामरंग के नभत्थम में अत्यधिक प्रकात्रमान भगवान भारकर के प्रभा मण्डल का अनुकरण कर रही थी। गले से लटकती वनमाला से, अतुलनीय शोभायुक्त शरीर वाले भगवान कृष्ण ऐसे जान

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - तृतीय सर्ग - 12

² पारिजातहरण महाकाच्य - तृतीय सर्ग - 15

³ पारिजातहरण महाकाच्य - तृतीय सर्ग - 32

⁴ पारिजातहरण महाकाट्य - तृतीय सर्ग - 34

पड़ते थे, जैसे - सर्वोत्कृष्ट शोभा रूप रमादेवी अपनी दोनों बाहुलताओं को गले में डाल बाँध रखी हो । संसार के रोगों को समन करने वाली कौमोदकी नामक गदा रथासीन भगवान की शोभा को अत्यधिक बढ़ा रही थी ।

विभिन्न अलंकारों के माध्यम से भी कवि ने भगवान् के क उपकरणों का वर्णन किया है।

भगवान् के चक्र की तुलना किं उपमा के माध्यम से सूर्य से कर रहे हैं --

धने अन्धकार का मेदन कर उदयाचल के शिखर पर आसीन सूर्य की मांति, भगवान के कर कमल को शोभित करने वाला वह चक्र सारे शत्रुओं को कैंपाता हुआ भगवान की सौगुनी शोभा बढ़ा रहा था।

भगवान के कर कमल में शोभमान शंख की तुलना कवि ने रक्त कमल पर बैठे हुए हंस से की है। भगवान कृष्ण के कर कमल में शोभमान शंख, का न्तिही नों को अपूर्व का न्ति शील बना रहा था। भगवान के कर कमल पर शोभमान कमल को देखकर किसका हृदय अधिकाधिक मोद से नहीं भर आता भगवान के हाथ पर रिथत वह कमल लक्ष्मी के आवास स्थान होने के कारण हस्तगत किया गया योगियों के हृत कमल के समान प्रतीत हो रहा था।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - तृतीय सर्ग 17, 19

² पारिजातहरण महाकाच्य - तृतीय सर्ग - 20

उ पारिजातहरण महाकाच्य - तृतीय सर्ग - 21,22

भगवान की ललाट पर स्थित मुकुट की शोभा को उत्प्रेक्षा करता हुआ किव कह रहा है। पापियों के दल को कंपाने वाला, ललाट पर स्फुरित होते हुए केशों के उपरमुकुट ऐसा शोभित होता था मानों अपनी पुत्री यमुना को साथ लिए सूर्य ही भगवान के मुख कमल पर बैठे है है कमल सूर्य का प्रिय है। है यहां पर उपमेय हैमुकुटह का उपमान हुसूर्यह के साथ तादात्म्य स्थापित हो रहा है अतः यहां उत्पेक्षालंकार है।

दैदी प्यमान रत्नजाल से जड़ा हुआ कवच को धारण करने वाले भगवान के श्यामल शरीर को नाना प्रकार के पूर्लों से लदे लताओं के जाल से आच्छा दित तमाल तरूवर से कवि ने उत्पेक्षित किया है। तथा उत्पेक्षा के माध्यम से कवि ने भगवान के की नों में हिलते मकर के आकार के कृण्डल की तुलना काम का वाहन अ मकर ध्वज से की है।

और भी उत्पेक्षालंकार के माध्यम से भगवान की रूप महिमा का वर्णन देखिए। प्रभाशाली रथ पर आरूद दोनों और चलते अमल चामरों के बीच वह श्याम सुन्दर, ऐसी शोभित हो रहे थे जैसे सर्पों की फूत्कार से फरकती दो जटाफ्लकों के बीच ट्योमकेश भगवान के भालचन्द्र का श्याम अंक हो।

और भी भगवान तोने की कड़ियाँ पर बढ़ा नाना प्रकार के रंग विरंगे मणियों ते जड़ा भगवान का मेघडम्बर छत्र तर्वथा अतुलनीय है। अत्यन्त विमल

[।] पारिजातहरण महाकाव्य - तृतीय सर्ग - 23

² पारिजातहरण महाकाच्य - तृतीय तर्ग - 25

³ पारिजातहरण महाकाच्य - तृतीय सर्ग - 26

तथा बहुमूल्य पीताम्बर से दकी भगवान की तेजस्विनी तथा सर्वहित श्याम शरीर, रिथर हो उगी बिजलियों से युक्त मेघों से दके आकाश को शोभा पा रही थी।

हत काट्य में मगवान कृष्ण को अद्वितीय चन्द्र कहा गया है। मगवान कृष्ण अपनी शरीर की प्रमा से परम शान्ति प्रदान करने वाली अमृतमयी कान्ति सबकी ओखों में बरसा रहे थे।

रैवतक पर्वत का वर्णन :-

तंस्कृत के रीत-ग्रन्थों में अतु, वन, तरिता और पर्वत के वर्णन महाकाच्य के अनिवार्य अंग माने गरे हैं। प्रकृति वर्णन को महाकाच्य में आवश्यक मानने के कारण तंस्कृत ताहित्य में इनका प्राचुर्य होना स्वामा विक है। यह तत्य है कि तौ न्दर्य दृष्टिट जन्मजात होती है फिर भी "काच्यइ फिराया म्यात" के अनुतार यह विकतित की जा सकती है और कमी-कमी तो यह विकास प्रथम श्रेणी की प्रतिज्ञा का छोर छू लेता है।

पारिजातहरण महाकाच्य के रचयिता कवि उमापति द्विवेदी ने तृतीय सर्ग में रैवतक के सौन्दर्य के वर्णन में अद्भुत प्रतिभा का प्रदर्शन किया है।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - तृतीय सर्ग - 27, 28

² पारिजातहरण महाकाच्य - तृतीय सर्ग - 29

अपने शीतल, भिन्न-भिन्न गन्धवाली मनोहर वायु ते हमारे श्रम को दूर कर उस पर्वत ने भगवान-कृष्ण के हृदय को आकर्षित कर लिया । नाना प्रकार की आकृति वाली शिलाओं के संघात से सजा, गेरू आदि विधि धातुओं से रंजित वह शैलराज इस समय के पके भिन्न-भिन्न पहाड़ी फ्लों को भगवान के उपहार स्वरूप उपस्थित करके उनके चित्र को हर लिया अर्थात उसकी शोभा पर भगवान मुग्ध हो गए । भगवान के आने पर जन कोलाहल से जगे, उस पर्वत की उमरी गुफाओं में निर्भय सोर सिंह की गर्जना के बहाने तेजशाली रूप राशि भगवान के हृदय को हथिन वाली अपनी हर्षध्विन की हुँकार कर उठा ।

कवि उमापति ने अपने काट्य में रैवतक पर्वत का चित्र ता अंकित कर दिया है। कहीं स्थान-स्थान पर छल-छल करते झरते बह रहे है तो, कहीं स्वच्छन्द मदमाती विंहग मण्डली चहचहा रही है, कहीं भांति-भांति के वृक्षों की श्रेणियां हैं। इस प्रकार विभिन्न प्राकृतिक उपकरणों से सजा वह पर्वत माध्य को अत्यन्त सुख्द प्रतीत हुआ।

जिसकी उपत्यका समुद्र की अूँगी उछनती तरंगों से टक्कर नेती इनक रही है तथा अधित्यका से इर-इर इरने इर रहे हैं। ऐसा अत्यन्त दर्शनीय वह पर्वत देखते ही बनता था। अपनी उत्साह भरी उभरी गति से सैन्य की निपूर्णता को बढ़ाने वाले पर्वतारोहण गति से चतुर शिक्षित घोड़ों के सहारे दोनों ओर सुन्दर पूले नता वृक्षों से सुमज्जित चारों और से आती सुगन्ध से भरी पर्वत की चक्करदार कटी उस सड़क पर भगवान कृष्ण चढ़ चले। पर्वत की गुफाओं में सानन्द गाते

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - तृतीय सर्ग - 40

² पारिजातहरण महाकाच्य - तृतीय सर्ग - 42,43

³ पारिजातहरण महाकाच्य - तृतीय सर्ग - 44

हुए किन्नर गण के आनन्ददायी गानों के सुनने की इच्छा से मगवान का रथ रोक-रोक कर चलाया जा रहा भी। किव ने रैवतक के मिणमय और सुवर्णमत् होने की चर्चा की है। सम्भवतः यह किव परम्परा वशा किया गया है। उमर छाए सद्म बादलों से लदे, दैदी प्यमान सुवर्णमय शिखरों से वह पर्वत ऐसा जान पड़ता है जैसे मगवान शेकर अपने प्रशस्त हाथों पर हाथी का चमड़ा उठाए नाचने को तैयार हो। कहीं-कहीं पर पड़े सुन्दर शिला खण्डों से वह पर्वत बहुत ही रमणीय प्रतीत हो रहा है।

देवताओं की क्रीड़ा स्था होने से सुमेरूपर्वत सर्वथा अतुलनीय ही है। पर्वत पर पहुँच कर भगवान कृष्ण गिरिशिखर की स्फटिक मणि की अड़ानी वाली स्वच्छ विला पर बैठ गर्थ।

और भी उस पर्वत की शोभा देखिए - भगवान के निवास योग्य
परिचारकों द्वारा भनी-भांति तोरण ध्वजा-पताका आदि से सजरएगए तने
तम्बू वाले उस शोभा सम्पन्न पर्वत शिखर पर भगवान सपरिवार आ पहुँचे।
इस गिरि शिखर से गिरे गिरती इईर ध्विन से इईर नामक बाजे का भी
मात करती निई रिणियों को देख भगवान प्रसन्न हो रहे हैं। घने वृक्षों से भरे
पूनों से लदा यह पर्वत मार्ग भगवान के स्वागत के लिए तैयार किया गया था।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - तृतीय सर्ग - 45, 47

² पारिजातहरण महाकाच्य - तृतीय सर्ग - 49,50

³ पारिजातहरण महाकाच्य - तृतीय सर्ग - 51

⁴ पारिजातहरण महाकाच्य - हुद्वीय सर्ग - 62

⁵ पारिजातहरण महाकाच्य - तृतीय सर्ग - 52

इस प्रकार मगवान बिना प्रयास विशाल गिरि शिखर पर पहुँच गर । त्रिवेणी वर्णन :-

पारिजातहरण महाकाच्य के पंचम तर्ग में किव ने पथि प्रतंग में त्रिवेणी का वर्णन तातों विभिक्तयों में किया गया है। त्रिवेणी के रूप महिमा का विशेष वर्णन किव ने अपने काच्य में किया है। विभिन्न अलंकारों के माध्यम ते त्रिवेणी के रूप का विशेष वर्णन किव के पाणिडत्य को प्रविधित करता है। वह गंगा शंख के तमान उज्जवन वर्ण वानी है। यहां उपमेय गंगा को शंख हैउद्यमान के तमान बताया गया है। अतः उपमानंकार है। विनीन हो गए हैं चन्द्रमा जितमें प्रभात कान के आकाश की नीन का न्ति ते प्रतिभासित, किरणों ते रंजित बहिधाम हें तूर्य के तेजों की आनन्ददायिनी परम शोभा सी शंख के तमान उज्जवन वर्णवानी यह भगवती गंगा शोभित होती है। अविनीन ऐसा पदच्छेद करने ते चन्द्रताराओं के पूर्ण अस्त न होने तक प्रभात कान में हिमधाम चन्द्रमा की का न्ति ते भी तुनना की गई है।

उत्प्रेक्षा के माध्यम से त्रिवेणी का वर्णन कितना सुन्दर है - पैले हुए क्रोध्युक्त विष्य की जंभाई से अंगड़ाती चलती अंगों के रेठने से तंशमों के समान लक्षित होते उदर की कान्ति से बचेत वर्णवाली तथा उमझे मूर्धस्थ लाल मणिप्रभा से युक्त कृष्ण १काली १सिपिणी जैसे पापों को उसने के लिए दादों के साथ जीभ

[।] पारिजातहरण महाकाट्य - पंचम तर्ग - 47

पर पराती चली जा रही है, ऐसी प्रतीत हो रही थी।

यहां त्रिवेणी १उपमेय १ का काली सर्पिणी १उपमान १ के साथ तादातम्य हो रहा है त्रिवेणी वास्तव में काली सर्पिण नहीं है। परन्तु सम्भावना की जा रही है कि जैसे अंगों के रेठने से तरंगों के समान लक्षित होते उदर की कान्ति शवेत वर्ण वाली गंगा है, उमड़े मूर्धस्थ लाल मणि प्रभा से युक्त यमुना है।

वह त्रिवेणी ऐसी प्रतीत हो रही थी मानों खिले पुष्पों की माला से
सर्ज तिर पर इकते भौरों के झुण्डों की नील प्रमा से प्रतिविम्बित, गजबदन
बालगणेशों के स्वभावतः लाल मुख में प्रवेश करती जगदम्बा के पयोधर रूप,
पयो निधि की दुग्ध धारा है। यहां त्रिवेणी ईउपमेय ई का पयो निधि की
दुग्ध धारा ईउपमान ई के साथ तादात्म्य स्थापित हो रहा है अतः उच्छेक्षा है।
हे भगवान। हंसलों ने मुख्य के स्वामाविक लाल ओठो की आभा से चमकते
दांतों के किरणों से रंजित खिले तीसी पूल के समान नील वर्ण वाले आपकी
शरीर का नित सी जो शो मित होती है या आपकी शरीर की नीलमणि मूंगे
तथा मो तियों की यह माला प्रयागमूमि को सर्वतः शो मित कर रही है।

उपमेय में उपमान के संशंध को सन्देहालंकार कहते हैं। उस त्रिवेणी को देखकर ऐसा सन्देह हो गया है कि क्या यह दुष्ट से आक्रान्त भारत भूमि की शेष्ठ से अरूण तथा अंजन की कृष्ण कांति से मिली श्वेत अश्रुकी धारा है अथवा श्वेत भाल स्थल की प्रभा से भासित केशपाश के बीच हुमांग में हुमरी सुमगसिंदूर स्पराग की रेखा है।

[।] पारिजातहरण महाकाट्य - पंचम सर्ग - 48

² पारिजातहरण महाकाच्य - पंचम सर्ग - 53

³ पारिजातहरण महाकाट्य – पंचम तर्ग – 54

⁴ पारिजातहरण महाकाच्य - 51

त्रिवेणी की अपूर्व शोभा का वर्णन किव ने अपने काट्य में किया है – इस प्रयाग भूमि में सूर्य पुत्री यमुना की घनी नील तरंगों से आकृ न्त तथा लाल रंग में तरंगित सरस्वती को अंग में लिए स्वभाव से ही श्वेत वर्ण वाला गंगा सुशो भित हो रही है । यह सकल कल्याणों को देने वालीसत्व, रज, तम रूप त्रिगुणमय त्रिवेवों हुंब्र्झा है, विष्णु, महेशह की एकता मय शक्ति की तादात्मय भागिनी है । सकल शोभाओं की उत्तर पूर्ति है अन्तिम सीमा है की मूर्ति इस त्रिवेणी की कोई अपश्रित प्रभा जगत् में नहीं है । महावर से रंगे पैरों पर पड़ती देवांगनाओं के केश भार की कान्ति से भरे अभ्बिका के श्वेत यरण कमलों की कान्ति के समान त्रिवेणी को नमस्कार है । काले दाग वाली चन्द्रमा से भूष्टित लाल चन्दन से चर्चित भगवान् शंकर की श्वेत भालस्थली सी, कस्तूरी मिले केशर के पंक रूप अंग राग से भीगा भूमि का पयोधर पद, है उरोजों पर पड़ा श्वेत वस्त्रांचल है के समान शोभमान इसकी वन्दना करता हूँ।

और भी इसका रूप सौन्दर्य देखिए गज क्रीड़ा में तोड़े हुए पर्वतों के गेरू के रंग में रंग दांतों की प्रभा से अनुविध्वित देव गज के कपोल पर आधारित उत्कट साववाली मद की धारा जैसी हो ऐसी इन्द्र धनुष्ठ के समान मनोहर कान्ति वाली त्रिवेणी प्रवाहित हो रही है।

यह त्रिवेणी काले तीगों की छवि ते व्याप्त शिरोभाग वाली तथा लालधनों ते युक्त शोभा वाली श्वेत रंग वाली कामधेनु के तमान मव्य रूप धारण कर रही है।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य पंचम तर्ग - 42,43

² पारिजातहरण महाकाच्य - पंचम तर्ग - 49.50

³ पारिजातहरण महाकाच्य - पंचम सर्ग - 51

^{4.} पारिजातहरण महाकाट्य - पंचम सर्ग - 55

त्रिवेणी के विद्यं में कहा गया है कि जिसने नारायण के नील चरणों का धालन किया जिसने पितामह ब्रह्मा के पवित्र कमण्डलु को भरा, जो वि विद्यं के जटा मण्डित तिर पर सवार हुई मानों यह इस त्रिवेव के गुण गाकर पिछली वेदों की त्रयी हैं। जिसके लिए सारे देवता स्पृष्टा करते है, जिसके लिए भगवान शंकर भी पार्वती कृत अवभान का सहन करते तथा सगर की सन्तानें जिसके लिए कर्तव्य का आदेश दती हैं। वही गंगा यह तरणि तनुजा यमुना और सरस्वती से युक्त शोभित हो रही है। जिसके पृथक् कोई पावन वस्तु नहीं है, जिससे बद्कर अपूर्व रूप वाली दूसरी शक्ति नहीं है। जिसके अतिरिक्त कोई मनोहारी नहीं। वही यह ईश्वर के अनुकम्पा पात्र जगत की भाग्य विभूति है। जिसका शुभ दर्शन समस्त पापों का नाश करने वाला है। वही यह त्रिवर्ग रूप्म, अर्थ, काम की देने वाली विधाता की सुविधा है। यहां पर त्रिवेणी के ईश्वरीय रूप का वर्णन किया गया है। त्रिवेणी का शुभ दर्शन अखिल अनर्थ को हरने वाला है तथा संसार के जन्म-मरणादि दुःखों को छुड़ा देने वाला है।

प्रयागत्थ गंगा को तारे विरोधी का निरोध करने वाली स्वर्ग का राज्य कहा गया ह

कवि उमापति न अपने पारिजातहरण महाकाच्य में कूलक रीति से गंगा का प्राकृतिक वर्णन भी किया है। उन्मत्त हो कूजते पिक्ष्यों से नदे छाया वृक्षा नताओं से मनोहर तट भूमि वाली मन्द वायु की प्रेरणा से उछनती नहरों पर हिलते मधु वर्षी कमनों से छायी। कहीं उज्जवन का न्ति से विनसित, कहीं मूंगे समान का न्ति वाली, कहीं तरूण तमान की सी नीन शोभायुक्त,

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - पंचम सर्ग - 56, 59

² पारिजातहरण महाकाच्य - पंचम तर्ग - 60

खेनते हंसों से शो भित्त, टेढ़ी रेखा वाले शैवाल जानों से जिंदिन अन्तर्जनरा शि वाली । प्रौढ़ कान्ति ज्वाला की चिनगारियों की मांति उछलती मछ लियों से सजी, दिकपालों की बाल विनताओं के विशाल उरोजों के आधात से फैलती जलराशि वाली यह त्रिवेणी मेरे पाप पुंजों को प्रशान्त करें।

कवि उमापित सांख्य सिद्धान्त में पण्डित थे। उन्होंने विभिन्न दर्शनों का अध्ययन किया था। काट्य में सांख्य की प्रकृति को यमुना तथा पुरुष्ठ को गंगा बताया गया है तथा सरस्वती इस प्रकृति और पुरुष्ठ को मिलाने वाली बतायी गयी है। यह एक ओर संसार की प्रकृति जन्य मिलनता ही यमुना है तथा दूसरी ओर उस परम पुरुष्ठ की इवेत विभूति ११ इवर्ष ही गंगा है। इनके पदारविन्द की भिमका यह सरस्वती नदी इन दोनों को संहित कर रही है अर्थात प्रकृति पुरुष्ठ के संयोग का अनुराम भरी किव सरस्वती जैसे बखान रही है।

सांख्य की त्रिगुणा त्मिका प्रकृति को त्रिवेणी कहा है। संसार के उद्मव रिथत प्रलय को करने वाली जो त्रिगुणा त्मिका प्रकृति है जिसके वर्णन में "एका मजां लो हित शुक्ल कृष्णाम्" इत्यादि वा क्य है वही त्रिवेणी के रूप में प्रवाहित हो रही है। यह एक ही त्रिवेव की त्रिगुणा त्मिका शक्ति जो जगत् का अन्त करने वाला अपना सार लेकर रुद्र शक्ति ज्या जगत् के अन्त करने वाले यम की बहन यमुना को लेकर तमो मय श्याम मेद धारण करती तथा संसार की उत्पत्ति में लगी, सरस्वती को साथ ले, रजो गुणमयलाल रूप धारण करती

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - पैचम सर्ग - 61,63

² पारिजातहरण महाकाव्य - पंचम सर्ग - 44

तथा संसार की उत्पत्ति में लगी, सरस्वती को साथ ले, रजोगुणमय लाल रूप धारण करती ब्रह्मशक्तिरूपिणी, स्वभाव के सत्वगुण का श्वेत रूप धारण करने वाली विष्णु शक्ति रूपिणी गंगा है।

तमुद्र वर्णन :-

पारिजातहरण महाकाच्य के तृतीय सर्ग तथा चतुर्थ सर्ग में समुद्र का वर्णन किया गया है। विभिन्न अलंकारों के माध्यम से इन्होंने समुद्र का वर्णन किया है। मगवान कृष्ण की उपमा समुद्र से निकलते चन्द्रमा से की है। समुद्र की गोद में हिडोले के समान देखती लहरों का विगाहन करते हुए मगवान कृष्ण चन्द्र १९ उपमेय इस समुद्र से निकलते चन्द्रमा १९ उपमान के समान दिखाई दिए।

उत्प्रेक्षा के माध्यम से समुद्र का वर्णन करके किव ने प्रकृति के भीम—रूपों को दिखाया है। अपने भीतर उबते—डूबते जल जन्तुओं के द्वारा अपनी स्थिति से मानों विधाता के उत्पत्ति प्रलय का अभिनय कर रहा हो, जो समुद्र ऐसा प्रतीत होता था। यहां प्रकृत १समुद्र १ की उसके समान अप्रकृत १विधाता १ के साथ तादात्म्य स्थापित हो रहा है अतः उत्प्रेक्षालंकार है।

प्रकृति के भीम रूप का बड़ा ही सजीव वर्णन प्रस्तुत इलोक में किया गया है जो तटवर्ती वनों की धनी छाया से आच्छा दित दो नों प्रान्तों के बीच आस-पास दोनों और छाए धने बादलों से धिरे प्रशस्त आकाश के समान दिखाई दे रहा है,

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - पंचम सर्ग - 45

² पारिजातहरण महाकाच्य चतुर्थ सर्ग - 12

³ पारिजातहरण महाकाट्य - चतुर्थ सर्ग - 6

जिनका कोलाहल अनुस्णं बदता जा रहा है, ऐसी लहरों की परम्परा से शो भित तथा भा नितशील के समान जल में उठी मंतरों के रूप में चक्कर काट रहा है। प्रकृति के मानवीकरण के रूप में भी समुद्र का वर्णन इस काच्य में किया गया है। वह समुद्र स्वच्छन्द धीर एवं गम्भीर रूप में तारी पृथ्वी को चारों ओर से घेरकर स्थित है। जो समुद्र अपना असीम गौरव रखता हुआ भी मर्यादा का अतिकृमण नहीं करता एवं परस्पर टकराती लहरों के कोलाहल से सारी दिशाओं के मुख को मर के वर्तमान है। सारी सृष्टिट को आदिभूत महान् आश्रम वाला अधिक सम्मान के योग्य पूर्वजों की भी पूजा प्राप्त करने वाला यह १ समुद्र १ विशेष्ट रूप से शलाधनीय है। भगवान् कृष्टण ने भिवत पूर्वक उस समुद्र का हृदय तथा सिर से आ लिंगन किया।

चित्रात्मक रूप में समुद्र का वर्णन करते समय कवि उसके चित्रकों ही अंकित कर देते हैं:-

रंग-बिरंगे रत्न एवं जल जन्तुओं से चित्रित आश्रय वाला वह समुद्र ऐसा लग रहा था जैसे पृथ्वी रूप हथिनी के पीठ पर पड़ा रत्नादि से चित्रित झूल हो । उस समुद्र के आन्तरिक उल्लास को तौलते हुए भगवान श्रीकृष्ण उसकी तंरंग रूप उठी भुजाओं के भीतर हो रहे उसकी लहर लेने लगें।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - चतुर्थ सर्ग - 3,4

² पारिजातहरण महाकाच्य - चतुर्थ तर्ग - 1,2

³ पारिजातहरण महाकाच्य – चतुर्थ सर्ग – 8

⁴ पारिजातहरण महाकाच्य - चतुर्थ सर्ग - 10

एक पौराणिक आख्यान के द्वारा किव ने समुद्र का वर्णन किया है। चन्द्रवंश के मूपण मणवान कृष्ण को निरि शिखर पर बैठे देख जोरों में लहराता हुआ समुद्र मानों लहरों के बहाने बद्धे आनन्दोल्लास मं उछलने लगा इसलिए कि मणवान के वंश के आदि पुरुष्ठा चन्द्रमा समुद्र के ही पुत्र है फिर अपने वंश के मूपणीमूत मणवान को देख समुद्र क्यों न तरंगित हो।

समुद्र के तौन्दर्य के वर्णन करके मैं किव ने अपनी अद्भुत प्रतिमा का प्रदर्शन किया है। ताराओं के तमान प्रस्फुट फेन मंगों को तथा उसी रूप श्रेष्ठठ श्वेत शंखों खं तू कित्यों को धारण करता हुआ समुद्र ऐसा जान पड़ता है जैसे जल के व्याज से पृथ्वी पर पड़ा आ काश का कोई एक भाग है। यहां उपमेश समुद्र में उपमान आ काश की सम्भावना की जा रही है अतः उत्प्रेक्षालंकार है।

आ मिलने वाली निर्दियों को अपनी गोद में लेते समुद्र में का मिनी का मुक का रूपक बांधता हुआ कि किंधित इलेख के द्वारा वर्णन कर रहा है। रस के आधिक्य से गर्वित हो बहने वाली तथा राग के आधिक्य से गर्वित गिरती लड़खड़ाती समीप में आई उत्सुकता से भरी निर्दियों का भुजाओं के समान तरंगों से अपनी गोद में भरते हुए से समुद्र को देखा है।

भगवान के करारों के उचर तक उठती लहरों से भय खा-खाकर अपनी रक्षा के निमित्त, अंधलों से दिए गए अध्य के समान शतमुख आ गिरती हुई निद्यों से तृप्त होते अर्थात भरे जाते हुए समुद्र को देखा ।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - तृतीय सर्ग - 66

² पारिजातहरण महाकाच्य - तृतीय सर्ग - 68

³ पारिजातहरण महाकाच्य - तृतीय सर्ग - 71

⁴ पारिजातहरण महाकाच्य - तृतीय सर्ग - 69

तमुद्र में बडवानल को उत्पेक्षित करता हुआ कवि कह रहा है - कहीं मंगर राशि में वक्कर खाते जल के बीच जलता हुआ बडवानल ऐसा जान पड़ता था जैसे आकाश मण्डल में वमवमाती किरणों के जाल से युक्त अनेकों सूर्य नाच रहे हो । जलते बडवानल की ज्वालाओं से जिल्ल अनन्त जलराशि से भासमान समुद्र को भगवान ने देखा ।

विभिन्न अवतारों के रहस्य को बताते हुए कि तमुद्र का वर्णन कर रहे हैं यह किव के दार्शनिक तथ्य की ओर संकेत करता है । उस समुद्र में अति विशाल कहुओं की पीठ पर पण पैलाकर बैठे, बड़े बड़े भुजंग पृथ्वी को धारण करने वाले कच्छप की पीठ पर बैठे भणवान श्रेष्ठ का वेष्ठ बना अभिनय करते हुए शोभित हो रहे थे । कहीं कहीं लीला से जलराशि पान करते तथा उतावली उठती लहरों पर जूब डूब खेलते हुए निर्भयता से मन्द – मन्द रेंगते हुए बड़े बड़े मीन अवतार भूत महामत्स्य की विडम्बना कर रहे हैं ।

समुद्ध का मानवीकरण करते हुए कवि यह बताते हैं कि तरंग रूप
भुजाओं को पैलाए गम्भीर ध्वनि के बहाने स्तुति पाठ करता समुद्ध मणवान
कृष्ण के प्रति साष्ट्रांग प्रणत सा दिखाई दे रहा था । भणवान कृष्ण को
हष्मों ल्लास की अधिकता से उनके उचित पुरस्कार पूर्ति की इच्छा से, चंचल
तरंगों से छिटकते निर्मल जल की बड़ी बूंदों के वृन्द व्याज से हाथों से अगणित
मो तियों की राशि लुटाता हुआ धनी जलराशि से मरा भासमान यह समुद्ध
सौ-सौ हर्ष ध्वनि के साथ मानों उछल रहा है।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - तृतीय सर्ग - 73,

² पारिजातहरण महाकाच्य - तृतीय सर्ग - 75,76

³ पारिजातहरण महाकाच्य - तृतीय सर्ग - 79,80

प्रभात वर्णन :-

पारिजातहरण महाकाच्य के द्वितीय सर्ग में प्रमात का बड़ा ही वास्तविक वर्णन किया गया है। रूपक, उपमा, अप्रस्तुत प्रशंसा, अनुप्रास आदि अलंकारों के माध्यम से कवि ने रात्रि के बीत जाने का वर्णन किया है। प्रकृति के मानवीकरण के माध्यम से भी प्रभात का वर्णन किया है। उनके इस वर्णन में शृंगारिक भावनाओं का समावेश भी पाया जाता है।

उपमेय और उपमान का जो काल्पनिक अमेद है वह रूपक कहलाता है उस समय रात्रि गर्मवती स्त्री के समान प्रतीत होती थी । उसका चन्द्रमारूपी
मुख १ चन्द्रमा और मुख का काल्पनिक अमेद १ पीला पड़ गया था उसके अंगों पर
नक्ष्म रूपी आभूष्मा १ नक्ष्म रूपी आभूष्मा का अमेद शेष्ठ इने गिने ही रह गए थे
और इसने अपने भीतर बाल रूपी सूर्य को धारण कर रखा था । यहां पर रूपक
के माध्यम से वर्णन है ।

जहां उपमेय की उसके समान उपमान के साथ तादातम्य सम्भावना होती है वहां उत्पेक्षालंकार होता है। स्त्री के केशपास उपमेय का, सर्पिणी उपमान के साथ तादातम्य सम्भावना है मानों वह केश ऐसा लग रहा है जैसे सर्पिणी। अतः यहां उत्पेक्षा के माध्यम से प्रमात का वर्णन किया गया है। अप्रस्तुत-प्रांसा तथा विप्रलम्भ श्रृंगार के माध्यम से कवि रात्रि के बीत जाने का बड़ा ही मार्मिक वर्णन करते हैं:-

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - द्वितीय सर्ग - 4

नायक - प्रिये तुम्हारा यह मुख मण्डल उदास क्यों है ।
नायिका - चन्द्रमा के अन्तिम आशा १ दिशा में डूब जाने ते१
१ भाव यह है कि अन्तिम आशा के मंग हो जाने ते१
नायक - प्रिये । चन्द्रमा तो पिर नूतन रूप धारण करके उदित होगा ।
१ अर्थात अब ऐसा नहीं होगा १
नायिका - जो गया वह उस रूप में नहीं लौटता ।

अप्रस्तुत प्रशंसा वह अलंकार है जिसे अप्रस्तुत की ऐसी वर्णना कहते हैं जो कि प्रस्तुत अर्थ की प्रतिपत्ति के आश्रय हिनिमित्तह हुआ करती है। "जो गया वह उस रूप में नहीं लौटता यह तो अप्रस्तुत की वर्णना है परन्तु प्रस्तुत अर्थ "चन्द्रमा के चले जाने के निमित्त हुई है।

अनुपास के माध्यम से प्रभात की छटा दर्शनीय है - "म्वभानूद्वभाति 2 भावुकम् ।"

कवि ने रात्रि के तमाप्त होने का वर्णन इस प्रकार किया है – रूकिमणी श्रीकृष्ण को जगाते हुए कहती हैं कि हे नाथ ! निद्रा का परित्याग की जिए और देखिए, यह रात्रि एक ऐसे ज्यो तिर्मय विश्व को जन्म देना चाहती है जो आनन्द का धाम है कबूतरों के कलरव के बहाने मानों यह प्रसव की पीड़ा से कराह रही है ।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - द्वितीय सर्ग - 15

² पारिजातहरण महाकाच्य – द्वितीय सर्ग – 23

उ पारिजातहरण महाकाच्य - द्वितीय सर्ग - 7

उपमा के माध्यम से रात्रि के बीतने का वर्णन किव ने किया है।
ज्यों तिष्ठी ब्राह्म्मण की उपमा चन्द्रामा से दी है। जैसे कोई ज्यों तिष्ठी
ब्राह्मण किसी धनी व्यक्ति के यहां शकुनों है प्रश्ननों के द्वारा सत्पुत्र की उत्पत्ति
बता कर रत्न आदि पारितोष्ठिक प्राप्त करके जाता है, उसी प्रकार नक्षत्र मण्डल
का शासक हुज्यों तिष्ठा-शास्त्रज्ञ है चन्द्रमा प्रभात काल में शकुन हैप क्षियों है के कलरव से
सूर्योदय की सूचना दे विदाई के रूप में मिली हुई ताराओं का साथ लिए चला
जा रहा है।

उद्दीपन विभाव के रूप में रात्रि बीतने का वर्णन भी किया है। यह रात्रि स्त्रियों के भाव को उद्दीप्त करने वाली है।

प्रकृति की यह दूसरी विडम्बना देखिए सारी रात काम विनोद में बिला कर स्त्रियां प्रिय के वाम भाग में ही सोई है। दूरे हार के बिखरे हुए मोती के दानों में प्रातः काल जो शीतलता आ जाती है, उसके स्पर्ध के अनुम्म से अयानक जगी हुई कितनी ही कामनियां, प्रियतम के जग जाने की आशंका से उनके आलस्य को बढ़ाने वाले वशीकरण प्रभात गोपना दि है सवेरे को छिपाने वाले उपचार कर रही है। लीला कलह में कृपित हुई कितनी ही कामनियां आलसी और अरसिक पति को घारे निद्रा में निमग्न देख, रतीच्छा की आन्तरिक प्रेरणा से, करवटं बदल रही है। अभिसारिकारं अपने संकेत स्थान से अब लौटी जा रही है।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - द्वितीय सर्ग - 8

² पारिजातहरण महाकाच्य - दितीय तर्ग - 9

उ पारिजातहरण महाकाच्य - द्वितीय सर्ग - 12

⁴ पारिजातहरण महाकाच्य - द्वितीय तर्ग - 13

उत्प्रेक्षा के माध्यम से प्रभात का वर्णन प्रस्तुत है — भगवान् भारकर से भयभीत सी हो कर मानो आकाश से भूमि पर छिपने के लिए आई हुई ताराओं जैसी कितनी अभिसारिकाएं यहां भीसूर्य के पुनः आगमन की आंशंका से मानों अन्यत्र छिपने के लिये भागी जा रही है। यहां अभिसारिका १३ पमेय का ताराओं १ उपमान का तादातम्य सम्बन्ध स्थापित किया गया है।

चित्रात्मक-वैनि के द्वारा कवि ने प्रभात का चित्र सा अंकित कर दिया है।

उद्यः काल की प्राप्ति से प्रसन्न पिक्षमण्डल श्रवण सुखकारी मंगलगान कर रहा है एवं अरूण्रसूर्य सारथी है अंशुओं से रिज्जित हुई सारी दिशाएं सूर्य जनम रूपी महोत्सव को सूचित कर रही है। द्विजगण वै दिक मंगलपाठ कर रहे है एवं दिंगनाए लाल वस्त्रों से रंज्जित हुई उक्त महोत्सव के पुनीत क्षण को सूचित कर रही है।

इस समय इस जगत् में कोई ऐसा नहीं दिखाई देगा जो इस सत्प्रस्तोन्मुखी दिशा का दिया सुवर्ण हैसोना है लेने को उत्सुक न हो अर्थात प्राप्त कर लेंगे। रात्रि का मुख उज्जवल हो कर शोभायमान हुआ, सहचारी दिशाएं भी शोभित हो उठीं। सब ओर सुख की सूचना देती हुई मनोहर सुगन्ध फैलाती हुई वायु वह रही है। वायु से इस शुभ सूचना को पाकर ये जड़ वृक्ष लता दि भी पृथ्वी पर सब ओर दलरूपी अपने हाथों से ओस - बिन्दु रूपी मोती बरसा रहे है।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - द्वितीय सर्ग - 19

² पारिजातहरण महाकाच्य - द्वितीय सर्ग - 24

³ पारिजातहरण महाकाच्य - द्वितीय तर्ग - 25,27

उपमेय और उपमान का काल्पनिक अभेद रूपक कहनाता है यहाँ हाथ उपमेय और दल उपमान तथा मोती उपमेय और आसे बिन्दु उपमान का काल्पनिक अभेद है अतः यहाँ रूपक है।

महोत्सव के समय बन्दियों को बन्धन मुक्त कर देना स्वाभाविक ही है, इसी का बहुत ही स्वाभाविक वर्णन किव ने इस काट्य में किया है – तम १ अज्ञान या अन्धकार १ से आवृत चित्त वाले जीव, जो काम-निद्रारूप निमड़
१ बेडी १ में बैंध हुए थे अभी – अभी बन्धन से छूटकर निश्मों कर बिहर रहे हैं।
अनेक लताओं के युम्बन रूप अपराध के कारण कमल कोश रूप कारागार में जो रात्रि के समय बन्द कर दिए थे, वे बन्दी अभी-अभी बन्धन से छोड़े गए है।

प्रातः का समय है अतः सूर्य को किव का "बाल" कहकर वर्णन करना बहुत ही मनोरम है – इस उगते बाल सूर्य से सुदिन चाहते हुए ब्रती, विद्वान, व्याहमण, शुम्द अर्ध्य प्रदान कर रहे हैं। सूर्योदय रूप सत्य प्रसव में पहले ही यदि इस प्रकार का राग श्वानुराग तथा लालिमा है फैला हुआ है तो उसके प्रसूत हो जाने पर कैसा उत्सवानुराग कैसी लालिमा होगी यह अकथनीय है। दिशारूप धाय की गोद में सुखासीन ऐश्वर्यशाली शिश्व सूर्य एक नई रोशनी संसार में लाएगा।

मोह उत्पन्न कर देने वाले घने अन्धकार को स्वाभाविक बाल यापल्य से मारकर उसके खून से लथाथ हुआ यह बाल सूर्य आकाश के भीतर से ही हालिमा लिए चमक रहा है।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - द्वितीय सर्ग - 28.29

² पारिजातहरण महाकाच्य - द्वितीय सर्ग - 31

³ पारिजातहरण महाकाच्य - द्वितीय सर्ग - 33

⁴ पारिजातहरण महाकाच्य - दितीय सर्ग - 39

कवि उपमा के माध्यम से बाल सूर्य का वर्णन कर रहे है, जिस प्रकार हाथ में लीला कमल लिए स्तनपान के लिए लाला यित जिल्ला नवजात विश्व, अपनी माता का शोकरूप तम हर लेता है अर्थात् उसे प्रसन्न कर देता है उसी प्रकार अपनी किरणों से लीला लसित कमलों का स्पर्श करता हुआ पूर्व दिशावतीं उदयाचल रूप स्तन में अपनी कान्ति वैनाता हुआ वैलती रिषमयों के जाल से जित, यह बाल सूर्य रात्रि में फैले हुए अन्धकार की दूर कर देगा ।

प्रातः काल मुर्गों का बोलना प्राकृतिक है उसी का वर्णन करते समय किंव अपने श्रुति ज्ञान को प्रकट करते है – स्वर, मूल भेद, उदात्त, अनुदात्त, स्वरित से युक्त अचा को पद्ना आहुता अचूड़ १ मुर्गे रूप अत्विजों का बुन्द शुम सम्पत्ति के लिए जगत के सारे व्यसनों का तेजस्वी सूर्य में हवन कर देना चाहता हूँ। ता अचूड़ १ मुर्गे१ अग्निहोत्र का समय हो गया है, ऐसा जानकर अग्निहोत्रियों को जगाते हुए यह आदेश दे रहे हैं कि हाथ में जूहू १ हवन साधन पत्र विशेष्ठा उठाओं कुकुहूक नहीं अपितृ कुरूत करे जुहू ऐसा कह रहे है। अग्नि को दीप्त करने वाली अचाओं को पद्रते हुए ब्राह्मणणा स्वाहाकार आलापते हवन कर रहे हैं।

प्राभातिक वायु का संचार प्रत्येक स्थानों में हो गया है । इसी का अत्यन्त ही मनोहारी वर्णन कवि ने यहां पर किया है :-

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - द्वितीय सर्ग - 40

² पारिजातहरण महाकाच्य - द्वितीय सर्ग - 43

³ पारिजातहरण महाकाच्य - द्वितीय सर्ग - 44

सम्भोग के अनन्तर नौटी हुई अभिसारिकाओं के क्योन स्थन में प्रस्वेद रूप मधु द्रव को चाटता हुआ पवन, मानों उन्हीं को दूँद्रता घर-घर में घूम रहा है। प्राभातिक पवन नता वूक्षों के नव पल्लवों तथा कमन आदि विभिन्न पुष्पों में नग रहा है।

प्रातः हो गई है अतः जल में कमल खिल गए है उसी का रूपक यहां पर किव ने बांधा है। जल में खिलते कमलों पर खेलते भ्रमर मण्डल रूप, अन्य के द्वारा आपके १क्षणा के मुख कमल में मूत्तिमती वेदों की वर्णमाला उपमेय बन रही है। यहां वेदों की वर्णमाला उपमेय तथा भ्रमर उपमान के साथ काल्पनिक अभेद है।

प्रातः काल हो गया है अतः उस समय के उपर्युक्त जो काम है उसका अत्यन्त ही स्वाभाविक वर्णन इस काट्य में किया गया है । पिक्षाों के कल कल से जगे, दूध पीने के लिये रोने से भीगे औंठ वाले, दूध मुँहे, बालकों को प्रत्येक घरों में मातायें गोद में उठा रही है ।

इतिनये हे कमल नयन १ भगवान कृष्ण १ आपके नयन कमलों को भी विकतित हो जाना चाहिए। आप जागकर अपने प्रताप ते तूर्य का अभिमान और चन्द्रमा के अभाव ते होने वाली क्षति को दूर करे। तमो गुणी व्यवहार वाले १ अन्धकार १ के अनुयायी उल्ला आदि पक्षी जो अभी तक अपने को तुष्ल १ तुर्ख १ तमझते थे। वे अपनी दुर्वृत्ति का दिवानधता रूप कुषल अनुभव करेंगें ही।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - द्वितीय सर्ग - 48

² पारिजातहरण महाकाच्य - द्वितीय सर्ग - 50

³ पारिजातहरण महाकाच्य - द्वितीय तर्ग - 50

⁴ पारिजातहरण महाकाच्य - द्वितीय तर्ग - 53

"समय आ जाने पर किसका दुरिम्मान नष्ट होता" इस सूचित के दारा किये ने रात्रि के चले जाने का अत्यन्त सजीव वर्णन किया है – खिले कृमुदों वाली, निन्दित हर्ष जिसका एवं दो जाका र होते हुए भी चन्द्रमा जिसे उल्लिसित कर रहा था। तथा जो स्वयं भी दोषा ह्दोष्ट्रमाली है थी ऐसी जिस रजनी ने गर्व के साथ उल्लुओं से अपने अधिक हर्ष की घोषणा कराई थी वही रात प्रातःकाल ओस के बहाने आंसू बहाती हुई चली जाती है अथमा यों कहिए समय आ जाने पर किसका दुरिम्मान नष्ट नहीं होता।

सन्ध्या वर्णन :-

काट्य के त्रयोदश सर्ग में किं ने सन्ध्या का वर्णन करते हुए प्रकृति के भीम रूप को दिखाया है। "दिन के दल जाने पर सूर्य की किरणों के चले जाने पर, आकाश के बहुत अधिक अन्धकार से ग्रसित होने पर सम्पूर्ण लोक के द्वारा अस्थाय किन्तु आलोक्य रूप अपनी रोषा सहित पीड़ा के कारण उत्पन्न रक्त वर्ण का दिखाई दे रहा है।

इस प्रदोध में पिश्चमी दिशा के विस्तार से रक्त वर्ण का श्राराब पीने के कारण लाल अपने पतन से दुःखी तथा लोगों के नेत्रों को अन्धा बनाए गए स्खलित तथा कम किरणों से अपने राग का अनुभव करती हुई शराब पीने से स्खलित तथा इधर-उधर पैर पड़ने से प्रेम का अनुभव करते हुए पिश्चमी दिशा में माग्य से अस्त होने की इच्छा से अभिसार कर रहा है।

[।] पारिजातहरण महाकाट्य - द्वितीय सर्ग - 57

² पारिजातहरण महाकाच्य - त्रयोदश सर्ग - 3

³ पारिजातहरण महाकाच्य - त्रयोद्धा सर्ग - 4

विभिन्न अलंकारों के माध्यम से भी किव ने सन्ध्या का बहुत ही सुन्दर वर्णन किया है। सूर्य और चन्द्रमा को उत्प्रेक्षित करता हुआ किव कहता है – पूर्व दिशा में चन्द्रमा के उदित हो जाने पर और पश्चिमी दिशा में दिन के दल जाने पर सूर्य विम्ब के लट जाने पर आकाश रक्त वर्णन का हो गया है और यह दोनों ऐसे लग रहे हैं जैसे मिण के बने हुए पुटमाण्ड के दो खण्ड हो गए हो। और उसके फूट जाने पर कामदेव की स्त्री रित के आमूष्ट्रण के सिन्दूर का प्रवाह पैल गया हो। और वह सन्ध्या के आने पर ऐसा लगा रहा है जैसे आकाश में विम्बायमान पैल रहा हो।

उत तन्थ्या तमय तूर्य और चन्द्रमा का वर्णन किव कर रहे हैं -प्राकिदशा में चन्द्रमा के उदित होते हुए तथा पिश्चम दिशा में तूर्य के अस्त होते हुए अर्थात् दोनों एक ताथ रक्त वर्ण के आकाश में दिखाई दिए ।

सन्ध्या का मानवीकरण करते हुए कवि ने अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन किया है। सन्ध्या समय लाली फैल जाती, है इसी को उत्प्रेक्षित करता हुआ कवि कहता है – मानों बहुत अधिक रक्त वर्ण से उस सन्ध्या ने अपने अंग को दका है।

कित ने अपने काट्य में श्रंगारिक भावन्तओं का भी तमावेश किया है-रिव के द्वारा त्यागी हुई है फिर भी मन में पाप लिए रक्त वर्ण के हुए वस्त्र वाली वह तन्ध्या अभितार करती हैं।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - त्रयोदश सर्ग - 2

² पारिजातहरण महाकाच्य - त्रयोदश तर्ग - ।

³ पारिजातहरण महाकाच्य - त्रयोदश सर्ग - 6

⁴ पारिजातहरण महाकाच्य - त्रयोदश तर्ग - 7

सन्ध्या का अत्यन्त ही सजीव वर्णन करते समय किव कहते है - आकाश के एक भाग में अन्धकार फैल रहा है और दूसरे भाग में सूर्य-विम्ब दिखाई पड़ रहा है, ये दोनों ऐसे प्रतीत हो रहे हैं। मानों भगवान् शंकर की शक्ति अभिवका केश में रहने वाले यन्द्रमा के चारों ओर बिन्दुओं वाले सिन्दूर का सिन्धु फैल रहा है। १ अर्थात सिन्दूर रकत - वर्णन का होता है तथा सन्ध्या की लालिमा भी रक्तवर्ण की है १ और पृथ्वी पर चंचल बाल सन्ध्या अनुराग से विहार करती है।

सन्ध्या समय कमल ढक जाता है, उसी की उपमा देते हुए किव कहते है-सन्ध्या कालीन अंगना के स्मित मुख्यन्द्र को देखकर उपमान कमल सोने के समान मुद्रा को प्राप्त हो गया है §अर्थात चन्द्रमा के निकल जाने पर वह ढक गया है और लज्जा से जल में डूब गया है । §सूर्य के अस्त हो जाने पर ऐसा लग रहा है जैसे कमल समूह अत्यन्त विरह के कारण अवसाद को प्राप्त हो गए हो ।

त्रतु वर्णनः

तंत्रकृत ता हित्य में त्रतु वर्णन आवश्यक अंग हो कर आया है त्रतुओं का प्रमाव प्रकृति की रूपश्री और प्रमावोत्पादक पर पड़ता ही है। अतः तंत्रकृत कवियों ने प्रकृतिवर्णन प्रायः किसी न किसी त्रतु का आश्रय लेकर किया है। ये वर्णन तीन प्रकार के हैं । १ प्रदू त्रतु वर्णन जिसमें प्रकृति का स्वतन्त्र अस्तित्व

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - त्रयोदश सर्ग - 9

² पारिजातहरण महाकाच्य - त्रयोदश सर्ग - 11,12

है । इन मृतु वर्णन में कवियों ने अपनी मनः स्थिति से अप्रभावित रहकर मृद्ध सौन्दर्य के दर्शन किए और कराए है । § 2 § दूसरे वर्णन वे है जिनमें कवियों ने अपनी मनः स्थिति के अनुसार प्रकृति को प्रसन्न या उदास रूप में देखा है । यहां प्रकृति अनुवरी बन गई है । सहचरी नहीं । § 2 § तीसरे वर्णन में जहां प्रकृति किसी अन्य वर्णन की उपकर्मी मात्र बनकर आयी है उसका स्वतः अपना अस्तित्व नहीं है ।

त्रतु वर्णन में किवयों की दृष्टित वर्षा, शरद् और दसन्त पर विशेष गई है और इसका कारण है, संस्कृत किवयों ने प्रायः आनन्द की सिद्धावस्था को अपने काव्य में ग्रहण किया है। बाल्मी कि और व्यास ने ही अपनी दृष्टित मंगल की साधनावस्था की ओर भी रखी है। मंगल की सिद्धावस्था के किव के लिये यह स्वामा विक है कि वह प्रकृति के उन अंगां को उपादान रूप में ग्रहण करें जिनकी रंजकता स्वयं सिद्ध है। जिसकी मनोरमता के लिए उसे प्रयत्न न करनापपड़े। इस श्रेणी के किव विभीष्क उपकरणों को ग्रहण नहीं करते। इसी लिए ऋतु वर्णन प्रसंगों में ग्रीष्टम, हेमन्त, शिशिर के वर्णन किवयों ने प्रायः परम्परा निभाने के लिए किए है। उनकी वृत्ति इन स्थलों पर रमी नहीं है। दूसरे इन ऋतुओं के वर्णन में का लिदास जैसे महाकिव तक ने कोई नवीन कल्पना या उद्मावना नहीं की है कोई लुभावना चित्र नहीं उपस्थित किया है, पिर अन्य किवयों की बात ही क्या है १ पारिजातहरण महाकाव्य में शरद्भतु तथा वसन्तऋतु का बड़ा ही मनोरम वर्णन किया गया है।

शरद्यतु :-

पारिजातहरण महाकाच्य में किव उमापित ने विभिन्न अलंकारों के माध्यम से शरदश्रतु का चित्र सा उपस्थित कर दिया है। शरद्श्रतु के सौन्देर्य के वर्णन में उन्होंने अपनी अद्भुत प्रतिभा का प्रदर्शन किया है।

जहाँ उपमेय की इसके समान उपमान के साथ तादात्म्य सम्भावना होती है, वहाँ उत्प्रेक्षा-लंकार होता है। यह लाल चरण गोंच से शो भित अंग वाले, एकान्त आकाश में विलास करते हंस ऐसे जान पड़ते हैं जैसे टूट कर गिरे मूंगे के डंठलों को मुँह पेट में रख समुद्र के भीतर शंख तर रहे हैं। यहाँ लाल चरण गोंच १उपमेय तथा टूट कर गिरे मूंगे के डंठल १उपमान के साथ तादात्म्य है। एकान्त आकाश १उपमेय की उसके समान समुद्र १उपमान के साथ तादात्म्य है तथा हंस १उपमेय की उसके समान शंख १उपमान के साथ तादात्म्य है तथा हंस १उपमेय की उसके समान शंख १उपमान के साथ तादात्म्य सम्भावना है। ये सब वैसे हैं नहीं पर सम्भावना की जा रही है अतः उत्प्रेक्षा है।

क्लंडा के द्वारा वाग्देवता की तुलना शरद श्रतु से कर रहे हैं। क्वेत अम्बर वाली हैंदेवता पक्ष में है क्वेत वस्त्र से सजी आर सित बोलते हुए, हंसों की गति संचार से प्रसन्न हैंदेवतापक्ष में है आल सित मन्द या सर्वथा शोभमान हंस है निज वाहनह की गति से प्रसन्नह्श्रितुपक्ष में हैं ख़ुंगार हार के पुष्टप समूह से महनोहर छटा वाली हैंदेवता पक्ष में हैं ख़ुंगरार्थ हार के पूलों से अथवा अन्य विधि ख़ुंगार तथा हार एवं पुष्प राशि से मनोहर का नित वाली हैंशतु पक्ष में है उल्लास से विक सित

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - दशम सर्ग - 6

कर रखा है। अपने तमय के आश्रित बन्धुजीव दुपहरी के पूल जिसने हेंदेवता पक्ष में हूं आनन्दित कर दिया है अपने तिद्धारन्त के आश्रित बन्धुओं के जीवों को जिसने ऐसी वाग्देवता हैं सरस्वती देवी है के समान हमारे आनन्दार्थ शरद्शतु उदित हो रही है।

उपमेय और उपमान का जो काल्पनिक अभेद है, वह रूपक अलंकार कहलाता है। नाना पूष्प रूप आभरणों को धारण करने वाली विकसित चन्द्ररूप मुख वाली सरोजरूप नेत्रों सेसुन्दर अत्यधिक कास कृतुम रूप हास हैं हंसी है से सुशो मित, सरस तथा प्रसन्नता से पूर्ण, स्वच्छ अम्बर ही है वस्त्र जिसका ऐसी यह शरद तुम्हारी सुहृद सखी जैसी तुम्हारे अर्थ तिद्वि के लिए उ उत्सुक हो, मुझे तत्परता प्रदान करती है।

यहां मुख १उपमेय १ तथा चन्द्र १उपमान१ में काल्पनिक अभेद है, नेत्र १उपमेय१ तथा सरोज१उपमान१ में काल्पनिक अभेद है अतः रूपक अलंकार है।

कित ने जहां शरद् के तौन्दर्य में उत्प्रेक्षा, श्लेष्य, रूपक से भरी कल्पना की उद्धानों की सृष्टि कराई है वहां चित्रकार के तमान कुछ सुन्दर चित्र प्रस्तुत किए हैं। यह ध्वल हंतों की श्रेणी अपने चरण चंचु चाँच की लालिमा से रंगी, शुक्रमाला से मिलकर बरतात बीत जाने पर भी आकाश में इन्द्रधनुष्य की शोभा लग रही है। इन श्वेत तथा, जल न रहने से इलके बिखरे पड़े बादलों के दुकड़ों से व्याप्त तथा नाना प्रकार के शुक्र तारत आदि उड़ते पिश्यों से सजे आकाश को देखों यह शरद की स्वच्छ जल वाहिनी नदी, पर्वत श्रृंग को चारों ओर से घेरकर बहती दो गण्ड शैलों के बीच पतली धार में निकलती हुई, तुम्हारे वितंकट दोनों स्तनों के बीच

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - दशम सर्ग - 12

² पारिजातहरण महाकाच्य - दशम सर्ग - 22

लटकती एक नरी मुक्तामान का अनुकरण कर रही है। क्यारियों ते तजी, कहीं पके शस्त्रों ते पीली कही कात कृतुमों ते उज्जवन, कहीं हरी घात ते हरी भरी तथा किसी भाग में घनी नता श्रेणी ते नीनी कहीं रंगे बिरंगे पुष्पादि ते चित्रवर्ण वाली कही जपा पुष्पों ते रक्त वर्ण वाली योगिराज महादेव की कैलाई हुई कंथरी के तमान पड़ी इस भूमि को देखों।

प्रत्येक तरावरों में खिले हुए नागरूप रंग वाले लक्ष्मी के कमल रूप तजार आतनों पर मानों शरद्शत के गुणों को देखने के लिए परम शोभा का तमाज निकल कर बैठा हुआ है। यह कुमुद का बन दिन में स्वर्ग राज्य में उल्लिसित चन्द्र की चांदनी में उत्पन्न पृथ्वी के आनन्द रूप मनोहर चांदनी प्रकाश में अपने को 2 प्रकाशित करने के लिए बिना भयकम्प के आशा युक्त हो तुगन्धित हो गया। तेवार ते आच्छा दितों तरोवर में रमते नाना रंग और अवस्था वाले हंतों की माला जैती दीख पड़ रही है।

और भी शरद ऋतु का तौन्दर्य देखिए — मेघमण्डल को हटाकर सुलभ स्वच्छता से युक्त, प्रचुर पल पूल शालि-धान्य को उत्पन्न करने वाली, जल को विमल विधायक कियाओं से शुद्ध कर इस शरद्ऋतु ने मेरे अधों १पाप पुंजों १ को मिटाकर प्रसन्नता को सुलभ बना दिया है जिन्होंने, भाई सहित वातापी नामक असुर को पेट में पचा, मकरों सहित समुद्ध का पान कर लिया तथा सूर्य के मार्ग को रोकने वाले विन्ध्याचल को स्तम्भित कर दिया उस रेश्वर्यशाली महात्मा

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - 7-10

² पारिजातहरण महाकाव्य - 15, 16

उ पारिजातहरण महाकाच्य - 18

अगस्त्य के उदय में आज चारों ओर से सारी दिशाएं प्रसन्न हो उठी है।

वसन्तवर्णनः

कवियों की दृष्टिट बसन्त तथा शरद्शतु वर्णन में अधिक हो गई है।
पारिजातहरण महाकाच्य में किव उमापित ने बसन्त का वर्णन करके प्रकृति के
सुकुमार रूप को दिखाया है। बसन्त श्रतु का प्रारम्भ कैसे होता है इसका
बड़ा ही स्वाभाविक वर्णन किव ने किया है तथा बसन्त श्रतु का मानवीकरण
भी किया है - बसन्त भी पृथ्वी में रमण करने के लिए भगवान् विष्णु के साथ
हो गया। आज श्रतुपित बसन्त पृथ्वी को जा रहा है।

बसन्त ऋतु को नवों रसों से रमणीय बताया गया है - मैं १ मणवान कृष्ण १ इस लोक में पृथ्वी में ऋतुराज के स्वागत के लिए पूरे लोक की पर अधिकार करके नव रसों से रमणीय जो मानव की चेतना है उसको संचालित कर रहा हूँ।

तस्ततारं, पत्ते इड़ने लगे हुनुशो िमत होने वाले वन के नये रस मूत में किलियां प्रादुर्भूत हो गई और नर-नर कितलयों से युक्त वन हो गर । मौरों का मधुर वाणी के द्वारा जिस बसन्त का जन्म स्तूयमान हो रहा था और प्रिय कोयल की वचनाली द्वारा गाकर जिसको प्रसन्तता दी जा रही है। पुष्प में प्रेम विशे प्रमोद करता हुआ अतुराज बसन्त धीरे-धीरे पृथ्वी पर आ गया।

[।] पारिजातहरण महाकाट्य - 24,25

² पारिजातहरण महाकांच्य - एकविंश तर्ग - 20

³ पारिजातहरण महाबाच्य - एकविंश तर्ग - 22

⁴ पारिजातहरण महाकाच्य - एकविंश सर्ग - 25

कल्पवृक्ष पारिजात भी बसन्त के आने पर अत्यन्त प्रसन्न हो गया -

कल्पवृक्ष अपनी दिव्यता से उल्लिसित हो गया तथा गगन और पृथ्वी के बीच में बसन्त को देखता हुआ तारा तर, लता, वायु, दिन, रात के द्वारा बढ़ें आनन्द वाली सारी पृथ्वी को उल्लिसित करने लगा । उस पारिजातहरण ने समस्त लोकों में अपने द्वारा रचे गर विशेष गुणों से समता धारण करके लोगों के मन के अधिराज्य में कामदेव को अनंकृत कर दिया तथा बसन्त में उपस्थित तभी समाज 2 भीरों आदि को सम्पूर्ण सुखों से युक्त कर दिया ।

विभिन्न अलंकारों के माध्यम से भी बसन्त का वर्णन करके किव ने प्रकृति के सुकुमार रूप का बड़ा ही मनोहारी चित्रण किया है तथा बसन्त का कियत अंकित कर दिया । रूपक के माध्यम से बसन्त का वर्णन ——

"निरन्तर ध्वनि से युक्त भौरों की पंक्तियों रूपी टंकार करती हुई प्रत्यंचाओं वाली अपने धनुष्य को यह पुष्प धन्वा कामदेव धारण करता हुआ सकल लोगों के मन को प्रेमपूर्ण कर रहा है तथा कोयल रूपी वीर योद्धाओं के द्वारा गाया जाता हुआ अपने उगुभाव के प्रभाव वाला वह कामदेव लोगों के मन को राग से सुख्ध कर रहा है।

उपमेय और उपमान का काल्पनिक अभेद्र रूपक कहलाता है। यहां पृत्यंचा उपमान और भौरों की पंक्तियों में काल्पनिक अभेद्र है तथा वीर योद्धा

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - एक विंश सर्ग - 35

² पारिजातहरण महाकाच्य - एकविंश सर्ग - 41

³ पारिजातहरण महाकाच्य - एकविंश सर्ग - 27

उपमान में और कोयल उपमेय काल्प निक अभेद है अतः यहाँ रूपक अलंकार है।

उत्पेक्षा के माध्यम से बसन्त का तो वर्णन बड़ा ही आकर्षक है - रसीले आम के वृक्ष में प्रकट होती हुई मंजरियों में सुन्दर मधु से युक्त मतवाले हो रहे भौरों के द्वारा मधुरता से युक्त तथा कोयलें के हरित कूजन द्वारा भी मानों कामदेव अपनी कमनीय आज्ञा को मतवाली बना रहा है।

संयोग श्रृंगार के माध्यम से कित ने बतन्त का वर्णन करके बतन्त को चित्र रूप में अंकित कर दिया है। यहाँ मधुमास और रित के संयोग का वर्णन है -

"विकसित मदन पुष्प के अंगों में मिल्लका नाम की लता पुष्पों से युक्त हो कर उसके अंक में समा गई। विकसित होती हुई आम्रलता में माध्वी नाम की मदमत्त हो गई। खिनते हुए मौनसिरी के वृक्ष में मानती प्रतन्न हो रही थी। इहस प्रकार जड़ और वेतन में मधुमास ने रित को धारण किया। "वह का मदेव बसन्त की परिचर्या की पूर्ति के लिए सभी लोकों में सहचरण के लिए ह्या प्त हो रहा था।

और भी वर्णन देखिए अव्यक्त मनोज्ञ ध्वनि से युक्त पिक्षयों के समूह से युक्त शीतल सुप्रभात में मलया निल के बहते हुए, प्रभात में अलसाई हुई लास नृत्य करते हुए चुटकियों से खिलती हुई समस्त फूलों की उत्सव की शोभा अतुराज बसन्त के साथ रमण कर रही है।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - एक विंश सर्ग - 31

² पारिजातहरण महाकाच्य - एक विंश तर्ग - 29

³ पारिजातहरण महाकाच्य - एक विंश तर्ग - 30

⁴ पारिजातहरण महाकाच्य - एकविंश सर्ग - 32

इस वसन्त की तुलना किसी से नहीं हो सकती अर्थात यह अतुलनीय भोभा वाली है इसी का वर्णन कवि कर रहे हैं। समस्त संसार की गणना करने वाला यह काल ्रेंबसन्त्र अपने भावों को स्वयं ने गिने हुए रूप वाला है अर्थात् अज्ञात रूप वाला है, अतु सम्बन्धी क्रियाओं द्वारा अपने नाना स्वरूपों को दिखाता हुआ अपने रूप को विस्तृत कर रहा है। इस बसन्त की तुलना किसी से नहीं हो सकती और यह बसन्त स्वयं मानों निदर्श है।

अपने-अपने स्वभाव के अनुसार बूढ़े, युवक, कुमार सभी कामदेव की आराधना कर रहे हैं। यह बसन्त ऋतु प्रकृति द्वारा प्रतिपादित नियमों वाली है तथा इसमें किसी प्रकार का अभियोग नहीं आ सकता।

बसन्त ऋतु के आने पर सबके व्यवहार का वर्णन भी कवि ने किया है —
"रित और काम की तदात्मता को प्राप्त करके सभी स्त्री पुरुष बिना
शौंका के रमण करने लगे।

पारिजातवृक्ष भी अपने दोहद को प्राप्त करके नाना प्रकार के अभिराम का नित वाली लाल, पीली, नीली पूर्लों वाली शोभा को प्रसन्न चित्त होकर फिर पोछने लगा । कल्पवृक्ष ने अपने से उत्पन्न दिव्य लताओं के विस्तार को आलिंगन कर लिया । दूसरे नर और नारी को भी रामण सुख प्राप्त कराता हुआ यह कल्पवृक्ष कोयल के पंचम स्वर के तेज से युक्त होकर मानो गीत गा रहा था ।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - एक विंश तर्ग -33

² पारिजातहरण महाकाच्य - एक विंश सर्ग -42

उ पारिजातहरण महाकाच्य - एक विंश सर्ग - 46

कामदेव को अतुराज का मित्र बताया गया है — अतुराज के तखा कामदेव के तमाज की तममिनाधा करते हुए मनया निन ने भी नितकाओं का चुम्बन किया । कामदेव के आने पर किसी नता ने सुगन्धित द्रव्य फेंका, किसी ने पुष्प फेंका, किसी ने केशर तथा किसी ने फूनों का पराग।

"इस प्रकार यह मुधुमास का मारूत विहरण करता हुआ लोगों के घर के 2 भीतर बाहर सचिव का काम करने लगा । लताओं के साथ अभिरमण प्रारम्भ करने वाले तथा सभी के परिश्रम को हरने वाले इस दसन्त ने सुगन्धित वायु को चारों दिशाओं में पैला दिया तो फिर इस बसन्त को देखकर श्रृंगार का जो स्वयं देवता है । अर्थात कृष्ण ने शरीर रहित को भी शरीर वाला बनाकर अपने शरीर से उत्पन्न करके उस प्रदुम्न को तथा उससे भी उत्पन्न अनिरुद्ध में उसकी स्त्री रित को देखकर प्रेम से अत्यन्त विनोद के मोदन से रत वह कृष्ण क्यों न होगें 9

वासन्तिक उत्सव के द्वारा बढ़े हुए माध्य कृष्ण स्वयं कामदेव हो गर अर्थात उनकी शोभा अद्भितीय हो गई। सभी लोगों ने भगवान से अनुरोध किया कि जैसी रस गोष्ठी शरद ऋतु में अपने बाल्यकाल में रचाई थी आज मधुमास में भी वैसी ही रस गोष्ठी रचाओं।

दसन्त त्रतु में पीताम्बर धारण करके कृष्ण रूकिमणी आदि सिख्यों के साथ रमण करने लों। रास शुरू होने पर मधुमास ने सभी स्थितियां अनुकूल

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - एकविंश सर्ग - 46

² पारिजातहरण महाकाच्य - एक विंश सर्ग - 49

³ पारिजातहरण महाकाच्य - एकविंश सर्ग - 53

बना दी । भौरों ने मधुर गुंजन किया अपने-अपने उँचे मीठे-मीठे स्वरों को उसी क्रम से सूर्यनाद को विहंगों ने धारण किया । चंचल पत्ते और पुष्प और इर्मुटों में स्थित वृक्ष भी उस बसन्त में कृष्ण जैसा आचरण करने लगे ।

"उमर उछलते हुए पेन रूपी हास वाला, जल जीवों से उत्पन्न की गई सैंकड़ों ध्वनियों से तथा जलाशय में अपनी तरंगों से नाना प्रकार के रत्न समूह को प्रकट करने वाली बीचियों के द्वारा कह जलाशय प्रसन्नता के उदय को प्रवर्शित करता हुआ अर्थात खुशा हो कर नाचने लगा।

तत्परचात भगवान कृष्ण ने अपना रात प्रारम्भ कर दिया भगवान ने वंशी बजाना शुरू कर दिया और उस बांसुरी ने मंगलाचरण का नान्दी गीत गाना शुरू कर दिया । भगवान माला को धारण करके तथा मयूर के पूँछों से शिर को विभूषित करके त्रिमंगी की मुद्रा में खड़े हो कर वंशी बजाने लगे और भगवान कृष्ण ने काम को प्रसन्न करने वाली सभी चेष्टाओं को प्रारम्भ कर दिया ।

लोक जीवन की झांकी

साहित्य समाज का दर्पण है। इस बहुचर्चित उक्ति के अनुसार कि के काट्य में उसके युग की सांस्कृतिक, सामाजिक एवं आर्थिक जन जीवन की झांकी प्रतिविभिन्नत होती है। संस्कृत काट्य की यह दूसरी विशेष्ट्रता है कि जन साधारण के मनोभावों का चित्रण बड़ी ही कमनीय शैली में प्रस्तुत करता है।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - एक विंश सर्ग - 57

किव अपने सामयिक समाज से प्रभावित रहता है। कुन किव जिस अतीत के इतिवृत्त को अपने काट्य का कथानक बनाता है, उसी अतीत की अन्य स्थितियाँ भी उपस्थित करने का प्रयास करता किन्तु यदि सूक्ष्मेक्षिक्या देखा जाय तो वहां भी उसका वर्तमान समाज झाँकता दिखायी पड़ता है, क्यों कि उसकी अतीत या भविष्य से सम्बद्ध सारी कल्पनाओं का आधार वर्तमान ही रहता है। किव की कल्पना वर्तमान की नींच पर अतीत तथा भविष्य के प्रासाद बनाया करती है अतस्व किसी काट्य की समानोचना करते समय उसमें वित्रित तत्कालीन समाज का भी विवेचन किया जाता है। किव "लोक" अवेक्ष्म द्वारा भी काट्य निपुणता प्राप्त करता है।

मानव के अन्तकरण के चतुर्दिक राग द्वेष, हर्ष-विषाद क्रोध, शोक, उत्साहअवसाद आदि जितने भी भाव है उनका चित्रण संस्कृत कवियों ने अपनी लित लेखनी के द्वारा इतनी स्वाभाविकता से किया है कि पाठक तद्भाव सरिता में उन्मग्न निमग्न होता हुआ अनुभव करता है यद्यपि संस्कृत कवियों का जीवन राजाओं, महाराजाओं के वैभव सम्मन्न दरबारों में बीतता था तथापि वे जनसामान्य के जीवन से पूर्ण परिचित होते थे एवं अपने काच्यों में उनकी नाना मनोवृत्ति की अभिच्यक्ति करके उनके प्रति अपनी सहानुभूति को प्रकट करते थे।

इस परिपेक्ष्य में यह मानना असंगत न होगा कि मानव के विभिन्न मनोगत भावों को अभिव्यक्त करने में संस्कृत काव्य वाइमय पूर्ण रूपेण सफ्न रहा है। याहे वह दूश्य काव्य हो या श्रव्य, पर जहां तक तत्का निक सामा जिक एवं सांस्कृतिक झांकी प्रस्तुत करने की बात है उसमें श्रव्य काव्य विशेष्ठा रूप से उल्लेख— नीय है। कारण स्पष्ट है दूश्य काव्यों में कवि जन रस परिपाक के प्रति पूर्णरूपेण से सजा दिखाई पड़ता है। अतः रसवत्ता की आधन्त रक्षा करने के निये उनमें कथनोपकथन का विशेष्ठा महत्व होता है। किव ने अपने काल विशेष्ठ की सूचना काट्य के दशम सर्ग में दी है।
दशम सर्ग में किव ने शरद अतु का वर्णन किया है। शरद वर्णन में लक्ष्णा से
किव ने अपने काल विशेष्ठ की सूचना दी है – यह कुमुद का वन दिन में
१६विन से कुमुद दुष्टित का दल है स्वर्ग राज्य में उल्लिसित चन्द्र की चांदनी में
१६विन से कुमुद दुष्टित का दल है स्वर्ग राज्य में उल्लिसित चन्द्र की चांदनी में
११ किंच निजी राज्य से उत्पन्न पृथ्वी के आनन्द रूपमनोहर चांदनी प्रकाश में
११ सर ११ के भीतर ११ किंच लक्ष्णा से देश के भीतर ११ अपने को प्रकाशित ११ प्रभाव युक्त १
करने के लिये बिना भयकम्प के आशा युक्त हो सुगन्धित तथा बद्ध सम्मुदित रहकर
अन्य पक्ष में ११ शोभन गांधी रूप नेता से बद्ध उनके अनुरोध से गृहीत १ अथवा बन्दी
खाने में पड़ा सत्यागृह रूप तप कर रहा है। १ लाक्षणिक ध्वनि के द्वारा गांधी
के नेतृत्व में चलते स्वराज्य सेवा के लिये सत्यागृह की स्मृति दिलाकर अपने काल
विशेष्ठ की सूचना किव ने दी है १

किव उमापित दिवेदी विरिधित पारिजातहरण महाकाच्य 19 वीं
शताब्दी में लिखा गया है । 1921 ई0 के असहयोग आन्दोलन के बाद यह
काच्य लिखा गया है । उस समय देश के युद्ध और आन्दोलन बद्ध रहे थे । अंग्रेजों
के अत्याचार हिन्दुओं पर बद्ध रहे थे । प्रतिदिन हजारों की संख्या में लोग
मारे जा रहे थे । सम्पूर्ण समाज अंग्रेजों के अत्याचार से विक्षुब्ध था । लोगों
का ध्यान उस समय ईश्वर की ओर से हटा हुआ था । उस समय किव ने लोगों
का ध्यान ईश्वर की ओर आकर्षित करने का प्रयत्न किया किव ने जितने काच्य
लिखे सभी में ईश्वर की स्तुति की गई । प्रस्तुत पारिजातहरण महाकाच्य में
भगवान कृष्ण को अराध्य देव मानकर उनकी स्तुति की गई है । सर्वथा स्वीधीन
और सम्पूर्ण जगत् के नियन्ता सर्वेश्वर भगवान कृष्ण ने मनु सम्बन्धिनी समस्त

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - दशम सर्ग - 16

सम्पत्ति को उपाधि रूप में धारण कर लिया अर्थात कपट मानुष्य हो कर भूतल को कंस आदि दानवों के विनाश द्वारा स्वस्थ कर दिया ।

उस समय किव ने शिवास्तुति एक और काट्य लिखा, जिसमें शिव की स्तुति की गई है। शिवास्तुति लिखने पर वहां के राजा ने किव को किवपित की पदवी से विभूषित किया तथा पारिजातहरण महाकाट्य लिखने पर विशेष्ठा रूप से सम्मानित किया। पारिजातहरण महाकाट्य जगत की पवित्रता के लिये तथा लोगों के मानस के विनोद के लिये पारिजातहरण काट्य लिखा गया। ईवर में ध्यान लगाने से मन की शान्ति हो सकती थी, अतः हरिवंश पुराण के पंचम सर्ग में नारद के मुख से भगवान कृष्ण की स्तृति का वर्णन निम्न है:-

हे हरे ! आपके जिस प्रभाव को मेरे पिता पितामाह ब्रह्मा भी नहीं जान पाते रेसे आपके विषय में यह मेरी पूर्वों क्त गुणानुवादात्मक स्तृति रूप उक्ति भी असमर्थ होने के कारण अनुचित है, क्या ! पांख निकल आने पर भी चींटी कभी चन्द्रविम्ब को चूमती है ।

फिर भी तुम्हारे महत्व को हुनाम गुणादि वर्णनहूँ न कहती हुई बाणी की उत्पत्ति की व्यर्थ है, वह वाणी पापिनी है। किंच अगम्य विषय में वाणी का प्रसाद भी दूषित ही है। ऐसी दु:खिरिथित में हे भगवन्। आओ अब यहां तुम्हीं प्रमाण हो जो उचित समझो काव्य के चतुर्थ सर्ग में किंव ने गृहस्थ धर्म का निरूपण किया है:-

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - प्रथम तर्ग - ।

² पारिजातहरागं महाकाच्य - पंचम सर्ग -

उ पारिजातहरण महाकाच्य - पंचम सर्ग

गृह शब्द का अर्थ गृहीत होने वाला यह गृहण करने वाला होता है जिसे सज्जन अनुगृहीत करते हैं या अपनी सेवा सत्कारादि गुणों से जो स्वयं महात्माओं को अपनी ओर खींच लेता है । वहीं वास्तव में गृह है । आपके आ जाने से वैसा ही गृह यह हो गया है । आपके रहने के स्थान को गृह नहीं कहते । गृहस्थ से इतर कुछ भी अपेक्षा जिसे है वह अतिथिमात्र भिक्षा है । उनका कोषा आश्रम गृहस्थी की रक्षा करने वाले हम लोगों को महात्माओं को शुम दर्शन इस अधिकार को सौंपने वाले दैव का दिया पुरस्कार है ।

जो मनुष्य इस गृहस्थाश्रम के सभी सुख दूसरों को न भुगाकर अपने भोगते हैं वे इस लोकोपका रिणी संस्था के सर्वस्व हड्प जाने वाले महान् पापी है।

काच्य के दक्षम सर्ग में किंदा ने वाणी की प्रशंसा में कहा है कि आमो दिनी किंय सुन्दर गन्ध वाली सरस भावों के विकास से रमणीय अथवा सरस स्वभाव तथा दी पित से मनोहर, सन्दर्भ शुद्धि, पद-विन्यास की स्वच्छतापक्ष में सम्यक् गृथन की सुरीति तथा पूर्णक्ष्पेण पुष्ट माधुर्यादि गुण, सूत्र से युक्त, प्रसाद वाली, भनी भांति अलंकृत तथा संस्कार से शो भित्त माला के समान आपकी यह वाणी हृदय में रख लेने से किसकी श्रीको नहीं बढ़ा देगी।

बिना सन्देह के प्राप्त सिद्धि द्वारा शुभ नाभ वानी तप स्विनी के समान अपकी वाणी हमारे पुण्य से ही हमें अनुगृहीत कर रही है।

[।] पारिजातहरण महाकाट्य - चतुर्थ तर्ग

² पारिजातहरण महाकाच्य - चतुर्थ सर्ग

³ पारिजातहरण महाकाच्य - चतुर्थ सर्ग

⁴ पारिजातहरण महाबाच्य - दशम सर्ग - 57

⁵ पारिजातहरण महाकाच्य - दशम तर्ग - 59

काट्य के अद्वारहवें तर्ग में युद्ध की शान्ति के लिये घिष्ट भगवान की स्तुति की गई है -

नर रूपी श्रीकृष्ण ने तदा शिव को बहुत देर तक ध्यान किया । बाण ते बलपूर्वक पृथ्वी तल को भेदकर पाताल गंगा के जल को निकालकर मालूर पल भें शंकर को स्थापित करके उनकी अर्चना की :-

"प्रतिमील्य लोचनपयोजयोर्द्यं हृदि हृष्टताम्बवरणा ब्जयोर्न्यधात्। अथ तुष्टदुवेडनुरति गद्धदाक्षरं भगवन् । प्रतीद विष्ये तुत्तिद्वये ।।

काट्य के बारहवें तर्ग में गरूड़ भगवान कृष्ण की स्तुति करता है :-हे परमपूज्य । यह मेरा शरीर और मेरा मन तुम्हारे चरण कमलों ते क्षण भर के लिये भी अलग नहीं है । हे निर्विकार । तुम्हारी मानव के रूप में जो पद और चेष्टार है वह हम लोगों को प्रसन्नता देने वाली है । पिन्त और अनिर्मल होने पर भी तमुद्र से अलग शरत्सरोवर सरोज सहित सुशो भित होता है -

"पृथ्णेव ते परिचयो मुद्दे ततांप्रभुता तव प्रियतयाङ तिरोचते । स्वजनावनवृत । भवत्यधीश्वरे परतन्त्रतैव खनु नः स्वतन्त्रता ।।

[।] पारिजातहरण महाकाट्य - अष्टादश - 5

² पारिजातहरण महाकाच्य - द्वादश तर्ग -53

अलंकार तौन्दर्य

काट्य सौन्दर्य के दो पक्ष स्वीकृत किये जाते हैं - बाह्य और आन्तरिक । बाह्य काट्य सौन्दर्य के अन्तर्गत अनुप्रास, वक्रो त्ति, इलेख और यमक नामक शब्दालंकारों, पुनककावदाभास नामक उभयालंकार का यमत्कार आता है ।

उपमा, रूपक, दीपक आ दि अधीलंकार भी निस्संदेह बाह्य सौन्दर्य से सम्बद्ध है किन्तु उनमें आन्तरिक सौन्दर्य भी कम नहीं है। अथालंकारों का सौन्दर्य रसध्य निगत सौन्दर्य का परिवर्द्धक है और केवल इसी स्थिति में ही वे मान्य है।

काट्यशास्त्र में अलंकार की बहुत चर्चा हुई है। सच बात तो यह है कि अलंकार के प्रयोग से ही काट्य मंडित होता है।

"अलंकरोतीति अलंकारः अर्थात वह पदार्थ जो किसी की शोभा बढ़ाये, किसी को अलंकृत करें। लोक में हम उन कटक-कुण्डलादि आभूषणों को जो शरीर की शोभा बढ़ाते हैं, अलंकार कहते हैं। ठीक उसी प्रकार काव्य के उन उपकरणों को जो कविता-कामिनी की श्रीवृद्धि करते हैं, अलंकार कहा जाता है।

[।] १०१ रतभावादितात्पर्यमा श्रित्य विनिवेशनम् । अलंकृतीनां सर्वासामलंकारत्व शाल्यनम् ।। −हिन्दी ध्वन्यालोक पृषठ–।।2

१ष ("ध्वन्यात्मभूत श्रृंधोरे समी ध्यवि निवेशतः । रूपका विरलंकार वर्ग एतियथार्थताम् ।। —ध्वन्यालोक-2/17

काच्य शीभाकारान् धर्मानलंकारान् प्रवक्षते
 काच्यादर्श - २.।

"अलंकारीवादी आचार्यों ने काट्य में अलंकार को सर्वोच्च स्थान प्रदान किया है। अनेक अनुसार गुणालंकार से रहित कविता विध्वा के समान है। सुन्दर से सुन्दर रमणी का वदन बिना अलंकारों के शोभा नहीं पाता, ठीक उसी प्रकार सुन्दर से सुन्दर काट्य भी अलंकारों के अभाव में हीन दिखाई पड़ता है। इन आचार्यों ने उपमादि अलंकारों की भाँति रस को भी अलंकार मान लिया। मामह, दण्डी तथा उद्भट ने रसवत् प्रेयस, उर्जस्विनी तथा समाहित अलंकारों के नाम से रसभावादि आकार्य को अलंकार के अन्तर्भूत कर लिया। परन्तु काट्यशास्त्र के इतिहास में ध्वनि की अवतारणा के साथ रस को उचित मान्यता मिली एवं काट्य के आत्मतत्व के रूप में उसकी प्रतिष्ठा हुई। रस एवं ध्वनिवादी आचार्यों के मत में अलंकार्य हिस तत्व का जो अलंकरण करे वहीं अलंकार शब्द की मीमांसा करने पर उपर्युक्त धारणा की ही पुष्टिट होती है।

^{। &}quot;गुणालंकार रहिता विश्ववैंक तरस्वती-डा०भोलाशंकर व्यास द्वारा कवल्यानन्द की भूमिका में उद्धृत पु० 62

² न कान्तमपि निर्भूष विभाति वनिताननम् भामह काट्यालंकार, 1-113

³ ४ूं क ४ूं भा मह का ट्यालंकार 3, 1, 5, 6, 7, 10 ४ुं खं ४ूं का ट्यादर्श — 275 — 299

^{4 🍇} क 🖇 अभिनव गुप्त ध्वन्यालोक लोचन — पृ० 85

१ ख १ महिमभद्र – हिन्दी व्यक्ति विवेक – 90 ।।।

१ॅग१ मरमट - का व्य प्रकाश 8,66

[§]घ§ विश्वनाथ-ता हित्य**द**र्पण - 1-4

^{5 🍇} कं अंगा श्रिता स्त्वलं का रामन्त च्या कटका दिवत् " —ध्वन्यालोक — 2—6

१ंखं उपकुर्वन्ति तं सन्त येडडः गद्धारेण जातु चित् हारादिवदलड्∙ कारास्ते नुपासोयमदयः ।।

⁻ काच्य प्रकाश - 8,67

" अलंकरो त्यलंकारः अथवा अलंक्यते देनेन्त्यलंकार, अथवा अलंकरणमलंकारः ।"
अलंकार की प्रचलित इन तीनों च्युत्पित्त्यों में से किसी को भी मानने पर अन्त
में यही निर्गलितार्थ निकलता है कि काच्य में शो भाधायक तत्त्व अलंकार कहलाता
है । इस प्रकार अलंकार किसी भी दशा में काच्य का प्रधान तत्त्व नहीं है ।
प्रधानमूत अलंकार्य अथवा धर्मी रस का शो भाचायक होने के कारण वह काच्य का
गौ णतत्त्व है । जिस प्रकार लोक में लावण्यवती ललना कटका दि भूकणों से हीन
होने पर भी सह्दयों के चित्त को आकृष्ट करने में समर्थ होती है, उसी प्रकार
अनुप्रासोपमादि अलंकारों से रहित होने पर भी शृंगारादि रसों से युक्त काच्य
सामाजिकों को आनान्त्वत करने वाला होता है । परन्तु काच्यात्मभूत रस के
अभाव में प्रयुक्त अलंकार काच्य में मृत्युवती के अंगों पर प्रयुक्त कटका दि के तुल्य
निर्थक प्रतीत होते हैं । काच्य में प्रयुक्त सेते अलंकार वैरस्य के हेतु होते हैं ।
अतस्व रस अथवा अलंकार्य के प्रति उपेक्षावान एवं अलंकारसाधना में तत्पर कि
का कार्य काच्य संज्ञा का मापन नहीं बन सकता । वह जीवित भूत रस के

[।] क्वचितु स्फुटालं**का**र विरहेडीप न काट्यत्वहानिः काट्य प्रकाश, पृ० ।।

² तथा हि अयेतनं शव शरीरं कुण्डलाद्युपेतमपि न, भा ति, अलंकार्यस्याभावात्। "
—ध्वन्यालोक लोचन — 90 419

उ क्लोबालं कारमापोडंपि रसानिष्यन्दकर्कशाः । दुर्मगां इव कामिन्यः प्रीणन्ति न मनोगिरः – सा० दर्पण । . 7

⁴ रसभावादि विषय विवक्षा विरहेसति । अलंबार निबन्धो यः स चित्र विषयोगतः ।

⁻ ध्वन्योलोक - पृ० ३।।

एवं मम्मट द्वारा निर्दिष्टि अधम काच्य १ शब्द-यित्र, अर्थियति १ के अन्तर्गत गणना की जायगी ।

आचार्य वामन ने कहा है कि बिना आलंकार के काट्य की प्रतिष्ठा ही नहीं है " काट्य ग़ाह्यमलंकरात् " और तौन्दर्य ही अलंकार है "o तौन्दर्य — मलंकार: ।" तौन्दर्य का अर्थ चमत्कार या तूक्ति का तरतता है चन्द्रालोककार "शब्दार्थ्यो: प्रतिद्वया वा कवे: प्रौदिविशेन वा । हारादिवदलंकार: तिन्तवेशो मनोहार: ।।"

"अलंकार अर्थ की भागिमा है, और काट्य या तू कित का तमस्त उमत्कार अथवा आनन्द इती अर्थ मंगिमा ते उत्पन्न होता है। जब अलंकार के रूप में इत अर्थ मंगिमा की दिशा निर्धारित हो गई तब काट्य की शास्त्रीय वर्धा में इन अलंकारों के प्रति अबाध जिज्ञाता फूट पड़ी। न तो अर्थ मंगिमा का अंत हो तकता था और न अलंकारों की संख्या निर्धारित की जा तकती थी। इस लिए दण्डी ने कहा है —

आज भी अलंकार प्रकारों की नई नई उद्भावनायें प्रस्तृत की जा सकती हैं। भना कौन इन अलंकारों का समग्र रूप से विवेचन कर सकता है।

आचार्य मम्मट ने काट्य में अलंकारों की क्रिया स्थिति का निरूपण किया है - प्रथम प्रकार की स्थिति में अलंकार अंगरत के अंगमूत वाच्य एवं वाचक के अलंकरण के माध्यम ते अन्ततः रस का उपकार करते हैं। दूसरी स्थिति में

[।] काट्यालंकार सूत्रवृत्ति - 1/1/2

² चन्द्रालोक - 51

³ आचार्य दण्डी स्वं तंस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास दर्शन - पृ० 87

⁴ काट्य प्रकाश - प्रषठ 286

विद्यमान होने पर भी रत का उपकार नहीं करते। तीतरी स्थिति में रत के अभाव में भी उनकी तत्ता रहती है। इनमें ते प्रथम प्रकार की स्थिति तवौँ त्कृष्ट है क्यों कि इसी देशा में अलंकारों की अलंकारता है।

अनंकार प्रयोग के औ चित्य के प्रसंग में ध्विनकार का कथन है कि रसादि की अभिन्यंजना के समय रस से आ क्षिप्त होकर यदि बिना किसी पृथक प्रयत्न के अनंकार का प्रयोग स्वतः हो जाय तो वही अनंकार है। क्यों कि इस प्रकार का की अनंकार मुख्य रूप से रस का अंग होता है। जो अनंकार रस बन्धन में तत्पर किव को उस रस बन्धना व्यवस्थावासना का अतिक्रमण करके अनंकार निष्पादनार्थ दूसरे प्रयत्न का आश्रय नेने पर ही बनता है, वह रस का अंग नहीं होता। ध्विनकार के कथनों का आश्रय डा० गणेक्षा त्रयम्बक देशमाण्डे के शब्दों में स्पष्टत रूप से देखा जा सकता है।

"इसका अर्थ यह है कि काट्य रचना के समय रसा िमट्य कित और अलंकारों की सुष्टिट दोनों कित के एक ही प्रयास से सिद्ध होना चाहिए तभी वह अलंकार उस रस से अंतरंग हो कर ट्यंजिनक्षम हो सकता है। यदि ऐसा न हुआ और अलंकार के लिए कित को यदि पृथक् प्रयत्न करना आवश्यक होगा तब कित

[।] क्विधित्तु सन्तमि नोपकुर्वन्ति"

⁻ काव्यप्रकाश पृ० 286

यत्र तुनास्ति रसस्तको स्तिव चित्रयमात्र पर्यवसा यिनः
 —का व्य प्रकाश पु० 286

उरसभावा दिता त्पर्यमा श्रित्य वि निवेशनम् । अलंकृतीनां सर्वांसामलंकार त्वसाधनम् – ध्वन्यालोक प्र० ८८

⁴ ध्वन्यालोक - 2-16

⁵ ध्वन्यालोक - प्र० 105-106

का अवधान रस में नहीं हो पाता और वह केवल अलंकारों की रचना में लगा रहता है। इस अवस्था में रचा अलंकार रस से अन्तरंग सम्बन्ध नहीं रखता, बाह्य हो जाता है यह अलंकार रस व्यंजक तो रहता ही नहीं, प्रत्यत् रस का बाधक होता है। किसी समय यदि वह रस का बाधक न भी हुआ तो रस में गौणत्व रूप लाता है।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन का निर्गालतार्थ यह हुआ कि काच्य में चाहे रसाभिव्यक्ति का स्था हो या प्राकृतिक दृश्यों का चित्रण हो अथवा पशुपिक्षमों या बालक-बालिकाओं का स्वामाविक वर्णन ही अलंकार किव का साध्य नहीं बनना चाहिए और यदि आत्मभूत रस के परिपोध के लिए अलंकार की योजना की जाए तो अलंकार वास्तव में चारूत्व हेतु बन जाते हैं।

अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग ही काट्य में यमत्कारधायक होता है
प्रयोग के प्रति बहुत अभिनिवेश काट्य का विद्यातक बन जाता है। आयार्य
कुन्तक का कहना है कि पदार्थ के स्वाभाविक प्रस्तुतीकरण में उपमा आदि वाच्य
अलंकारों का भूषसा प्रयोग उचित नहीं होता, उसमें सौन्दर्थ में मलिनता आने की
सम्मावना रहती है।

यह सत्य है कि अलंकार ही कवि का विध्य नहीं होता । उसे जिस अर्थ को कहना है, उसमें स्वाभाविक रूप से अलंकार का जितना सन्निवेश हो सके, वही उचित होता है और उससे ही काच्य का चमत्कार दिशुणित होता है ।

[।] भारतीय साहित्य शास्त्र - पृ० 366

² ध्वन्यालोक - 2-17

उ वको कित जी वित - 3, ।

शब्दालंकारों में शब्द परिवृत्य सहत्व होने के कारण किव को शब्दों के बन्धन में रहना पड़ता है किन्तु अर्थालंकारों में किव रसानुकून अलंकार के प्रयोग के लिए शब्दों के ध्यामोह में नहीं पंसता । किवयों को अर्थालंकारों में उपमा सर्वाधिक प्रिय है । सभी आलंकारिक अर्थालंकारों के निरूपण का प्रारम्भ उपमा से ही करते जा रहे हैं । इसका कारण है कि उपमा का अनेकानेक अर्थालंकारों में मून रूप से होना और काध्य-तौन्दर्य में विशेष्ट रूप से सहायक होना । अलंकार सर्वत्वकार आधार्य रूप्यक ने इसी लिए कहा है कि — उपमेवानेक प्रकार वैधित्रयेणाः ने कालकार बीजमूता । उपमा की साधना किव की समदृष्टित साधना है और इस साधना में जिसकी सिद्धि होती है वह है तौन्दर्य ।

अप्ययदी दित ने अपनी चित्रमीमांता में यहाँ तक कहा है कि उपमा ही वह नर्तकी है जो नाना प्रकार की अलंबार भूमिका में काट्यमंच पर अवतीर्ण हो कर बाट्य रक्षाों को आह्ला दित करती रहती है।

कवि उमापति दिवेदी विरिधत पारिजातहरणमहाकाव्यको देखने ते इति होता है कि उन्होंने प्रायः सभी प्रचलित अलंकारों का प्रयोग किया है। परन्तु अलंकारों का उतना अधिक महत्व नहीं दिया गया है और साथ ही अलंकारों के मेद्र- प्रमेद के भी वर्णन का प्रयोग नहीं किया है।

[।] साधर्मामुपमा मेदे - काट्य प्रकाश 10-7

² बाट्य प्रकाश -डाव्सत्यवृत्त सिंह पूर्व 336

उ काच्य प्रकाश - डा० सत्यव्रत सिंह पूर्व 336

⁴ उथमेका रेष्ट्रकी सम्प्राता चित्र भूमिका मेदान् । क्ष्रिक्यकी काट्यरंगे नृत्यन्ती तद्विद्याचेतः ।।"

⁻ चित्र मीमाँता पूछ 4। । 1965 ई0 ।

अनुपास - पारिजातहरणमहाकाच्य में कहीं - कहीं अनुपास का प्रयोग मिलता

है। वर्णों अर्थात व्यवंनों का जो सादृश्य है उसे अनुपास कहते हैं। अनुपास
का शब्दार्थ है रसा दिमिरनुमतः प्रकृष्टजासो न्यासः अर्थात इस प्रकार का शब्द ययन जिसके सदृश व्यंजनों का रस भावादि के अनुकृत ऐसा अव्यवहित विन्यास जो मनोरंजक लगे आश्रम यह हैं कि रस भावादि के अनुकृत वर्णों के प्रकृष्टवन्यास स्थापन को अनुपास कहते है ईअनु प्र + आसई पारिजातहरण महाकाव्य में कहीं - कहीं अनुपास का प्रयोग मिलता है -
पदे पदे स्थास्तु मिथो मनोहरी सदा रमेते सरती सरीवरी ।

"परिस्पुरन्मीन मनोहरेहागा क्षमे होगे । इस्त्यूकुलश्रीमलाः ।"

गृहे गृहे अत्याः प्रति गर्जनामहो महा -भटानां भुजतालजध्वनि । प्रतिध्वनद् गांब गृहामुक भवन् दिशो दशा पूर्व्य पराबुमूबति ।

[।] काट्य प्रकाश - नवम उल्लास

² ताहित्य दर्ण की वृति

उ पारिजातहरण महाकाच्य प्रथम तर्ग - 19

⁴ पारिजातहरण महाकाच्य प्रथम तर्ग - 204

⁵ पारिजातहरण महाकाच्य - प्रथम सर्ग - 29

उनेष अनंकार वहाँ स्वोता है वहाँ एक वाक्य में अनेक अर्थ अभिहित कुआ करते हैं। "एक अर्थ के बोधक शब्दों का अनेक अर्थ हो तो वह अनंकार उनेष्ठ है। "काट्य प्रकाश में कहा गया है उनेष्ठ वह अनंकार है जिसमें अर्थ-मेद के कारण परस्पर मिन्न भी शब्द उच्चारण सारूप्य के कारण एक रूप प्रतीत हुआ करते हैं। उनेष्ठ के मूल में जो बात छिपी है वह है - मिन्नार्थक शब्दों के पारस्परिक मेद की अप्रतीति, जिसका कारण है ऐसे शब्दों में, वणों की समान आनुपूर्वी होने से उच्चारण की समानता। आचार्य - मम्मट की उनेष्ठ परिमोधा आचार्य - रूद्रट की उनेष्ठ परिमोधा का अनुसरण करती है। रूद्रट ने उनेष्ठ का ऐसा ही स्वरूप निरूपण किया है --

"व क्तुं समयमये सुतिलहरा क्लिहरविविधपदसंधि। युगपदनेकं वा क्यं यत्र विधीयते त त्रलेहाः।।

> वर्ण-पद-र्लिंग-माडा-प्रकृति-प्रत्यय-विभवित अत्रायं मतिमद्विविधीयमानोइष्टया भवति ।।"

श्लेष कहते हैं परस्पर मिन्न-मिन्न अर्थ रखने वाले भी शब्दों में ऐक्र प्य अमेद की प्रतिति को जिसका "अर्थ मेदेन शब्द मेद : - यदि अर्थ मिन्न-मिन्न हैं तो शब्द भी मिन्न-मिन्न होंने उद्गुट-सिद्धान्त की दृष्टि से तो यह अभिप्राय है कि परस्पर मिन्न स्वरूप भी शब्द उच्चारण सारूप्य के कारण मिन्न-मिन्न न प्रतीत होकर एक से प्रतीत हुआ करें किन्तु इस दृष्टिट

[।] बाट्य प्रकाश - दशम उल्लास है।47 है

² काट्यप्रकाश - नवम उल्लास - 84

उ बाच्यालंबार - 4.1.2

ते इंजो कि वास्तविक दृष्टित है है कि काट्यमार्ग में स्वरादिमेद की कोई विवक्षा नहीं है क्यों कि ऐता होने ते इनेष्ठ-तौन्दर्य ही नष्टत हो जाएगा है इसका जो अभिप्राय है वह है भिन्नार्थक भी शब्दों में, एक प्रकार के उच्चारण के कारण उनके स्वरूप मेद के तिरोहित हो जाने का।

पारिजातहरणमहाकाच्य के कुछ श्लोकों को कवि उमायति ने श्लेडाबद्ध किया है।

निम्न दो इलोकों में युग्मक ते कवि ने शरदशतु और तत्यभामा के इलेख का बहुत ही सुन्दर वर्णन किया है --

हे प्रिये | इस समय "सम्प्रत्यपा सितधना न्थकृतिः प्रसन्ना" —
कोप रूप तम को हटाकर प्रसन्न हुई, धने अन्धकार को हटाकर निर्मल हुई,
"स्वच्छीकृता इिल्लाजाश्य जीवना च दुर्वृतिपंकपरिशो केणस्त्ययो घत्" — जड़ी मूत
अभिप्रायों को स्वच्छ कर दिखाती हुई दुः खावस्था रूप पंक को सुखा देने से
जिसके मार्ग शोभन हो मर हैं, बुरे दंग का पंक सुखा देने से जिसके मार्ग शोभन
हो गर हैं, "प्रभानना सरससारसरावरम्या" — खिनते कमल के समान मुख्याली
सारसहंतों के समान मधुर भाषिणी, रेसी खिनते कमल रूप मुख वाली सारसो
हंसों की बोल से रमणीय, "आशासुविस्फुरितवृत्तिरितस्त्वदर्थे यातुं शरद त्वमिव
मां प्रमुणीकरो ति" — आशाओं में विस्पुरण लिए तुम इस शरदभत के समान हमें
आकृमण धूंचढ़ाई के लिए प्रेरित कर रही हो, दिशाओं में स्फुरित सत्ता वाली
तुम जैसी यह शरद बतु तुम्हारे निमित्त यहाँ से हमें विजयसात्रा के लिए प्रेरित
कर रही है।"

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - नवमतर्ग - 51

कवि श्लेष के द्वारा वाग्देवता की तुलना शरद्शत ते कर रहे हैं --

"उपेता म्बरा" - उपेत अम्बर वाली, उपेत वस्त्र ते तजी, "र तित हंतगित प्रतन्ना" -- आर तित बोलते हुए हंतों की गित तंचार ते प्रतन्न, आल तित मन्द या तर्वथा आ ममान हंत है निजवाहन है की गित ते प्रतन्न, "शृंगारहार कुतुमोत्कर का म्यकान्तिः" -- शृंगारहार के पुष्प समूह ते मनोहर छटा वाली, शृंगारार्थ हार के पूलों ते मनोहर कान्ति वाली, उल्लातित-स्वतमया त्रित बन्धुमीवा" -- उल्लास ते विकतित कर रखा है अपने समय के आ त्रित बन्धुमीव दुपहरी के पूल जितने आनन्दित कर दिया है अपने तिद्वान्त के आ त्रित बन्धुमीं के जीवों को जितने ऐती वाग्देवता है तरस्वती देवी है के तमान हमारे आनन्दार्थ शरद्शतु उदित हो रही है।"

उपमा —

यह सभी साम्यमूनक अर्थालंकारों का बीजरूप है। जैसे एक ही नारी भिन्न-भिन्न परिधान पहनकर रंगमंच पर उपितथत होती रहती है और सहृदय दर्शकों का मनोरंजन करती है वैसे उपमा भी नाना अलंकारों का रूप धारण करके सहृदयों के चित्त को चमत्कृत करती है।

*एक वाक्य में दो पदार्थों के वैधर्म्यरहित, वाच्य ताहुश्य को उपमा

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - दशम सर्ग - 12

² उपमेका रैलूबी तंप्राप्ता चित्र भूमिका भेदान् । रज्जयति काव्यरेंगे नृत्यन्ती तदिदां चेतः ।।"

⁻धित्रमी मांसा

^{3 &}quot;ताम्यं वाच्यमवैधम्ये वाक्येक्य उपमाद्योः"-"ताहित्यदर्पण" में उपमा की परिभाषा

रूपकादि अर्लकारों में भी उपमान और उपमेय में साम्य विविधित है किन्तु वह साम्य व्यांग्य होता है। व्यक्तिरेक अर्लकार में वैधर्म्य भी कह दिया जाता है किन्तु उपमा में वैधर्म्य नहीं कहा जाता है। उपमेयोपमा में दो वाक्य होते हैं किन्तु उपमा में एक ही वाक्य होता है। अनन्वय अर्लकार में एक ही पदार्थ का सादृश्य निरूपित रहता है किन्तु उपमा में दो पदार्थ का सादृश्य निरूपित रहता है किन्तु उपमा में दो पदार्थ का सादृश्य निरूपित रहता है किन्तु उपमा में दो पदार्थ का सादृश्य निरूपित रहता है

तभी आलंबारिक अर्थालंबारों के निरूपण का प्रारम्म "उपमा" निरूपण से ही करते आ रहे हैं। इसका कारण उपमा का अनेकानेक अर्थालंबारों में मूलरूप से होना और काट्य सौन्दर्ध में विशेष्ट्रस्य सहायता पहुंचाना। "अर्लंबार - सर्वस्वकार" ने इसी लिए कहा है "उपमैद्यानेकप्रकार वै चित्र्येणाने- कालंबार बीजमूला।"

उपमा की साधना किव की समदृष्टित साधना है और इस साधना में जिसकी सिद्धि होती है वह है "सौन्दर्य" उपमा का यह महारहत्य है।

"अपमान" और "उपमेय" में ही हो तकता है और इतिषर उन्हीं दोनों अर्थात् उपमान और उपमेय का ही जो तमान धर्म ते तम्बन्ध है उते "उपमा" कहते हैं। उपमान और उपमेय का ही जो तमान धर्म ते तम्बन्ध है उते "उपमा" कहते हैं। उपमानकार के बार उपादान होते हैं -- उपमेय अपमान, ताधारणधर्म तथा उपमावाचक। शास्त्रीय शैंनी में इती बात को इत प्रकार कहा गया है --" उप तमीपेमीयते परिच्छियते हुउपमानेन अजी उपमेय कर्मह अनुधा इति उपमा।

[।] बाट्य प्रकाश - दशम उल्लास - 125

पारिजातहरण महाकाच्य में उपमा का तौन्दर्य देखिए --

" पुरीह सूत्रा दिविशेष्ट्य तिमद्धि विशेष्टर्मनु शाब्दिका यथा । प्रकल्पयन्ति प्रकलाः पटा दिकाननेकरूपानपि कारवोडनिशम् ।।

प्रति शलोक में उत्कृष्ट कला मर्मज्ञ शिल्पी मण उपमेय तथा व्याकरण के विदान उपमान तथा "प्रकल्पयन्ति" ताधारण धर्म तथा "यथा" वाचक शब्द है। अतः यहाँ उपमालंकार है।

"महोन्नतेच्छत्रपुष्णि प्रमाँ दितेः प्रतेव्यमाने ननु चामरैरिप । "गृहेड्त्र राज्ञीव वसन्नतंत्रसम्प्रताररी वेरिप तंग्रहीतरि ।।

प्रस्तुत श्लोक में "भगवान कृषण" उपमेय है, "राजा" उपमान है,
"संग्रहीत" साधारण धर्म है तथा "इव" वाचक शब्द है। अतः यहाँ उपमालंकार
है।

"कनककका कि कुथो प्यरन्म णिविभात डिविन्द्रधनुश्रुष्ठटा । धनधदेव यथा मदवर्षिणी करिघटा डिरिघटा विघटा कृतिः ।।"

[।] पारिजातहरण महाकाट्य - प्रथम तर्ग - 25

² पारिजातहरण महाकाट्य - प्रथम सर्ग - 51

उ पारिजातहरण महाकाच्य - तृतीय सर्ग - 10

प्रस्तुत श्लोक में "करिष्टा" उपमेय है, "धनधटा" उपमान है, "ययौ" साधारणं - धर्म है तथा "इव" वाचक शब्द है। प्रस्तुत श्लोक उपमा के सभी उपादानों से युक्त है।

हपक ---

उपमेय और उपमान का जो अमेद-अमेदारीय अथवा काल्पनिक अमेद है उसे रूपक अलंकार कहा जाता है।

रुपक शब्द का अर्थ हे -- "रूपयति एकतां नयती ति रूपक्म " अर्थात् एकता अथवा अमेद की प्रतीति का उत्पादन । साहित्यदर्पण में रूपक की परिभाष्मा इस प्रकार है -- "निरपह्याव अथांत निष्ट्रेयरहित विष्ट्रंय हुँउपमैय है में रूपित हुँ अपहृत मेद उपमान है के आरोप को रूपक अनंकार कहते हैं।"

पाइचात्य अलंबार - शास्त्र में रूपक भी रूपक की बड़ी महिमा गायी गई है।

पारिजातहरण महाकाच्य के निम्न इलोकों में रूपक अलंकार की छटा दिखाई पड़ती है --

- ताहित्यदर्पंग की परिभाषा

[।] बाट्य प्रवाश दशम उल्लात - 139

² क्षकं रूपितारोपो विषये निरपद्खें वे

"परिपाण द्वाचितरा नना विरलो हुव मूक्णा अप्यतौ । विश्वान तुम्तान्तरा भूगं भूतमम् विभावरी वभौ ।।"

प्रतृत श्लोक में "मुख" उपमेय में "चन्द्रमा " उपमान का, "आमूक्षण" उपमेय में "नक्षण" उपमान का तथा "सूर्य" उपमेय में "बाल" उपमान का आरोप किया गया है, अतः यहाँ रूपक अलंकार है ।

"राधालताक लितकल्पतरोत तवा छ
च्छायेव भिन्नकुसुमेछु धृतापरागा ।

मूर्ता छयेव विशवा हि सदा शिवस्य

कीर्णा तमो मया धिया थ ममानुरागै:।।

यहाँ पर "तिरंगा प्रवाह" उपमेय में त्रिवेणी उपमान का, "राधा" उपमेय में "लता" उपमान का तथा "श्रीकृष्ण" उपमेय में "कल्पतरू है उपमान का आरोप किया गया है अतः रूपक अलंकार है।

"पुष्पाभरा विकतितेन्द्रमुखी तरोज नेत्रा तिकाशह तिता तरतप्रतादा ।

प्रस्तुत श्लोक में पुष्प उपमेय में आभूषण उपमान का, चन्द्र उपमेय में मुख उपमान का तथा तरीज उपमेय में नेत्र उपमान का काल्पनिक अमेद हैं अतः यहाँ रूपक अलंकार है।

[।] पारिचातहरण महाकाच्य - दशम सर्ग - 22

^{2 &}quot;म्बेत् संभावनो त्प्रेक्षा प्रकृतस्य परात्मना"

⁻ ता हित्य दर्गण

उ बाट्य - प्रवाश - दशम उल्लास - 137

उत्प्रेक्षा —

किसी प्रस्तुत वस्तु ईउपमेय ई की अप्रस्तुत वस्तु ईउपमान ई के रूप में संभावना ही उत्प्रेक्षा है।

यह तम्मावना तभी अलंकार रूप होगी जब चमत्का रिणा होगी ।" उत्पेक्षा वह अलंकार है, जिसे पृकृत हुउपमेय हैं की उसके तमान अप्रकृत हुउपमानह के साथ तादातम्य – सम्भवना कहा करते हैं ।"

आचार्यं भामह तथा आचार्य-उद्भट का उत्प्रेक्षा निरूपण इस प्रकार है -"अविव क्षित्रसामान्या किंचिचोपमया तह ।
अतद्गुणक्रियायोगादुत्प्रेक्षा इतिशया निवता ।।"

और उद्भट के इस उत्पेक्षा समीक्षण अर्थात् —

"ता म्यरूपा विवक्षायां वाच्येवाद्यात्मभिः पदैः । अतद्गुण-क्रियायोगादुत्प्रेक्षाउति -ग्रमान्त्रिता ।। लोकातिकान्त विक्रमा मोवाभावा मिमानतः । तंभावनेयमुत्प्रेक्षाः"

पारिजातहरण महाकाच्य के निम्न श्लोकों में उत्पेक्षा निरूपण --

^{। &}quot;भवेत् संभावनो त्येक्षा प्रकृतस्य परात्मना " -साहित्य दर्पण

² बाव्य-प्रकाश - दशम उल्लास - 137

उ बाच्यालंबार - 2.90

⁴ काट्यालंकारसार मंग्रह - 3.3.4

"तडित्वती योद्ध्यमत्कृतायुधेरमन्द्रमंगल्यकदुन्दुमीध्वनिः । धृतेन्द्रचापा वलमीविशेषकैर्धनायते उसौ सधनारमवेशमभिः ॥

प्रस्तुत श्लोक में उपमेय "गृहपंक्तियों" की उपमान "मेघों" के रूप में सम्भावना की गई है, उपमेय "दुन्दिम्मियों की ध्वनि की " उपमान मेघों की गर्जना" के रूप में तथा उपमेय रंग-बिरंगे छज्जों की उपमान इन्द्र-धनुष्ठ के रूप में सम्भावना की गई है, अतः उत्प्रेक्षालंकार है।

"गगनाद धिमूमि भारकरादिव सन्त्रस्य निलेतुमागताः । तदुषागमशकितारिका इव निय्यान्त्य मिसारिकाः कति ।।"

इस श्लोक में उपमेय "ताराओं" की उपमान "अमिसारिकाओं" के रूप में सम्मावना की गई है अतः उत्प्रेक्षालंकार है।

"आनो हितै इचरणां चुमिरा च्चतां गा

च्यो मनीह विभूषभूतो निभूते भरानाः ।

कोडीकृत्यु दित्त विद्रुभयून्तगंगा –

अध्य दिध कम्बन इता म्युष्ट्य तं चरन्ति ।।"

[।] पारिचातहरण महाकाट्य - प्रथम सर्ग - 23

² पारिजातहरण महाबाच्य - द्वितीय सर्ग - 19

³ पारिचातहरण महाकाच्य - दशम तर्ग - 6

प्रस्तुत श्लोक में उपमेय "लालचरण वाँच" की उपमान "मूँग के डंठल" के रूप में तथा उपमेय एकान्त आकाश की उपमान "तमुद्र" के रूप में तथा हैत उपमेय की "शंख" उपमान के रूप में तम्भावना की गई है अतः उत्प्रेक्षालंकार है।

सन्देह --

"प्रकृत अर्थात् उपमेय में अन्य अर्थात् उपमान के तंत्रम को सन्देहलंकार कहते है। यह संशय कवि की प्रतिभा दारा उत्थित होना चाहिए अर्थात् वैचित्रवनक या चमत्कारोत्पादक संशय ही सन्देहालंकार कहलाता है।

"सतन्देह अलंकार वह है जितमें १उपमेय की उपमान के साथ एकरूपता में १ एक १साद्वायमूलका तंश्रय अथवा संदेह रहा करता है जो कि "मेदो क्ति" १उपमेय और उपमान में किसी वैधर्म्य के स्पष्ट कथना और मदो नुक्ति उपमेय और उपमान में किसी वैधर्म्य के अकथना दोनों प्रकार से सम्भव है।

पारिजातहरणमहाकाच्य के निम्न श्लोकों में तन्देह अर्लकार का निरूपण किया गया है --

"रोधारूणाँजन विभिन्न तिता त्रुधाराँ दुष्कान्त भारतभुवः किंमुवा प्रयोषे । इवेतप्रमान तितमान विभा तिभार्तं

सीमान्तसीमसुभमाभुत रागरेखाम् ।।"

^{। &}quot;तन्देहः प्रकृते उन्यन्स्य तंशयः प्रतिमो तिथतः" न्ताहित्य दर्पण

² बाट्य प्रबाश - दशम उल्लास - 138

³ पारिजातहरण महाकाट्य - पंधम तर्ग - 51

क्या । यह दुष्टों ते आकृत्त भारत भूमि की शेष्ठ ते अरूण तथा अंजन की कृष्ण का न्ति ते मिली श्वेत अश्रु की धारा है अथवा श्वेत भाल स्थल की प्रभा ते भातित केषापात के बीच माँग ते भरी तुभण तिन्दूर रूपराग की रेखा है। § अन्ततः यह कौन है इत बात का निश्चय नहीं हो पाता पलतः यह तन्देहालंकार है § ।

तिलप्रसूनान्तवरौ कृतिविचन्नवीनकृन्दाविलकुड्मला नि ।
 यदा वकोराविदमीयवक्तसुधाकरापीतसुधाकिरौ स्तः ।
 किंवा निमीणाँ रिनकणान् गिरन्तावसूत्रमुक्ताविलकिल्पनौवा ।।

क्या यह तिल कृतुम के पास बिहरता, नेत्र के आकार में भंतरे का जोड़ा है था यह दो चकोर हैं या निकली हुई आग की चिनमारियाँ बरसा रहे हैं अथवा बिना सूत की मोतियों की माला मूँथ रहे हैं, अन्ततः यह कौन है इसका निश्चय नहीं हो पाता पनतः यह सन्देह अनंकार है।

झान्तिमान —

" तादृश्य के कारण अन्य पदार्थ में अन्य पदार्थ में अन्य पदार्थ के निम्चयात्मक है मिथ्या है ज्ञान को मान्तिमान अनंकार कहते हैं। यह ज्ञान भी किया की प्रतिभा ते ही उत्थित होना चाहिए।"

[।] पारिचातहरण महाकांच्य - अब्दम तर्ग - 45,46

 ² ताम्यादत हिर्मेह्तदबुद्धि मानितमान प्रतिभो तिथाः ।
 —साहित्य दर्पण

पारिजातहरण महाकाच्य के निम्न श्लोकों में भ्रान्तिमास्य अलंकार का निरूपण किया है --

"वितायमानाम्बुशस्द्धनान्तरे प्रवृष्टमुक्ताकृति विन्दुलोनुपाः यदीयधारामृह्वितियन्त्रकं तमात्रयन्ते शिक्ष्यातकादयः ।।

प्रति श्लोक में मयूर आदि पक्षीगण को जनचादर अन्य पदार्थ में शरद्धन अजय पदार्थ में मिथ्याज्ञान हो रहा है तथा मोती के आकार की बूँदों इस अन्य पदार्थ में तथा धारागृहों अन्य सदार्थ में चातक को मिथ्या ज्ञान हो रहा है। अतः सादृश्य के कारण यहाँ मान्तिमान अलंकार है।

"विदूरतम्यातिकमेश्च दाड्रिमप्रवीणविमान्त शुकेषच तारतैः । विताववोधेराधिभारमाश्रिता तदेह तन्तृत्यति वारियन्त्रिका ।"

बहुत दूर से उँचाई से गिरने वाले जलकार \$3 ज्य पदार्थ में अनार के बीच \$3 ज्य पदार्थ का भूम ईमिथ्याज्ञान होने से शुक्र और उँचे तक उठी हुई धाराओं \$3 ज्य पदार्थ में कमल नाल \$3 ज्य पदार्थ का भूम ईमिथ्याज्ञान होने से सारस सदा इस फौट्यारे के पास बने रहते हैं। यह भूम सादृश्य के कारण ही है इस लिए प्रस्तुत शलोक में भ्रान्तिमान अलंकार है।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - प्रथम सर्ग - 16

² पारिजातहरण महाकाच्य - प्रथम तर्ग - 17

अर्थान्तरन्यात —

"अर्थान्तरस्य प्रस्तुतेतरार्थस्य न्यासस्थापनम् इति अर्थान्तरन्यासः ।"
जहाँ विशेष्ण से सामान्य अथवा समान्य से विशेष्ण तथा कारण से कार्य अथवा
कार्य से कारण साध्म्य के द्वारा अथवा वैध्म्य के द्वारा समर्थित होता हो वहाँ
अर्थान्तरन्यास अलंकार होता है । अर्थान्तरन्यास का तात्पर्य है साध्म्य रूप
समर्थन हेतु अथवा वैध्म्यीरूप समर्थन हेतु के द्वारा सामान्य का "विशेष्ण" से समर्थन

"तामान्यं वा विशेषों वा तदन्येन तमध्यति । यत्त्रु सोडर्थान्तरन्यासः साधम्येगितरेणवा ।।"

पारिजातहरण महाकाव्य के निम्न इलोकों में अर्थान्तरन्यात का निरूपण किया गया है --

तबहुगन्धनुगन्धा है: श्रमं

समपनुधहरे: प्रियतामगात् ।

व्यवहृतिः परिचाययति संगात्

प्रियजना न्यजना निर्संगतौ ।।

"अपने शीतल भिन्न-भिन्न गन्ध्वाली मनोहर वायु ते श्रम को दूर कर उस पर्वत ने भगवान के हृदय को आकर्षित कर लिया" इस विशेष्ट्र बात का तमासम होने पर "क्षण मात्र में प्रियजन तथा अन्य जन की पहचान व्यवहार ही करा देता है"

[।] काट्य प्रकाश - दशम उल्लात - 165

² पारिजातहरण महाकाच्य - तृतीय सर्ग - 40

इत तामान्य बात ते ताथम्यं के द्वारा तमर्थन हो रहा है, अतः प्रत्तुत इलोक में अर्थान्तरन्यात अर्वकार है।

"ईशवरत्वमधिगम्य विवेकों येन नाडर्ज्यतममेन जनेन । कि कृतं जनधिनाडतिभूतेन क्षारता यदि न हन्त हृता तत् ।।"

"पूर्ण प्रभुत्य प्राप्त करके भी जिसने विवेक का अर्जन नहीं किया ऐसे पुरुष्ठ से क्या लाभ है १ यदि समुद्र की क्षारता नहीं निकली तो वह भरा रहकर भी क्या किया ।"

प्रस्तुत श्लोक में पूर्वार्ध में एक सामान्य बात का प्रतिपादन किया है। उत्तरार्ध का वाक्यार्थ विशेष्ट्र रूप है जो उस पूर्वार्द्ध के सामान्य का साधर्म्य के दारा समर्थन करता है। अतः यहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

[।] पारिजातहरण महाकाट्य - स्कादश सर्ग - 66

"रत और भाव की अभिव्यक्ति"

"वाक्यं" रतात्मकं काट्यमिति" रतात्मक वाक्य ही काट्य होता है। दृश्य श्रद्य काट्य में रत ही प्रधान होता है। काट्य में जो लोकोत्तर आनन्द होता है वह रत के ही कारण होता है। रत वेदों में भी अनुभव किया जाता है भरत मुनि ने अपने नाट्य शास्त्र में प्रमाणित किया है - रतादार्थ्यणादापि है तैत्तरीयोपनव्द में रत की परिभाषा इत प्रकार दी गई है - "रतों वे तः। रत हयेवाँय लब्धादुद नन्दी भवतीति।

"रत्यते आत्वावते इति रतः यह रत की व्युत्पत्ति की गई हैइसका अर्थ यह है कि काव्यों में आत्वादन योग्य रत ही होता है रस को काव्य की आत्मा त्वीकार किया गया है। आचार्य विश्वनाथ के अनुसार —

"काष्यस्य शब्दाया शरीरम्, रसादिश्यातमा,

्मुषाः शौर्यादिवत्, दोषाः काणत्वादिवत्

ज्तयोष्ट्रवयवसंस्थानवत् अलंबारः कटककुण्डल दिवत् ।।

आचार्य मम्मट के अनुतार रत की परिमाध्या निम्न है - लोक में रति १९म१ आदि रूप भावों के ऐते भावों के जिन्हें अन्य मावों की अपेक्षा तथायी भाव माना जाया करता है, जो करण और कार्य और तहकारी कहे जाया करते है। वे ही जब काट्य अथ्वा नाटक में, कवि अथ्वा नाटककार द्वारा उपनिबद्ध हुआ करते है तब ये विभाव और अनुभाव और व्यम्बारिभाव कहे

[।] ताहित्य दर्गण - । परिच्छेद

² मरतमुनि का नाट्यशास्त्र

उ तैत्तरीयपानिषद

⁴ साहित्य दर्पण - मपरिच्छेद

जाया करते है । अब जिसे इस के रूप में त्मरण किया जाया करता है वह है इन्हीं विभावों अनुभावों और व्यक्तियारिभावों के द्वारा इंसहृदय-हृदय में इं अभिव्यक्ति वह इंरत्या दिरूप मांव जो इनिरन्तर अवित्यत रहने के कारण इंत्यायी भावा माना जाया करते हैं इक्यों कि लोक में रत्या दिरूप चित्र वृत्तियां न तो अभिव्यक्त होती है और न रस ही कही जाया करती है यह तो काव्य और नात्य की कला की महिमा है कि सहृदय सामा जिक के हृदय की ये सूक्ष्म सुप्त-सदा अवित्या इत्यादि रूप वृत्तियां उद्दुद हुआ करती है और जब उद्दुद हुआ करती है तो रस आनन्द रूप ही उद्दुद हुआ करती है।

आचार्य हेमचन्द्र के अनुसार :-

"विभावानुभावव्यभिग्नारिभिर्मित्यक्तः स्थायीमावो रतः 2 इस प्रकार काच्यानन्द का प्रधान रूप रसानुभूति है। किन्तु अलंकार वादी या चमत्कारवादी के लिए काच्यानन्द वह है जो चमत्कारजन्य होता है, जिसमें अलंकार आदि की प्रधानता होती है। आचार्यों ने काच्य रस के चार अव्यव माने है।

I. तथायी भाव §2§ विभाव §3§ अनुभाव §4§ तंचारी भाव

मोटे तौर पर हम उन्हें दो पक्षों में बॉट सकते हैं 11 आश्रय पक्ष \$2 शालम्बन पक्ष । द्वाय या श्रव्य काट्य में जिस पात्र के हृदय में रित इत्यादि कोई स्थायी भाव व्यंजित होता है वह पात्र उस भाव का आश्रय

[।] आचार्य मम्मट का काट्य प्रकाश - चतुर्थ उल्लास - 27-28

² बाट्यानुशासन - 2-1

कहा जाता है। हृदय में उस भाव की अनुभूति के समय आश्रय की जो येकटाएं होती है उन्हीं को अनुभाव कहते हैं तथा स्थायीभाव में उन्मरन-निमरन होने वाले अन्य सहभावों को सहचारी भाव कहा जाता है। इस प्रकार आश्रय पक्ष में स्थायी भाव अनुभाव सहचारी - भाव तीनों का अन्तर्भाव हो जाता है आलम्बन पक्ष में विभाव के दोनों पहलू आलम्बन तथा उददीपन आ जाते है। आश्रय का स्थायी भाव जिस पात्र या वस्तु के प्रति उद्बुद्ध हुआ है वह उसका आलम्बन है तथा उस पात्र या वस्तु की अवस्था येकटा या अन्य परिस्थितियां जिनके कारण आश्रय में वह भाव विशेष्य जागृत होता है, उददीपन के अन्तर्गत मिनी जाती है। आलम्बन सजीव या निर्जीव दोनों प्रकार के हो सकते है। उदाहरणार्थ करूण रस का आलम्बन जिस प्रकार बाल्मी कि के आश्रम में लक्ष्मण दारा परित्यक्त उन्मुक्त रोदन करने वाली सती सीता हो सकती है। उसी प्रकार राम के स्वर्गारोहरण के पश्चात् कुश द्वारा परित्यक्त उन्ही अयोध्या भी हो सकता है। इसमें आलम्बन सबसे प्रधान होता है। यदि आलम्बन का धिश्रण सफल हो गया तो रसोदबोध निश्चित हो जाता है।

कवि उमापति दिवेदी विरचित पारिजातहरण महाकाच्य महाभारत के समान शान्त रत प्रधान काच्य है। शेष्ट्र रत अंग रूप में आते हैं। पारिजातहरण महाकाच्य में स्थान – स्थान पर शान्तरत अथवा मितत भावना का फिला मितता है। हरि के यश का गान करना ही कवि का काच्य लिखने का मुख्य उददेश्य था। अतः उनके इत काच्य में रत का उतना अच्छा च्लिण

[।] रघुरंश - । 4 वां सर्व

² रघुवंश - 16 वा तर्ग

नहीं हो पाया है फिर भी जमह-जमह पर ईश्वर की भिक्त और जीवों के इस संसार में बार-बार जन्म लेने के और मरण के उदाहरण से ऐसा ज्ञात होता है कि यह काट्य शान्त रस प्रधान काट्य है। इनकी ट्यंजना में विभाव, अनुभाव तथा संचारियों की पूर्ण योजना करने का प्रयत्न नहीं किया गया है। कहीं केवल आलम्बन का चित्रण है तो कहीं केवल आश्रय का कहीं केवल अनुभाव का ही उल्लेख करके भाव ट्यंजना कर दी गई है इतने पर भी ट्यंजना बड़ी सफल हुई है।

किसी काट्य को पढ़ते पढ़ते उसके अनुशीलन से जो अनौ किक आनन्द की उपल किएं होती है उसे रस कहते हैं। इसमें रितमाय प्रधान होते हुए भी उत्साह, हास, विस्मय, जुगुप्सा, शोक कोध वात्सल्य आदि भावों की भी अवसरोपयुक्त मनोरम व्यंजना हुई है। महाकाट्य में प्रधान रस के अतिरिक्त अन्य रसों का भी समावेश किया जाता है। पारिजातहरण महाकाट्य का प्रधान रस तो शान्त रस है। इसके अतिरिक्त शृंगार, रौद्र, वीर आदि रस अंग रूप में इस काट्य में पातिवृत्य-भाव, भिक्त-भाव, वात्सल्य आदिभावों की सपल व्यंजना हुई है। इसके अतिरिक्त धर्म, अर्थ, काम, मोझ, चारों पुरुषार्थी में मोझरूप परम पुरुषार्थ की विशेष्ठ रूप से व्यंजना की गई है क्यों कि यह काट्य शान्त रस प्रधान काट्य है और मोझ रूप परम पुरुषार्थ से ही शान्त रस की प्राप्ति होती है।

" शान्त रतः '

आचार्य मम्मट के अनुसार "निर्वेदत्था यिमावो इति शान्तो आहि, नवमौरतः

[।] काट्यप्रकाश - चतुर्थ उल्लास - ४४

शान्त रस का स्थायी - भाव निर्वेद है तथा उद्दीपन-विभाव संसार की असारता है। धर्म, अर्थ, काम रूप पुरुष्टार्थ त्रितय की प्राप्ति के सम्बन्ध से जैसे श्रृंगारादि आठ रस माने जाया करते हैं वैसे ही मोक्ष रूप परम पुरुष्टार्थ की प्राप्ति की दृष्टित से शान्त रूप नवम रस की भी मान्यताकाच्य और नात्य के लिए परमावश्यक है।

तृष्णाओं का अर्थात विषया मिनाष्यों का क्ष्य अर्थात सभी ओर से निवृत्त रूप निर्वेद वही सुख-स्थायी भूत उसका जो आस्वादनीयता से उत्पन्न परिपोध वहीं जिसका नक्षण हो वह शान्त रस होता है।

विष्या मिलास से वारों और से निवृत्त हो जाना ही निर्वेद या वैराग्य कहलाता है। उस निर्वेद में एक अभूतपूर्व आनन्द आया करता है। यह निर्वेद रूप आनन्द ही शान्त रस का स्थायी भाव है, जब उसका परिपोध आस्वाद में हेतु हो जाता है तभी शान्त रस कहा जाता है। यही शान्त रस का नक्षण है सब चित्तवृत्तियों का प्रशम ही इसका स्थायी माना गया है।

शान्त एक सामान्य प्रकार प्राकृत चित्तवृति होती है और रित इत्यादि वैकृत चित्तवृत्तियां है, यही बात भरत मुनि ने कही है - अपने अपने निमित्त की प्राप्त कर शान्त से भाव प्रवृत्त होता है फिर निमित्त के अपाय में शान्त में ही प्रतीन होता है।

भरतमुनि का नाद्यशास्त्र- ष्ट्राठ अध्याय

[।] अभिनव भारती - शान्त रस प्रकरण - पृष्ठ 334

² स्वंस्वं निमित्तमासार्थशान्ताद्भावः प्रवति । पुनर्निमितापाये तुशान्त सर्वं प्रलीयते ।।

शान्तरत तभी रतों के मूल में रहता है। तभी रतों की शान्तावरथा ही शान्तरत कहलाती है अतः शान्तरत का स्थायी भाव वही चित्तवृत्ति होती है जिसमें किसी अन्य प्रकार की चित्तवृत्ति की विशेष्ट्रता का आविभाव न हुआ है।

शान्तरस की प्रतीति होती ही है कहने का आश्रय यह है कि विषयों से पूर्ण तृष्ति के बाद उनके परित्याग में उसी प्रकार का आनन्द आता है जिस प्रकार भोजन से तृष्त होने के बाद एक प्रकार के आनन्द का अनुभव होता है। यह तृष्ति जन्य आह्लाद सर्वजनानुभव सिद्ध है।

पारिजातहरण महाकाट्य महाभारत के तमान ही शान्त रत प्रधान काट्य है। महाभारत के पर्यवसान सभी के विनाश में होता है। वृष्ठिण वंश वाले इतने महान और संख्या में इतने अधिक है किन्तु अन्त में शाप से वे सब लड़कर ही समाप्त हो जाते हैं। महाभारत में पाण्डवों की कथा मुख्य है महाभारत जैसे महासंग्राम में अभूतपूर्व पराक्रम दिखांकर सभी शत्रुओं का संहार कर देते हैं। किन्तु अन्त में सभी पाण्डवों को हिमालय पथ की और जाना पड़ता है और अनेक वणनातीत विपत्तियों को सहते हुए हिमराशि में अपनी काया समाप्त कर देनी पड़ती है। उस युग पुरुष्ठ भगवान कृष्ण का ही क्या होता है, अन्त में एक बहे लिए के द्वारा मारे जाते है। सभी का कितना नीरस अन्त होता है।

[।] महाभारत । महाकवि व्यास

मानव कितना भी बढ़ जाए किन्तु अन्त में तमा प्रित नीरसता में ही होती है क्यों कि विशव की सभी वस्तुयें क्षणमंगुर होती है।

पारिजातहरण महाकाच्य के पंचम तर्ग में नारद के द्वारा मगवान कृष्ण की स्तुति शान्त रत का उदाहरण है।

"हे मुक्तिय अपनी शरीर पर रेंगते स्ट्वातिस्ट्व कीटां के समान संसार सारे जीवों को विशेष आत्था न होने के कारण जब तक आप उपेक्षित किए रहते हैं अर्थात उसकी ओर ध्यान नहीं देते तब तक ये संसार में आते जाते बन्धन में पड़े रहते हैं। जब कभी उनकी क्रियाओं या अपनी इच्छा से ही आपकी दृष्टिट के वे लक्ष्य बन जाते हैं तब बन्धन रहित मुक्त हो जाते हैं। यही उनका मोक्ष है।

प्रति श्लोक में स्थायी भाव निर्वेद है। आलम्बन जीव है, अनुभाव-विशेष आस्थावान होना है तथा उद्दीपन विभाव जीवों का मुक्त हो जाना है।

काट्य के छठे तर्ग में रूकिमणी के द्वारा कहा गया यह वचन ज्ञान्त रत का उदाहरण है :-

अपने पति से अनम सारे जबत को भी जो कुछ नहीं समझती ऐसी सतियों के लिए यह त्रिलोक आनन्मय हो उठता है क्यों कि यह मेद ही संसरण अर्थात विविध व्यवहारों वाला यह संसार है। इस बन्धन को तोड़कर ही प्राणी परम सुख भी मता है।

[।] पारिचातहरण महाकाच्य - पंचम सर्ग - 21

² पारिजातहरण महाकाव्य - क्रव्य तर्ग - 28

यहाँ स्थायी भाव निर्वेद है तथा आलम्बन प्राणी है। अनुभाव तारार के बन्धन को तोड़ना तथा उद्दीपन विभाव प्राणी को परम सुखं भोजना है।

पारिवातहरण महाकाट्य महामीरत के तमान शान्त रत प्रधान काट्य है। उसी प्रकार पुरुषार्थ निरूपण के विषय में भी महामारत के तमान ही इस काट्य में मोक्कर परम पुरुषार्थ की श्रेष्ठता बताई गई है।

महाभारत में कवि मम्बान व्यास को मुख्य रूप से यह कहना अमीकट है कि शान्त रस ही इस ग्रन्थ का अंगीरस है और मोक्ष ही परम पुरुषार्थ है। मुख्य कहने का आश्रम यह है कि गौण रूप में इसमें दूसरे रस भी विद्यमान है किन्तु उनका पर्यवसान शान्त रस में ही होता है। इसी प्रकार गौण रूप में इसमें धर्म, अर्थ और काम को भी पुरुषार्थ के रूप में प्रतिपादित किया गया है किन्तु परमपुरुषार्थ मोक्ष ही है। पुरुषार्थ निरूपण के विद्यम में महाभारत का यह शलोक प्रसिद्ध है -

" धर्मे वार्थे च कामै च माँ क्षे च मरतर्थम । यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्व्यचित् ।

पारिजातहरण महाकाच्य के प्रथम सर्ग में द्वारिका वर्णन में मोक्षक्य परम पुरकार्थ की व्यंजना हुई है।

[।] पारिजातहरण महाकाट्य - पैचम तर्ग - 21

दारिका को मोक्ष देने वाली सप्तपुरियों में मोक्षात्पादन में यह दारिका मुख्य दार है, इसलिए अना दिकाल से ही विदान इसे दारिका इस सत्य नाम से पुकारते हैं। इसमें रहने वाले के लिए आवश्यक नहीं है कि यहादि कार्यों एवं उत्कृष्ट उपासना दानादि सत्कर्म से ही कल्याणम्य प्लोपार्जन करें।

केवल यहाँ के निवास करने मात्र से ही लोकिक सुखों का उपमोग कर मानव आलोकि सुख की प्राप्ति कर लेता है।

इस भूगों के में अनन्त ऐश्वर्य सुख को देने वाली तथा परलों के में अक्ष्मपरमपद को पहुँचा देने वाली इस पुरी को देखते ही देवता लोग भी अपनी अमरता पर हुगा करते हुए यहाँ मनुष्य होने की कामना करते है। इस पुरी से दूर रहकर भी इसका केवल निरन्तर नाम लेने से सभी ऐश्चर्य प्राप्त होते है। इसके दर्शन से पापों की राशि भी विलीन हो जाती है तथा सेवन से मनुष्य संसार बन्धन से रहित हो मुक्ति का भागी हो जाता है।

मक्ति-भाव

पारिजातहरण महाकाच्य के कई तर्गों में भितत-भाव की बड़ी विश्वाद ट्यंजना हुई है। ईश्वर में ध्यान लगाने ते ही मन की शान्ति हो तकती है। अतः स्थान-स्थान पर मणवान की स्तुति का वर्णन इस काट्य में किया गया है।

[।] पारिजातहरण महाकाट्य - प्रथम सर्ग - 38, 39

² पारिचातहरण महाकाच्य - प्रथम सर्ग - 40, 41

काट्य के पंचमतर्ग में नारद के द्वारा भगवान कृष्ण की स्तृति की गई है। हे जमन्नाथ । आपने जो कहा तब तत्य है किन्तु इते तंतारी लोग ही ठीक कह तकते हैं। हे तंतार के तारने वाले । आपके दर्शन मात्र ते कृतार्थ होने वाले हमारे प्रति आपके द्वारा यह प्रयोग योग्य नहीं है। हे निरीह यह तम्बोधन पद ताभिग्रय है। तर्वथा पूर्ण होने ते निरीह की उपाधि तो आपकी ही हो तकती है। तर्वोत्तकृष्ट दिव्य अवतार धारण किए हुए अग्रप ऐता नर ता धारण ताध्य व्यवहार करते हुए अपने को छुपा क्यों रहे हो।

कार्य से कारण का अनुमान बताते हुए किंच कहते हैं - इस अनुमान से कारणी मूल आपकी हैं कृष्ण की हैं चेतनात्मक सत्ता की प्रतीति कैसे मिटाई जा सकती है। हे मण्यान जाति हुं जन्म हैं आ कृति किया मुणों से आपका कोई वर्णन नहीं कर सकता क्यों कि नित्य शुद्ध आत्मा के ये सभी असत्य उपाधिमात्र है।

तब लौ किक व्यवहार आपकी कृपा ते ही होते हैं - हे देव ! इत प्रकार छोटे - बड़े प्रमाण वाले तमय विभागों दारा घरों घरों या जन्म जन्मान्तरों में भूम ते ही बार-बार घूमते हुए हम तबों का यह आपका इत प्रकार का अनुमृह । इत रूप में दर्शन देना ही लाम है । अध्यन् आपकी ऐहिक लीला भी प्राकृतिक नियमों ते रहित तर्वथा स्वतन्त्र है अतः आपका तवांत्तर प्रमृत्य लौ किक व्यवहारों में भी छिप नहीं तकता ।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - पंचम सर्ग - 3

² पारिजातहरण महाकाट्य - पंचम सर्ग - 7

³ पारिजातहरण महाकाट्य - पंचम तर्म - 22

विभिन्न अवतारों का वर्णन करते हुए नारद मणवान कृष्ण की स्तुति कर रहे है --

आपने मछली होकर वेदों का उद्घार किया कछुआ हो पृथ्वी को पीठ पर धारण किया सूकर हो पृथ्वी को वैलाया सिंह बनकर हिरण्यकशिषु जैसे अजेय दैत्यों को मारा । कपट्यामन बन त्रिलोक को दो पम में ही नाप लिया । तपस्वी ब्राह्मण का अवतार धारण कर बहुत बढ़े हुए क्षत्रिय राजमण्डल को प्रमिथत किया । पिर स्वयं क्षत्रिय राम होकर अपने ही अवतार परशुराम को पराजित कर ब्राह्मण कुलोत्यन्न लोक विजयी दशमुख रावण को समूल उखाइ डाला ।

छत्र के समान पर्वत गोवर्द्धन को धारण किया ।

तू कितयों के वर्णन के दारा कवि उमापति ने अपने काट्य में मणवान कृष्ण की स्तृति की है -

हे हरे । आपके जिस प्रमाव को मेरे पिता, पितामह ब्रह्मा भी नहीं जान पाते, ऐसे आपके विध्य में यह मेरी पूर्वों कत गुणानुवादात्मक स्तुति रूप उक्ति भी असती अर्थात असमर्थ होने के कारण अनुधित है। क्या आंख निकल ब्राने पर भी चीटी कभी चन्द्रविम्ब को चूमती है।

पिर भी तुम्हारे क्षृक्षण के के महत्त्व को नाम गुणादि वर्णन न कहती हुई वाणी की उत्पत्ति ही व्यर्थ है वह वाणी अध्याली क्ष्मापिनी के अगस्य विषय में वाणी का प्रतार भी दूष्णित ही है। ऐसी दुः स्थिति में हे भगवान ।

[।] पारिचातहरण महाकाच्य - पंचम सर्व - 23

² पारिजातहरण महाकाट्य - पंचम तर्ग - 22

अब यहां तुम्हीं प्रमाण हो जो उचित समझो।

पारिजातहरण महाकाच्य के दादश तर्ग में गरूड़ के दारा मगवान कृष्ण की स्तुति की गई है गरूड़ भगवान कृष्ण ते कहता है – हे परमपूज्य वह मेरा शरीर और मेरा मन तुम्हारे चरण कमलों ते क्षण भर के लिए भी अलग नहीं है।

तू कित के द्वारा भगवान कृष्ण की गरूड़ के द्वारा स्तृति की गई है – हे निर्विकार ! तुम्हारी मानव के रूप में जो पद और जो चेष्टाएं है, वह हम लोगों भाव यह है कि अवतार रेशवर्ध अत्यन्त अनक्ष्य नहीं रहा, इतने पर भी यदि जीव अपने उद्धारार्थ आपकी शरण न आएं तो आपका क्या दोष्ठ है इसी प्रकार भगवान के अवतरों का रहस्य कवि ने अपने काट्य में बताया है ।

इस संसार का आदि कारण आप कृष्ण की असाधारण इच्छा ही बतलाई गई है - यह आकाशं जो ताराओं धनधदाओं सूर्य तथा चन्द्र मण्डल से मण्डित है यह आपकी ही इच्छा के परिणाम है । हे तदस्थ किसी भी वृत्ति में आस्था न रखने वाले आपके वह श्राकृतिक हैस्वाभाविक है विलास है । हे नाथ । हम सभी आपकी क्रीड़ा के साधन है । जिस प्रकार अनादि अनन्त काल के मीतर रहने वाले सभी किसी उपाधि विशेष्ठ से परिच्छिन्न करके वर्ष, श्रुतु मासप्का आदि से इसका व्यवहार करते हैं । किन्तु इसकी महत्ता को सही कोई जानता नहीं । उसी प्रकार उस काल स्वरूप आपके विषय में अपने व्यवहार को निभाने के लिए अपनी वाणी प्रस्तुत करने वाले हम भी अवासूय है अर्थात् अधिदेश के पात्र नहीं है ।

[।] पारिजातहरण महाकाट्य - पंचम तर्ग - 23

² पारिजातहरण महाकाच्य - पंचम सर्ग - 24

इत तम्मूणं विश्व का निर्माण करने वाले तथा इत वाब्मय जगत का विस्तार करने वाला एक ईरवर ही है, " इती को बताते हुए गरूड़ के दारा मगवान की स्तृति की गई है । नामों की पावन कथा ते विश्व वाब्मय जगत की सृदिट करने की इच्छा ते मानों रचना करते हो । प्रकृष्ट ज्ञान हुचैतन्यहूं दारा जड़ को परिमार्जित करता हुआ इत जड जगत को विभिन्न जन्मों में प्रकाशित करते हो अर्थात विभिन्न जन्म लेकर तुम इत संतार को प्रकाशित करते हो, यह व्यापक वाब्मय तुम्हारे गुण जाति तथा कर्म की गुद्धता ते प्राप्त है । हे अनन्त । प्रतिदिन नए जंगत का निर्माण करते हो । हे ईश्वर ! जैते तद और अमूर्त्त को विस्तृत करते हो वैते ही अकथनीय इत वाब्मय जगत को विस्तृत करते हो । सभी मनुष्य ईश्वर के अधीन है । " ईश्वर ते अलम मनुष्य को कोई अस्तित्व नहीं होता " इत प्रकार की स्तृति करता हुआ गरूड़ मगवान कृष्ण ते कहता है – पवित्र और अनिर्मल होने पर भी तमुद्ध ते अलग शरत्सरोवर तरोज तिहत सुशोभित होता है हे अनन्त । नूतनता के व्यापार ते नवीनता ही रमणीयता का आश्रय है ।

प्रकृति के पंचीकरण की पृक्रिया बताते हुए कि मणवान की स्तृति करके अपने दर्शन तम्बन्धी पाण्डित्य को बताते हुये ईश्वर के प्रति भितत को प्रकट करते हैं। क्रह मणवान श्रीकृष्टण की स्तृति करते हुये कहता है – हे अनधीश ! §अर्थात जो स्वयं ईश्वर है जिसका कोई ईश्वर नहीं है श्रु तुम्हारे श्रमणवान कृष्टण के है पंचीकरण से आकाशादि पंचम इस प्रपंच से उत्पन्न हुए है। अलग-अलग करके अद्भुत जगत अभिन्न होता हुआ भी देखने वालों में भेद पैदा करता है। दूर से गिरी हुई जल की बूँदे मिददी में, अनिल में या पृथ्वी में और कहीं लीन

[।] पारिजातहरण महाकाट्य - द्वादश सर्ग - 40

हो जाए किन्तु परमार्थतः वह पृथक नहीं है उसी प्रकार तुम एक ही इस जगत के रचयिता हो ।

तुम्हारा हुम्मवान कृष्ण का है परिचय अलग ही सज्जनों को प्रसन्न करता है और तुम्हारी प्रमृता प्रियता के कारण बहुत रुधिकर है अपने जन की रक्षा करने का जिसने वृत लिया है ऐसे ईश्वर आप अधीशवर की परतन्त्रता ही हम लोगों की स्वतन्त्रता है। अर्थात हम लोगों का अलग कोई अस्तित्व नहीं है।

दीपक से मगवान कृष्ण की उपमा देते हुए गरूड़ मगवान की स्तुति करता है -

विविध सन्धिमय वाइमय के द्वारा आज्ञान देवता आपका नाम लेते है। जैसे दीप दीपन की अपेक्षा नहीं रखता स्वयं ही प्रकाशित होता है और वस्तु को दृष्टिगोचर करता है अर्थात स्वयं प्रकाशित करता होकर वस्तु को दिखाता है उसी प्रकार तुम स्वयं प्रकाशित होते हो।

काट्य के अव्दादश सर्ग में भगवान कृष्ण स्वयं युद्ध की शान्ति के लिए भगवान शिव्य की स्तुति करते हैं। नर रूपी भगवान कृष्ण ने बहुत देर तक सदाशिव को ध्यान किया। भगवान ने बार्ण से बलपूर्वक पृथ्वी तल को भेद्रकर पाताल गंगा के जल को निकालकर मालूर पन में शंकर को स्थापित करके शिव्य की अर्थना की। दूसरे विधाता की मानो सुष्टिट उत्पन्न करते हुए से कृष्ण ने उमा

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - द्वादश तर्ग- 41-43

² पारिजातहरण महाकाच्य - द्वादश तर्ग - 53

उ पारिचातहरण महाबाव्य - दादरा सर्ग - 52

के साथ शंकर को ध्यान किया । इस प्रकार गददाधरों में कृष्ण ने मगदान की स्तुति की है । हे मगदान । इस विष्म स्थिति में हजारों सिद्धि के लिए प्रसन्न हो । जैसे कृष्ण भगवान शिव्य की स्तुति करते हुए कहते हैं – कि वास्तव में हमारे तुम्हारे में भेद्ध नहीं है जसे आकाश में अद्ध्य रहता है वैसे हमारे तुम्हारे में है तुम्हारे दारा उपे कित विष्म किन्हीं घटनाओं में, में सुघट दंग से सिद्धि के लिए हुआ हूँ अर्थात मेंने सिद्धि प्राप्त की है । तुम्हारी उपेक्षा दारा मेरी स्थिति सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में ओतप्रोत हो गई है । दिव्यता का पोष्ट्रण करने वाले आपकी आत्मा से युक्त हूँ । जन्म और मृत्यु के व्याज से इस शरीर को धारण कर रहा हूँ । तत्वत में तुमसे क्षण मर के लिए भी अलग नहीं हूँ ।

कृष्ण मगवान शिव को अपना प्रमु मानते हुये कहते हैं – हे अज । मेरी अजता तुम्हारे द्वारा अधिश्रित अन्तरता ते तिद्ध होती है मेरे पास कुछ भी ऐसा नहीं है जो तुम्हारा नहीं हैं। तुम्हीं मेरे प्रमु हो इसलिए अपने की तरह मेरी रक्षा करों।

मुझ कृष्ण के भीतर तुम हो और तुम्हारे भीतर यह तम्पूर्ण जगत है।
हे अनन्त भेरी प्रसिद्ध तमृद्धियां तुम्हारे अनुगृह से ही होने वाली है। ऐसा
तुम जानो तुम्हारा विव्वलिंग रूपी पिण्ड इस संसार में पहला पिण्ड है उसके
बाद विविध अंगों वाले हम इस संसार में विस्तृत हुये। संहार काल में
निराश्रय का पद तुम्ही हो। जगत में रोग, दाहिद्धय आदि का अभाव

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - अष्टादश सर्ग - 9

² पारिजातहरण महाकाच्य - अष्टाद्मां सर्ग - 10

³ पारिजातहरण महाकाच्य - अब्दादश सर्ग - 12

तुम्बारी ही कृपा से हैं। तुमसे उपेक्षित संसार की गति विद्यम बन जाती है। हे ईशा। मुझ पर अनुमूह करो। मेरा मन तुमको ही आश्रय बना रहा है। हे देव। अपनी विगुणता का त्याग कर गुणवान बनो अर्थात सत्व रजस तमस को धारण करो। अनुकूत बनाने वाले मेद्र को धारण करो।

काट्य के विंदा तर्ग में मुनि नारद के द्वारा नारायण की स्तृति की गई है
" है अनन्त ! तुमको नमस्कार हो । तुम सत्व, रजस, तमस गुणों में रहने वाले
हो । हम लोगों के रक्षक हो । संसार के आश्रय हो । दुर्लक्ष्य होते हुए भी
भक्त के आत्ममाद के अनुकूल किया कर्म के लिए तुम स्वतन्त्र हो ।

मणवान के विभिन्न अवतारों का रहस्य बताते हुये मुनि नारद उनकी स्तुति कर रहे हैं - गदा, पद्म, शंह, चक्र, से मीना दि अनेक अवतारों से क्रीड़ा करने के लिए न दिखाई देने वाले भी दिखाई पड़ने वाले दृश्य स्वरूप होते हुए भी बान के धाम के रूप में तुम्हारी आत्मा होती है तुम्हे नमस्कार हो । शेष्ट्राम के पन्न पर श्यन है जिसका, अपनी नाभि से उत्पन्न कमल, कमल से उत्पन्न ब्रह्मा, ब्रह्मा से उत्पन्न जो तेज है, वह तेज तुम्हारा है "अनवस्था १ पृथ्वी में भुष्ट्रमा, बाद आदि! रूपी गृह से ग्रस्त भू-भार की धारा के लिए कूर्मांवतार धारण करने वाले माया के तुम आश्रय हो ।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - अष्टादश सर्ग - 15

² पारिजातहरण महाकाच्य - विश तर्य - 29

³ पारिजातहरण महाकाच्य - विदा तर्ग - 31

यह तम्पूर्ण विशव ईववर की आत्मा है। ईत ईश्वर को भक्ति ते जाना जाता है -

"तभी प्रमाणों का अतिकृमण करने वाले प्रमिति का आश्रय होते हुए भी भिक्ति से जानने योग्य तुम सबको शरण देते हो । सुर के शमुओं के तमुदाय को अपने यक से नाश करने वाले तुम्ही हो । ब्राह्मण देवता के दुःख का नाश करने वाले तुमको नमस्कार है ।

ईशवर की भिक्त करने वाले मनुष्यों के लिए स्वयं भगवान कृष्ण कहते है-मेरी स्तुति पढ़ने वालों का अभय निश्चित होता है।

इस प्रकार कवि उमापति ने अपने पारिजातहरण महाकाट्य में तथान-तथान पर भगवान की त्तृति का वर्णन करके भक्ति भाव की बड़ी विश्वद अभिट्यंजना प्रस्तुत की है।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - विंश सर्ग - 33

² पारिजातहरण महाकाच्य - विंश तर्ग - 35

श्वंगार - रस

पारिजातहरण महाकाच्य में श्रुमार रस का अंग रूप में वर्णन हुआ है।
महाकाच्यों में प्रधान रस के अतिरिक्त अन्य रसों को भी गौण रूप में रखने का
नियम रखा गया है। क्यों कि जीवन में तदा रक ही रस या भाव नहीं बना
रहता है कभी हास-परिहास है तो कभी रोदन विलाप, कभी उत्साह है, तो
कभी अपार शौकावेग, कभी वात्सल्य की सरस धारा बहती है, तो कभी कोध
का प्रचण्ड-ताण्डव दखने को मिलता है। इस बहुरंगी रूप में ही जीवन का
स्वारस्य है। अतः काच्यों में अनेक रसों की उपस्थित उधित और स्वाभाविक
ही समझ पड़ती है।

शृंगार रत का स्थायी भाव रित है। इतमें स्त्री पुरुष के प्रेम का वर्णन होता है। जब स्त्री पुरुष में वियोग नहीं होता और दोनों बातचीत के बादि के दारा संयोग का अनुभव करते हैं तब संयोग शृंगार और जब दोनों में वियोग होता है तो विप्रलम्भ शृंगार होता है। काव्य के दितीय सर्ग में उद्धृत विप्रलम्भ शृंगार का उदाहरण प्रस्तुत है –

नायक - प्रिये तुम्हारा यह मुख मण्डल उदात क्यों है १ नायिका - चन्द्रमा के अन्तिम आशा १दिशा१ में डूब जाने ते १भाव यह है कि तुम्हारे द्वारा अन्तिम आशा के मंग हो जाने ते।

[।] अंगा निसर्वेड्रिप रसा : ।। "साहित्यदर्पण 6/3/178

नायक - प्रिये । चन्द्रमा तो पिर नूतन रूप धारण करके उदित होगा १ अर्थात् अब ऐसा नहीं होगा १ नायिका - जो गया वह उसी रूप में नहीं नौटता।

यहाँ तथायी माव "रित" है। आश्रय-नायिका है क्यों कि रितमाव नायिका के ही मन में जामृत हुआ है। आलम्बन नायक है क्यों कि आश्रय नायिका का तथायी भाव रित नायक के प्रति उद्बुद्ध हुआ है, अतः वह उसका आलम्बन है। उद्दीपन विभाव नायक का उसी रूप में न लौटना है क्यों कि इसी कारण नायिका आश्रय में रित माव जामृत होता है।

काट्य के प्रथम तर्ग में तथा ग शृगार का वर्णन मिलता है । द्वारिकापुरी में तथा मनोहर बावड़ी और तरोवर, नायक और नायिका की मांति परस्पर रमण करने ते प्रतीत होते हैं।

"इत इच्छानुतार बहने वाली वायु के आधात से धुब्ध हुए इन जलाशयों में जल की तरिंग उठती हैं, उन्हीं के ब्याज से मानों उन नायक ना यिकाओं के अन्तः करण में बढ़े हुए काम विकार के कारण इसकी लहरें उठ रही हैं। सारत पक्षी के बलरव के बहाने वे रतमम्न प्रेमी मानों एकान्त वार्तालाप सा कर रहे हैं। प्रपुल्ल पंकजों के रूप में उनके वंचल नेत्र ही कटाध्मात आदि की वेष्टाओं में निरत है, अमरों के मुंजारत के व्याज से उन मधुमत र सिकों के अमर्यादित या असंबद्ध प्रेमालाप ही विरकाल तक श्रवण मोचर होते हैं।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - दितीय तर्ग - 15

² पारिजातहरण महाकाच्य - प्रथम सर्ग - 18

उ पारिजातहरण महाबाट्य - प्रथम तर्ग - 18, 19

यहाँ स्थायीमाव रति है। आश्रय रतमन्न व्रेमी है। आतम्बन नायक नायिकाहै क्यों कि आश्रय का स्थायी माव रति नायक का नायिका के प्रति उद्दुद्ध हुआ है। उद्दीपन विभाव जलाइक्यों में जल की तर्ने एकान्त, स्थान आदि हैं क्यों कि इसी कारण रतमन्न प्रेमी के हृदय में रति माव जागृत होता है।

पातिवृत्य-भाव

पारिजातहरण महाकाट्य के काठ तर्ग में पातिवृत्य भाव की बड़ी विश्वद्य व्यंजना हुई है। पातिवृत्य भी प्रेम ही है - पूज्यत्व भावना मिश्रित दाम्पत्य प्रेम । उत्तमें प्रिय के प्रति रित के ताथ पूज्य होने की भावना भी रहती है। वह पूज्य भाव धर्मानुप्राणित रहता है। वह प्रिय की महत्ता के तामने किती को नहीं मानता प्रिय की महत्ता में अपनी आत्मीयता निहित होने ते उत्तमें मर्व भी रहता है।

पारिचातहरण महाकाट्य के प्रथम सर्ग में दासी आकर भगदान कृष्ण से कहती है - आपकी एकमात्र उपासना ही जिसे इष्ट है ऐसी अपनी प्रियतमा सती रूक्मिणी को अपनी अनुमति दे अनुमहीत करें। क्यों कि सती रूक्मिणी आपकी कृपा के परोक्ष कृष्ठ भी नहीं करना चाहती हैं।

काट्य में नारद का रूकिंगणी के साथ जो संवाद है, उसमें पातिद्वत्य की उच्चकोटि की व्यंजना हुई है। अन्य स्त्री के अनादर रूप भाववाली रूकिंगणी की प्रांसामयी नारद की वाणी सुनकर रूकिंगणी जी भी इस हुंकूटणह के महत्त्व का

[।] पारिजातहरण महाकाच्य -प्रथम तर्ग - 62

वर्णन करते हुये यों बोल उठी - हे मुने ! इस मगवान कृष्ण की तेविका हूँ इससे बढ़कर मेरे सौभाग्य की सूचना दूसरी क्या है ।

स्विमणी किस दूदता के साथ अपने प्रेम एक निष्ठा का परिचय देती हैयदि भगवान के चरण कमलों की सेवा का अवसर मुझे प्राप्त है तो पृथ्वी तल में
जन्म लेकर भी में इस पुष्प की तो बात ही क्या है सारे देव सौराज्य को भी
तृण के समान तृच्छ मानती हूँ। सारे विश्व सुख को भी मात करने वाले पति
के चरण प्रक्षालन जल से अपने को कृतार्थ माने वाली एवं पति को ही देवता
समझने वाली ऐसी कौन प्रतिव्रता स्त्री होगी जो रेसे पुष्पादि रूप तुमाने वाले
विषयों पर इच्छा प्रमट करेंगी।

सितयों को अपने पति को प्रसन्न करने के अतिरिक्त और कुछ भी
अभीष्ट नहीं है। वह जिस वस्तु को पति की हित कर सक्काती हैं, उसी की
चाह प्रकट करती है अन्यथा पति रूप ईश्वर की सेविका उस स्त्री के लिए संसार
की सारी प्रिय वस्तुयें अहितकर हैं। आपने पति से अलग सारे जगत् या जगदीश
को भी जो कुछ नहीं समझतीं ऐसी सितयों के लिये यह त्रिलोक आनन्दमय हो
उठता है।

सतीधर्म का निरूपण करते हुये रू किमणी, नारद से कहती है - जो आधे हंग भी कभी जिसके अनुराग से रहित हो नहीं रहती तथा जिससे अलग हो जीती हुई भी जो मरी सी रहती जिसके लिए ही, जो सारी अभिनाधाओं को पैलाती

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - षठ सर्ग - 21

² पारिजातहरण महाकाच्य - ब्रुट सर्ग - 23, 24

है उसकी वही दियता श्रृष्टियत्त्री है तथा वही उस दियता का भी कोई प्रधान वस्तु है अर्थात उससे भिन्न कुछ नहीं है।

करुण - रस

शोक अथवा दुख की दशाओं के वर्णन में करूण रस होता है। करूण रस का स्थायी माव शोक है। जिसके हृदय में शोक का भाव जागृत हो, वह आश्रय है।

पारिजातहरण महाकाट्य के नवम सर्ग में एक से बाइस इलोकों में "सत्यमामा के दुःख में करूण रस की मनोरम अभिव्यक्ति हुई है।

पारिजातक के पुष्पदान से वर्द्धित मगवान के लिए अपने को अत्यन्त कटु, कि तिमणी के सम्मनातिशय को सखी के मुख से सुनकर सत्यभामा का मानस, को ध से मर गया सरस हृदय वाले शृंगार समुद्र के पारंगत मगवान कृष्ण उस मृगाशी सत्यभामा को इस प्रकार नई रीति से मनाते हुए, आंखे उसके पांचों पर चढ़ाकर झुकाना चाहते थे। धीर खुद्धि वाली सत्यभामा उदासीन सी बनी हुई यों बोल उठी। हे नाथ। जिस पर आपके प्रेम का रंग चढ़ चुका है एवं देव िर्ध नारद के लिए पारिजात पुष्प को आपसे प्राप्त कर जिसका महत्व आज बढ़ गया है ऐसी कि तिमणी के रहते और किसी बेचारी को आपके प्रीति प्रमाण सहन करने का सीमाग्य कहां है।

[।] पारिजातहरण महाकाट्य - घठ तर्ग - 32

² पारिजातहरण महाकाच्य - नवम तर्ग - 2

यहाँ पर स्थायी भाव सत्यभामा का शोक है आश्रय सत्यभामा है क्यों कि शोक सत्यभामा के हृदय में हो रहा है। आलम्बन कृष्ण है क्यों कि आश्रय सत्यभामा का स्थायी भाव शोक कृष्ण के प्रति उद्बद्ध हुआ है अतः वह उसका आलम्बन है। कृष्ण पर रूकिमणी के प्रेम का रंग चढ़ना तथा कृष्ण पारिजात पुष्प को रूकिमणी को देना आदि उद्दीपन विभाव है क्यों कि इसी कारण सत्यभामा आश्रय में शोकभाव जागृत हुआ है।

तत्यमामा कृष्ण ते कहती है आप जाँच दूतरे के आदर न तहने के कारण उत्पन्न कोध वाली रूकिमणी को भी मेरे तमान दुखिनी न बनारें और भी "हा कष्ट है। यदि दया या लज्जा अथा म्य या प्रेम की स्वच्छ पवित्र परिपाटी आप को रोकती तो क्या जगत में अतुलनीय सुनी जाती राधा विद्यम विरह कष्ट आज तक तहती ही रहती। यहां आश्रय राधा है क्यों कि शोक राधा के हृदय में जागृत हुआ है स्थायी भाव राधा का शोक है आलम्बन कृष्ण है क्यों किराधा का शोक कृष्ण के प्रति उदबद हुआ है।

यह आप कृष्ण की अच्छी प्रीति वाली जो मनाने की रीति है मैं तो समझती हूँ किसी छिपे गुण प्रपंच को लक्ष्य कर यह आपकी धूर्तता ही है। मेरे प्रति हैं किसी छिपे गुण प्रपंच को लक्ष्य कर यह आपकी धूर्तता ही है। मेरे प्रति हैं तिरस्वामा के प्रति किया गया आप है कृष्ण का व्यवहार है उससे तो तिरस्कार ही लक्षित होता है। इस प्रकार सत्यमामा अपने दुःख को प्रकट करते हुवे कहती है – हे नाथ । यदि हत्यारे देव ने हमारे मेले माग्य भी व्यर्थ नहीं बना दिए होते तो क्या १ समान धर्मा मीष्ठमक सुता लिक्मणी के द्वारा आपसे तिरस्कार पाती । इस प्रकार व्यंग्य वचनों की रचना से चित्त पर

[।] पारिजातहरण महाकाट्य - नवम सर्ग - 15

² पारिचातहरण महाकाच्य - नवम सर्ग - 21

चढ़ी एका ग्रता ते विलास रस को भुनाकर करूण रस का प्रदर्शन करती हुई सत्यमामा ने दोनों आहे आंसुओं से भर ली।

यहाँ स्थायी मांच तत्यमामा का शोक है आश्रय तत्यमामा है क्यों कि शांक तत्यमामा के हृदय में हो रहा है तथा आलम्बन् कृष्ण है क्यों कि आश्रय तत्यमामा का स्थायी भाव शोक कृष्ण के प्रति उद्दुद्ध हुआ है। अतः वह उत्तका आलम्बन है।

दैव के द्वारा भने भाग्य को व्यर्थ बना देना उद्दीपन विभाव है क्यों कि इसी कारण सत्यभामा आश्रय में शोक-भाव जामृत होता है। आंखों में आंसुओं का भर जाना अनुभाव है क्यों कि स्थायी भाव शोक के समय आश्रय सत्यभामा की ये बेटटा है।

रौद्र-रत

कोधकी मुद्रा में रौद्र रस होता है। इसका स्थायी भाव क्रोध है।

कवि उमापति विरचित पारिजात-हरण महाकाच्य के सातवें और आठवें सर्ग में सत्यमामा के क्रोध में रौद्र रस की अभिन्य क्ति हुई है।

पारिजात के पुरुपदान से वर्द्धित भगवान के किए अपने को अत्यन्त कटूँ रूकिमगी के सम्मानातिशय को सखी के मुख से सुनकर सत्यभामा का मानस

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - नवम सर्ग - 22

मान ते बूँकोध ते बूँ भर गया । क्रोध की मर्मी ते भरी तूर्य के प्रचण्ड ताप ते तथी दिवस की प्रभा के समान उस सत्यभामा को मुनिवर नारद ने देखा । क्रोध से लाल सत्यभामा प्रदोध की रक्तप्रभाव से अनुरंजित आकाश भूमि सी भीष्मदीख पड़ रही थी । क्लेश में पड़ी सी, विलास रहित उस सत्यभामा को देखकर मुनि नारद ने उनकी उदासी का कारण पूछा । तत्पश्चात् सत्यभामा ने अपने क्रोध भाव को प्रकट करते हुए नारद से कहा – " हे मुने । तिरस्कार ही जिनके अन्त में फलित होता है ऐसे मेरी बूँसत्यभामा की बूँ प्रशंसा के लिए प्रयुक्त अपने वचनों से अब अधिक मत दुःखाइए । आपके प्रिय कृष्ण में जो आदर भाव था, वह आज मेरा भूम सिद्ध हुआ ।

यहाँ पर तथायी भाव तत्यमामा का "क्रोध" है। आश्रय तत्यमामा है क्यों कि क्रोध तत्यमामा के हृदय में जागृत हुआ है। आलम्बन कृष्ण है क्यों कि आश्रय तत्यमामा का तथायी भाव क्रोध कृष्ण के प्रति उद्बुद्ध हुआ है अतः वह उत्तका आलम्बन है। "मुनि नारद का तत्यमामा के लिए प्रयुक्त वयन" उद्दीपन विभाव है क्यों कि इती कारण तत्यमामा आश्रम में क्रोध माव जागृत होता है।

"तारे विषयों को छोड़, इन पर ही अपने को न्योछावर करने वाली है, मुण, शील, चतुरता आदि से तारे जगत में जिससे बढ़कर दूसरी नहीं है, ऐसी वह राधिका इनके हुकूछण के हैं ऐम पद्धति के मुणों को जानती है। उसे कुल कलंकिनी बनाकर भी आज तक नहीं पूंछते।"

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - तप्तम तर्ग - 30

² पारिजातहरण महाकाच्य - सप्तम सर्ग - 34

यहाँ पर तथायी भाव कोध है। आत्रय राधा है। क्यों कि है कोध है
राधा के हृदय में जागृत हो रहा है। आतम्बन कृष्ण हैं क्यों किराधा का
कोध कृष्ण के पृति है। "राधा का कोध कृष्ण के पृति है। "राधा को कृत
कर्ल किनी बनाना" उद्दीपन विभाव है, क्यों कि इती कारण "राधा" आत्रय
में कोध भाव जागृत होता है। तत्यमंगा मुनि के पृति कोध भाव को प्रकट
करते हुए कहती है - " हे मुने। पित के परम अनुराग रूप भाग को पाने वाली
रू किमणी की ही आप प्रशंसा करे, जो आपके उपहार रूप दिए तमल कामना
पूरक पारिजात का पूल पाकर तौभाग्य रूप तेज में पूली नहीं तमाती है।

यहाँ स्थायी भाव को ध है, आश्रम-सत्यभामा है। आलम्बन नारद है क्यों कि आश्रय सत्यभामा का स्थायी भाव को ध नारद के प्रति उद्दुद हुआ है अतः वह उसका आलम्बन है। "नारद का रूकिमणी को उपहार रूप में पारिजात का पूल देना " - उद्दीपन विभाव है क्यों कि इसी कारण सत्यभामा आश्रय में को ध भाव जामृत हुआ है।

तत्यभामा के रौद्र रत की ओर भी व्यंजना देखिये: - जो एक स्वयंवर विशेष्ठ से अपने ही द्वारा बलात्कार से हर लाई गई है, वही उन्हें प्रिय होगी। हम १तत्यभामा १ जैती माता पिता से दान स्वरूप दी गई, भोग की साधन, मुण रहित स्त्रियों में इनका १कृष्ण का १ अनुराग क्यों कर होगा।"

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - सप्तम सर्ग - 41

² पारिजातहरण महाकाट्य - तप्तम तर्ग - 42

यहाँ स्थायी भाव तत्यमामा का क्रोध है। आश्रय तत्यमामा है क्यों कि
स्थायी भाव क्रोध तत्यमामा के हृदय में उद्बुद्ध हो रहा है। आलम्बन कृष्ण
है क्यों कि आश्रय तत्यमामा का स्थायी भाव क्रोध कृष्ण के प्रति उद्बुद्ध हुआ है,
अतः वह उत्तका आलम्बन है। "कि किमणी का कृष्ण के लिए प्रिय होना "
उद्दीपन विभाव है क्यों कि इती कारण तत्यमामा आश्रय में क्रोध-माव जागृत
होता है।

पारिजातहरण महाकाट्य के आठवें तर्ग में भी तत्य भामा के क्रोध-माव की अत्यन्त सुन्दर व्यजनों हुई है।

दरवाजे के पात छिपकर मगवान कृष्ण अपनी प्रियतमा सत्यभामा की किला स्थिति को देखने लगे। जिस सत्यभामा के अधिक कुलिस्छवात के कारण काँपते हृदय पर कमल कोष्य के समान वृक्षोजयुग्न जोरों में हिल रहे थे। वह सत्यभामा क्रोध युक्त देदी मौहों से युक्त मुख को धारण किए हुए दीख रही थी। बद्दे रोष्य के संसर्ग से लाल हुए मनोहर शरीर को धारण कर रही थी। सत्यमामा क्रोध से माँहे तान कर कठोर शब्दों में उन १कृष्ण को १ कुछ उनटी सीधी सुना रही थी।

तत्यमामा क्रुद्ध तर्पिणी की भांति लम्बी-लम्बी भयंकर तार्ते ले रही थी तथा कार्पते हृदय पर भुजपंजर बांध कर लम्बी उतारि ले रही थी । तब तक चारों और मेघ की छटा ती प्रभा पैलाते हुये उन कृष्ण ने सत्यमामा के अर्न्तगृह में प्रवेश किया ।

"बुद्धिमती सत्यमामा, जिनके हैक्टण केहैं आने की कोई सम्मावना तत्काल नहीं थी ऐसे अपने प्राण बल्लभ को सामने देख क्रोध के आवेश में कर्तव्यक्षान हिथर न होने से अम्युत्थान के लिए न उठ सकी, न पड़ी ही रही। यहाँ स्थायी
भाव सत्यमामा का क्रोध के आश्रय सत्यमामा है तथा आलम्बन कृष्ण है क्यों कि
सत्यमामा का क्रोध कृष्ण के प्रति उद्बुद्ध हुआ है, अतः वह उसका आलम्बन है"
अम्युत्थान के लिए न उठना और पड़े रहना" यह अनुमाव है क्यों कि क्रोध भाव
के समय आश्रय सत्यमामा की ये घेष्टाएँ हैं। पारिजातहरण महाकाच्य के विंशसर्ग
में असुर के प्रति मनवान कृष्ण के क्रोध में रौद्र-रस की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

"माता आदिति के कुण्डल मौमातुर - हर लेग्या है" ऐता प्रवचन करने वाले महर्षि करयप के कहने पर आवेश सहित जिस कुष्ण के शरीर में लोममंक्तियाँ प्रकट हो गई हैं। दिखाई पड़ने वाले रक्त वर्ण की कान्ति से युक्त शरीर वाले भगवान श्रीकृष्ण में अम्ल सहित पाकमधुर रस ने हुआं तूह ने प्रवेश किया।

"आर्द्र के कारण अभिनव हो जाने पर तोचते हुए पतीने ते मण्डित इस विष्णु की पैनी हुई औँ बढ़े हुए कोध ते कतेली और रक्त वर्ण की हो गई है।"

यहाँ स्थायी भाव-कोध है और आश्रय मणवान कृष्ण हैं क्यों कि क्रोध भगवान के हृदय में जागृत हो रहा है। आलम्बन राक्ष्स है क्यों कि आश्रम भगवान का कोध राक्ष्स के प्रति उद्दुद हुआ है अतः वह उसका आलम्बन है। "पैनी हुई आंखे" इत्यादि अनुभाव है। क्यों कि क्रोध भाव के समय आश्रय कृष्ण की ये केष्टाएं हैं। उद्दीपन विभाव-भौमासुर राक्ष्स का कृष्डलों को हर नेना है क्यों कि इसी कारण भगवान का कोध उद्दुद हुआ है।

[।] पारिचातहरण महाकाच्य - अब्दम सर्व - 29

² पारिजातहरण महाकाच्य - विश तर्ग - 23

"शृंकोंध के कारण शाविन्त को न प्राप्त हुई उन भगवान कृष्टण की भुजाएं पहण्हाने लगी । इन्द्र के शहु उस राक्ष्स को मारने के लिए उनका चक्र नाचने लगा । अगर यह असुर मेरे द्वारा शृंकृष्टण के द्वारा श्रे नहीं मारा गया तो आपके मौन रहते हुए भी आज से हे तात् । तुम्हारे भीतर विष्णाद के होते हुए भी काश्यपी का पुत्र में कृष्टण कहाँ खड़ा होगा ! इस प्रकार कहते हुए वह कृष्टण उठ खड़े हुए" । यहाँ स्थायी भाव "कोध" है । आत्रय भगवान कृष्टण है । आत्रम्बन असुर है क्यों कि भगवान का क्रोध राक्ष्स के प्रति उद्दुद्ध हुआ है, अतः वह उसका आत्रम्बन है । उददीपन विभाव-भौगासुर राक्ष्स का कृष्टलों को हर लेना है क्यों कि इसी प्रकार भगवान का क्रोध उद्दूद्ध हुआ है । अनुभाव-भगवान की भुजाओं का पहण्हाना तथा यक का नाचना है क्यों कि स्थायी भाव क्रोध के समय आत्रय भगवान कृष्टण की ये चेष्टाएं है ।

वीर - रस

"कार्यारमेधु तरमाः स्थानुत्ताह उच्यते ।"

बीर रत का स्थायी माव उत्साह है। युद्ध वर्णन में वीर रत का चित्रण मिलता है।

पारिजातहरण महाकाच्य के सत्रहवें सर्ग में नारायण तथा इन्द्र के युद्ध वर्णन में इस रस की अत्यन्त सुन्दर अभिच्यक्ति की गई है।

इन्द्र श्रीकृष्ण से बोले कि बलपूर्वक इस पृक्ष को ले जाने में समर्थ नहीं हो तुम्हारा अधिकार इसके पत्ते पर भी नहीं हो । अतः पारिजातपृक्ष के प्रति इच्छा त्याग दो । इतना कहते हुए उन्होंने भगवान से कहा यह मेरा बाण ले लो यह तुम्हें में पारितोष्ठिक में दे रहा हूँ ।

[।] काच्य प्रकाश - चतुर्य उल्लास - 30

"ऐसा कहने वाले महान् ओजस्वी इन्द्र ने अचानक अपने विशाल धनुष्य को कान तक खींचा और कृष्ण पर छोड़ दिया ।" यहाँ स्थायी माव उत्साह है, आश्रय इन्द्र है क्यों कि उत्साह इन्द्र के हृदय में हो रहा है । आलम्बन मगवान कृष्ण है क्यों कि इसी कारण स्थायी माव उत्साह आश्रय इन्द्र के हृदय में जागृत हो रहा है अतः वह उसका आलम्बन है उद्दीपन पारिजातवृक्ष का बलपूर्वक कृष्ण का ने जाना है अनुमाव इन्द्र को धनुष्य का खींचना आदि है । कोध से मगवान ने भी उसके बाण को निराकृत कर दिया और गम्भीर वाणी में बोले "सम्पूर्ण सिद्धियां पराकृम में होती है" महिष्यं नारद द्वारा जो तुम्हें विदित कराया जा चुका है, उस निश्चय को तुम्हें इन्द्र जानते हो वह बेकार नहीं है यह पारिजात वृक्ष में हो कुष्ण है जाऊँगा ।

"इस लिए अपनी तपनता के लिये निक्षचय मत करों हे वीर । पराकृम के बिना समृद्वियां नहीं होती, मैं १ कृष्ण १ तुम्हारे १ इन्द्र के १ बल को काट नहीं रहा हूँ इस लिए गर्व से तुम मुझको १ मेरी शक्ति को १ नहीं समझ रहे हो।" यहां स्थायी भाव उत्साह है आश्रय मगवान कृष्ण है आलम्बन इन्द्र है क्यों कि इसी कारण उत्साह कृष्ण के हृदय में जागृत हो रहा है अतः वह उसका आलम्बन है " इन्द्र का गर्व करना उददीपन विभाव है क्यों कि इसी कारण मगवान कृष्ण में स्थायी भाव उत्साह जागृत हो रहा है।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - सप्तद्धा सर्ग - 3

² पारिजातहरण महाकाच्य - सप्तद्धा सर्ग - 4

मगवान कृष्ण ने युद्ध के लिए धनुष्ठा तैयार कर लिया जो देदा हो कर मधंकर लग रहा था और भूमन के तमान तन गया था। मगवान कृष्ण के पुत्र प्रदूष्ट को पुत्र पुरन्दर दोनों ने एक दूसरे का रास्ता रोक लिया और एक दूसरे को मासने के लिए उद्यत हो गए। उन दोनों ने युलोग को भी प्रकाशित कर दिया और जैसे आकाश से ओने बरसते है उसी तरह अत्यधिक देग से बाण तमूह बरसने लगे। दोनों हिर के पुत्र ने युद्ध में अपना-अपना कौशन दिखाया।

दोनों १ प्रद्युम्न तथा पुरन्दर १ काला तिपात के न सह सकने वाले रोध से पूर्ण थे तथा पैंके गए धनुष्य के बाणों के समूह से कभी जीर्ण न होने वाले पिंजरे के अन्दर दोनों की प्रच्छन्न हो गई है.

यहाँ तथायी भाव उत्ताह है तथा आश्रय प्रदुम्न तथा पुरन्दर है क्यों कि युद्ध का उत्ताह दोनों के हृदय में है। दोनों का धनुष्य बाण फैंक्सा अनुभाव है।

इन दोनों ईश्वरों क्षमावान कृष्ण तथा इन्द्र का रोष हाहित युद्ध में अभिरूचि देखकर देवगण डर गर और स्वर्ग में दिशाओं ते भाग खड़े हुए । पृथ्वी पट गई और उसमें चीत्कार पैदा हो गया । दोनों के धनुष्ठ की डोरी की टंकार ते जैसे स्वर्ग लोक पट गया ।

इन्द्र के हितवाहक ने उतनी देर में जब तक ममवान कूडण ने मुँह पेरा एक मारी गदा सात्यकि के वक्षस्था पर मार दिया ।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - सप्तदश सर्ग - 13

² पारिजातहरण महाकाच्य - सप्तदश सर्ग - 21

यहाँ तथायीभाव उत्साह है। आश्रय हस्ति वाहक तथा सात्यिक है कि और हस्तिवाहक का गदा मारना अनुभाव है क्यों कि आश्रय हस्विहक की युद्ध के समय ये चेष्टा है।

वह सात्य कि जन्म ते कभी किसी ते पराजित नहीं हुआ था तथा भगवान कृष्ण का जो दाहिना हाथ था आज उसका अपमान हुआ था अतः यह अपमान सात्य कि के दारा कैसे सहा जाता।

"उस सात्यिक ने सूर्य के समान प्रचण्ड अपने माले से इन्द्र के छन को आकाश की ओर उड़ा दिया और हाथी को पालने वाला वाहक हैपीलवानह के पास जो आमूकण रूप में शर था उसको भी जिरा दिया ।"

यहां तथा भाव उत्साह है तथा आश्रय सात्य कि है और आलम्बन इन्द्र तथा हित्वाहक है क्यों कि उसी कारण आश्रय सात्य कि में तथायी भाव उत्साह जागृत हो रहा है अतः वह उसका आलम्बन है। उद्दीपन विभाव हित्वाहक का गदा मारना है क्यों कि इसी कारण से आश्रय में उत्साह भाव जागृत हो रहा है। अनुभाव इन्द्र के छत्र को उड़ाना तथा वाहक के शर को गिराना है क्यों कि ये आश्रय की चेष्टार है।

सात्य कि के अद्भुत् कर्म से भगवान कृष्ण प्रसन्न हो गए और इन्द्र रोखा से युक्त हो कर हार माने लगे।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - तय्तदशं सर्ग - 25

"तब क्रोध से ट्या प्त शरीर वाले इन्द्र ने अपने इस अपमान को दूर करते हुए से हाथ में बाण उठाया और जब तक कृष्टण के मान हानि की ईष्ट्या से बाण उठाया तब तक सात्यिक ने दूसरी दिशा से बाण काट दिया।"

यहाँ स्थायी भाव उत्साह है आश्रय इन्द्र तथा सात्यिक है अनुभाव इन्द्र का बाण उठाना तथा सात्यिक का बाण काटना है क्यों कि स्थायी भाव के समय आश्रय इन्द्र तथा सात्यिक की ये चेष्टारं है।

इस प्रकार युद्ध वर्णन में सात्यिक के पराक्रम का अद्भुत वर्णन किया गया है "साथ ही सात्यिक ने ऐरावत के हाँकने वाले के मस्तक प्रदेश को बाणों से छिन्न-भिन्न कर दिया और इन्द्र के ध्वज के धूनन में विचार किया।

यहाँ स्थायी भाव उत्साह है आश्रय सात्यिक है क्यों कि स्थायी भाव उत्साह सात्यिक के हृदय में जागृत हो रहा है। आलम्बन इन्द्र तथा पीलवान है क्यों कि इसी कारण आश्रय सात्यिक में उत्साह जागृत हो रहा है अतः वह उसका आलम्बन है इन्द्र तथा पीलवान का बाण आदि वलाना उद्दीपन विभाव है क्यों कि इसी कारण सात्यिक में स्थायी भाव उत्साह जागृत हो रहा है पीलवान के मस्तक प्रदेश को जिन्न-मिन्न करना आदि अनुभाव है क्यों कि आश्रय की ये वेष्टाएं है।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - सप्तद्या सर्ग - 28

² पारिजातहरण महाकाच्य - सप्तदश सर्ग - 29

वात्सल्य भाव :-

पारिजातहरण महाकाच्य के दशमतर्ग के दो शलोकों में इस भाव की अभिन्यक्ति हुई है। इन्द्र को कृष्ण का बड़ा भाई बताया गया है। भगवान् कृष्ण नारद से कहते हैं आप साम के द्वारा ही इन्द्र से देव वृक्ष की याचना की जिस वे इन्द्र हमारे नाम वाले कित्र तथा बड़े भाई हैं। वे हमारे अर्थ की पूर्ति अवश्य करेंगे क्यों कि छोटे भाई पर स्वाभाविक वात्सल्य पूर्ण प्रेम होता है।

तम्बन्ध जो पारस्परिक भातृत्व रूप मिलाने वाला है उसके सम्मुख और किसी मुण की उपयोगिता नहीं। आरम्भ से ही उन्हें ड्रंडन्द्र को इस वृतान्त को सुनाकर किहरमा कि उनकी स्नुषा अनुष्वधू होने से पुत्रवधू के समान, शरीर मात्र से मिन्न मेरे प्राण के समान जो सत्यभामा है वह, इन्द्राणी के लिए दुलार पाने की योग्य है। पति के प्रसन्न हृदय रहने पर हृदय से हर्षित रहने वाली जो अपने पित के प्रसाद रूप सुखों में स्वर्ग – नरक को भी समान ही मानती है तथा जो नित्य अपने पित गित का ही अनुसरण करने का निश्चय रखती है। इस प्रकार केवल पित के एक प्रेम मात्र मुण की चाह रखने वाली वही स्त्री है। इस प्रकार केवल पित के एक प्रेम मात्र मुण की चाह रखने वाली वही स्त्री है। इस प्रकार सितयों की साधारण स्थिति को रूकिमणी ने बताया।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - दशम तर्ग - 76

² पारिजातहरण महाकाच्य - दशम सर्ग - 77

उ पारिजातहरण महाकाच्य - व्यव्ह तर्ग - 33

माबा तेनी :-

कवि उमापित विरिधित पारिजातहरण महाकाच्य में किव ने बहुत ही प्रांजल भाष्म का प्रयोग अपने इस काच्य में किया है। उनकी भाष्मा स्वामी विक रूप से अंकुरित पत्नवित और विस्तार प्राप्त वृक्ष की शाखायें जैसी मनोहर लगती है। विदान होने के कारण भाष्म और शैनी पर उनका पूर्ण अधिकार है। इनकी भाष्म में कहीं भी कुछ अस्वामाविक नहीं लगता है। चाहे प्रकृति वर्णन हो या शतु का वर्णन हो।

कितना स्वाभाविक सा जान पड़ता है - रात्रि में चन्द्रमा के उठने पर मानों ताराओं का हार पहने हुये बहुत अधिक रक्त वर्ण ब्रस्त्र से अंग को ढके हुये तथा ढके हुये मुख की कान्ति वाली सन्ध्या मानों सूर्य का अनुसरण कर रही है।

कवि ने रात्रि की उपमा गर्भवती स्त्री ते की है उस समय रात्रि गर्भवती स्त्री के समान प्रतीत होती थी उसका चन्द्रमा रूपी मुख पीला पड़ गया था उसके अंगों पर नक्ष्म रूपी आसूच्या इने गिने ही रग गये थे और उसने अपनी भीतर वाले रूपी सूर्य को धारण कर रखा था।

किया ने अपने काच्य का प्रारम्भ ही दारिका वर्णन से किया है। दारिका वर्णन में दारिका के राजमहलों का वर्णन भी किया है दारिका के बाव ड़ियों का तथा सरोवरों का वर्णन भी विभिन्न अलंकारों के माध्यम से इस

[।] पारिजातहरण महाकाट्य - त्रयोदश - 6

² पारिजातहरण महाकाच्य - दितीय सर्ग - 4

काट्य में किया गया है। दारिका के बाव ड़ियाँ और तरोवरों की तुलना नायक नायिका ते की गई है जो अत्यन्त ही स्वामी विक लगती है।

स्वर्ग का वर्णन तो बहुत ही स्वामाविक और मनोहर है - "कनक पर्वत के शिखर के बीच इन्द्र नीलमणि के बने प्राकार के भीतर विशाल प्रांगण वाले जिसमें सभी दिग्पाल घूम रहे थे ऐसे इन्द्र के मद्यन में प्रवेश किया ।

स्वर्ग वर्णन में किया ने कुलक रीति से सुध्यमा सभा का भी वर्णन किया है।

मगवान कृष्ण ने स्वयं उस इन्द्र की नगरी का अर्थात स्वर्ग के तौन्दर्य का वर्णन किया है। दिन में यहाँ के महलों में चन्द्रमा की चांदनी रहती है जो रात में पृथ्वी में प्रकट हो जाती हं। चन्द्रमा अमावस्या की रात के इस इन्द्र लोक में अपने का नितमण्डल को छुपाकर स्थित रहता है।

रैवतक पर्वत को सुवर्ष मय होना किंव परम्पराक्षश इस काट्य में किया गया है। उभर छास सधन बादलों से लदे दिदी प्यमान सुवर्णमय शिखरों से वह रैवतक पर्वत रेसा जान पड़ता था जैसे म्मवान शंकर अपने प्रशस्त हाथों पर हाथी का चमड़ा उठार नाचने को तैयार हो। माव यह है कि पर्वत राजरैवतक म्मवान कृष्ण की उपस्थित में मानो हर्षातिरेक से नाचने के लिये भी उद्यत हो गया है।

दारिका ते रैवत पर्वत की यात्रा का वर्णन इस काट्य में किया गया है यद्यपि यह कोई विशेष यात्रा नहीं थी किन्तु यह रीति थी कि महाराजों की सपरिवार यात्रा ससैन्य ही होती रही, अतः कवि ने पारिजातहरण महाकाट्य

[।] पारिजातहरण महाकाट्य - प्रथम तर्ग - 18, 19

² पारिजातहरण महाकाच्य - एकादश तर्भ - 3

³ पारिजातहरण महाकाट्य - पंचदश तर्म - 5

⁴ पारिजातहरण महाकाच्य - तृतीय सर्व -49

के तृतीय तर्ग में भगवान कृष्ण की इस यात्रा का सांगोंपांग वर्णन किया है क्रमहाः सैनिक गति से चलते पैदल, घोड़े, रथ, हाथियों से युक्त विविध प्रकार के बाजों की उत्तेजना से बढ़ते बलवाली -चतुंर मिणी सेना को वह वनमाली भगवान चतुरता के साथ बढ़ाते हुये चल रहे थे।

कवि ने वस्तु वर्णन में द्वारिकापुरी, इन्द्रपुरी, रैवतक पर्वत तथा यात्रा का वर्णन महाकाच्य में चित्र सा अंकित कर दिया है और साथ ही अपने चित्तात्मक ज्ञान को प्रकट किया है।

प्रकृति वर्णन में समुद्र का वर्णन त्रिवेणी आदि का बहुत स्वामाविक वर्णन इस काट्य में किया गया है।

"तरंगरूप भुजाओं को पैलार दण्डवत् सर्वांग से पृथ्वी पर पड़ा गम्भीर ध्वनि के बहाने स्तुति पाठ करता समुद्र मणवान कृष्ण के प्रति साष्टांग प्रणत सा दिखाई दे रहा था।

कित ने त्रिवेणी का वर्णन कुलक रीति से किया है - इस प्रयाग भूमि में सूर्य पुत्री यमुना की धनी नीलतरंगों से आकृतन्त तथा लाल रंग में तरंगित सरस्वती को अंग में लिए स्वभाव से ही इचेत वर्ण वाली जो गंगा शौ मित हो रही है। त्रिवेणी का प्राकृतिक वर्णन भी तीन श्लोकों में कित ने किया है।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - तृतीय सर्ग - 6

² पारिजातहरण महाकाच्य - तृतीय सर्ग - 79

³ पारिजातहरण महाकाच्य - पंचम सर्ग - 42

⁴ पारिजातहरण महाकाच्य - पंचम सर्ग - 61-63

शरद्शतु तथा बसन्त शतु को तो बहुत ही स्वाभाविक और अत्यन्त ही मनोहारी चित्रण कवि ने अपने इस काट्य में करके अपनी अद्भुत प्रतिमा का प्रदर्शन किया है -

शरद्शतु और मनवान कृष्ण की प्रिया तत्यभामा की शलेख तथा उपमा के माध्यम से तुलना बहुत ही सुन्दर है -

हे प्रिये । इस समय को प रूप तम को हटा कर प्रसन्न हुई जड़ी भूत अभिग्नायों को स्वय्छ कर दिखाती हुई दुःखावस्था रूप पंक को सुखा देने से जिसके व्यवहार मार्ग शोभन हो गये है । खिनते कमन के समान मुख वाली सारस हंतों के समान मधुर भाषिणी मने के विशेष्ठ भूषण आदि उत्तर जाने से निर्मन उरोजों से शोभित आभासित प्रकाश है जिसका ऐसा कामदेव का प्रभाव जिसमें विनसित है । आशाओं में विस्पुरण निये तुम रूसत्यभामा इस शरद शतु के समान हमें आकृमण के निये प्रेरित कर रही हो ।

बसन्त शतु का अत्यन्त मनोरम तथा स्वामा विक वर्णन पारिजातहरण महाकाच्य के एक विंशा सर्ग में किया गया है -

"शिशिरजनितज्ञ उन्तं जातु यात्विप्रयं वः
प्रियशिशिरसुरम्ये मत्प्रभावे रमध्वम्,
अहिमिह श्रतुराजस्वागतायाधिनोक,
नवसरमणीयां चेतनां चारयामि ।।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - नवम तर्म - 50, 51

² पारिजातहरण महाकाच्य - एक विंश सर्ग - 22

इस स्वाभाविकता की पूष्ठभूमि में कवि का अनुभव और पाण्डित्य विद्यमान है। यही कारण है कवि उमापति के इस काट्य में अनेक अलंकार और भाव संयोजन की अभिन्यक्तियां अत्यन्त स्वाभाविक है और भावों की स्वाभाविकता ही उनका प्रमुख मुण है।

काट्य के पंचम तर्ग में 22 क्लोकों में कुलक में त्रिवेणी का वर्णन तातों विभावितयों में करके कवि ने अपने व्याकरण शास्त्रीय पाण्डित्य को प्रदर्शित किया है।

कवि उमापति की भाषा में वैदर्भी और भाडी रीति, विशिष्ट मुण प्रताद, माधुर्म और ओज आदि का मनोहर प्रयोग हुआ है इनकी भाषा में छोटे-छोटे तमातों का प्रयोग हुआ जिसते इनकी भाषा अत्यन्त ही तरल हो गई है और जनमानत की भाषा हो गई है।

किव उमापति की गैली तरल और प्रमावोत्पादक है। इनकी गैली संक्षिप्त और सुबोध है। वह किसी बात का लम्बा—चौड़ा वर्णन न करके सूक्ष्म और मार्मिक रूप से व्यंजना कर देते है। विश्रंप को मार्मिक दंग से जिस रूप में जितना रखना आवश्यक है, उतना ही वह प्रस्तुत करते हैं। इनकी व्यंजना को पूर्ण रूप से समझना सहृदय की सहृदयता पर निर्मर है।

इनके काट्य में मुणों कामिषक कांचन योग हुआ है। इनकी रचना में माधुर्य, ओज और प्रसाद की अवतारणा का कोमल सामंजस्य है, प्रसाद मुण युक्त वैदर्भी का प्रयोग तो काट्य में सर्वत्र ही काट्य के सौन्दर्य को बढ़ाने वाला है।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - एक विंश सर्ग - 22

² पारिजातहरण महाकाच्य - वंधम सर्ग - 42.64

अप्रतिहत प्रवाह और तरल शब्दों के संयोजन से भाष्या में तौन्दर्य आ गया है। इन्होंने प्रणयलीला, भगवान की स्तुति के कोमल तथा युद्ध स्थल के भयंकर दोनों प्रकार के चित्र खींचने में दक्षता प्राप्त की है।

वह वर्णन में असाधारण कृतन है। प्रत्येक वस्तु का तजीव वर्णन कवि उमापति के इस पारिजातहरण महाकाच्य में किया गया है। जैसा भी भाव है किव की भाषा वैसी ही सरल एवं स्पष्ट है। प्रकृति वर्णन में तो बहुत ही पदु है। उन्होंने पर्वत, नदी, समुद्र, शरद, क्सन्त, सन्ध्या, प्रभात, नगरी आदि का बहुत ही सुन्दर वर्णन इस काच्य में किया है।

इनकी भाषा भावों तथा वर्ण्य विषय के अनुरूप सरल एवं सुबोध है। इनको पढ़ते ही इलोक का भाव स्पष्ट प्रतीत होने लगता है। कवि ने मुत्तर, दरबार आदि अपने बनाए शब्दों का प्रयोग भी इस काट्य में किया है। यह उनकी अपनी विशेष्टता है।

"तमेत तामन्ततहस्वाहिमृतरादियानैरिधनंकुलाजिरे ।।

अनेक तामन्तों की मोटर आदि विभिन्न तवारियों ते जितका प्रांगण भरा हुआ है। ईमृत्तर शब्द कवि का कल्पित मोटर के अर्थ में स्वरचित शब्द है।

इनकी भाषा में तथान-तथान पर लोको क्तियों का प्रयोग हुआ है।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - प्रथम सर्ग - 52

"देवभूमि ते उत्पन्न पुष्प, मेरी सौत को देकर मुझे, शिक्षा मांगने को कह रहे है। यह मेरे अत्यधिक अपकार ते मरा इत प्रकार का परिहास कटे पर नमक छिड़कने के समान सहने योग्य नहीं है।

यदि इन्द्र मेरे किए अपने पराभ्य का स्मरण करें तो उसते हमारे अभी प्रित कार्य की तिद्धि ही है, क्यों कि पशु भी अपनी हानि के स्थान ते डरता है, बोको कित है —

"जाने गड्दे में बैल भी पाँच नहीं डालता । इस प्रकार क्षारं क्षते क्षममिव क्षिपति और "पशुष्च परिभूतिपदा द्विभेति" आदि लोको क्तियों का प्रयोग कवि ने किया है । स्थान-स्थान पर सूक्तियों का वर्णन करने से कवि की भाषा में मधुरता का समावेश और भी बद्ध गया है ।

"आमो दिनी तरतमाव विका तरम्या, तन्दर्भ शुद्धिपरिपुष्ट सुण प्रतादा । तम्मूषिता स्निव तंरकृतिशा लिनी मीर्हवा हिता श्रिय मियं नकमानयेत ।

कवि उमापति के अलंकारों का प्रयोग स्वामा विक दिख्ता है। अभीष्ट अर्थ की अभिव्यंजना में अलंकार सहायक हुये हैं। अनुप्रास, उपमा, रूपक, उत्पेक्षा, श्लेष, अर्थान्तरन्यास, आदि विभिन्न अलंकारों का स्वामा विक प्रयोग इस काव्य की शोभा को बदाने में भी सहायक हुये है।

रूपक, उपमा, श्लेष्ठ तथा अनुप्राप्त अलंकारों का प्रयोग एक ही श्लोक में कवि ने किस निपुणता के साथ किया है -

"परिस्पूर न्मी नमनोहरेक्ष्णाः क्ष्मे क्ष्मे तस्तद्वकृतश्चलाः ।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - दशम तर्ग - 71

² पारिजातहरण महाकाच्य - द्याम सर्ग - 57

"पुदकते ह्यु मीन रूपी मनोहर एवं गंवल नेत्रों वाली क्षण-क्षण में खिसकते हुए वस्त्ररूप मैमाल से सुन्नो मित होने वाली तथा धिरकाल तक उँची जलरा जि को उन्नत उरोजों के रूप में धारण करने वाली बाव ड़ियां ना यिकाओं की मांति किसके मन को नहीं हर लेती । कवि अर्थान्तरन्यास के प्रयोग में बहुत सिद्धहस्त है । तैकड़ों अर्थान्तरन्यास - सुभाषित के रूप में प्रचलित हो गये है । कुछ सूक्तियों का वर्णन निम्न है -

"प्रस्ताव के बिना सन्तों का अनुग्रह किसी पर नहीं होता । क्या पांख निकल आने पर भी गींटी कभी चन्द्रविम्ब को चूमती है। भला घर के कोने में मिलते मधु के लिये दुर्गम गिरिशिखर पर गृद्ना किसको उचित है। आदि विभिन्न सुभाषितों का अत्यन्त ही स्वामाविक वर्णन कि ने अपने इस काट्य में किया है। कि उमापित भावों के अनुकूल छन्दों का प्रयोग करते है प्रत्येक सर्ग में विभिन्न छन्दों का प्रयोग इस काट्य में किया गया है। सवैया, कि वित्त तथा दोहा आदि हिन्दी के छन्दों का प्रयोग मी किया है और अपनी अद्भुत प्रतिभा का प्रदर्शन किया है।

वंशस्य, द्भुतविलिम्बत, उद्गाथा, बसन्ततिलका, मालिकनी, उपजाति आदि विभिन्न छन्दों का प्रयोग इस काट्य में किया है।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - चतुर्थ तर्ग - 107

² पारिजातहरण महाकाट्य - चतुर्थं तर्ग - 22

³ पारिजातहरण महाकाट्य - नवम सर्ग - 23

⁴ पारिजातहरण महाकाच्य - एकादश सर्ग - 66

किव उमापित के संवादों में दीर्घता नहीं हैं। पारिजातहरण महाकाच्य में स्थान-स्थान पर संवादों का वर्णन किया गया है। काव्य के स्कादश सर्ग में नारद-इन्द्र में संवाद का अत्यन्त ही स्वामाधिक वर्णन किया गया है बाद में इन्द्र ने नारद जी से कहा --

जैता पहले ही मैने तोचा था, वैता उनका तही मत अब आप तत्य रूप में कह रहे हैं। इति तिये जाइये उनते कहिये कि बिना युद्ध के उत दूधा का एक पत्ता मी नहीं मिल तकता।

काट्य के एको निर्विश तर्ग में क्षयप का भगवान कृष्ण ते तंवाद वर्णन मिलता है। इस प्रकार स्थान-स्थान पर तंवाद का वर्णन किव के कथानक का विस्तार करने वाला है तथा संक्षिप्त तंवादों का वर्णन किव की अद्भुत प्रतिभा का प्रदर्शन करने वाला है।

कवि उमापति ने पुराणों के कथानक का आधार लेकर आवश्यकतानुसार उन्हें परिवर्तित करके अपने पारिजातहरण महाकाट्य की रचना की । प्रस्तुत पारिजातहरण महाकाट्य शान्तरस प्रधान काट्य है । स्थान-स्थान पर मणवान की स्तुति का वर्णन इस काट्य में मिलता है जो किव की ईश्वर की प्रति मिलत भावना को प्रकट करता है काट्य के अद्ठारहवें सर्ग में मणवान कृष्ण के स्वयं भगवान शिम की स्तुति करते हैं:-

दोनों नेत्र कमलों को मूँदकर शंकर पार्वती के चरण कमलों में अपने को स्थापित करके भिक्तपूर्वक मदासर कण्ठ से मगवान की स्तुति किया । हे भगवन्। इस विष्म स्थिति में हमारी तिद्धि के लिये प्रसन्न हो । कवि उमापित के इस काट्य में महाकाट्य के नियमों का पालन सर्वांगीण हुआ है ।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - एकादश सर्ग - 100

² पारिजातहरण महाकाच्य - अवदादश सर्ग - 5

कवि उमापति की गैनी पर दार्शनिकता का प्रमाव दिखाई देता है कवि ने अपने पारिजातहरण महाकाच्य में विभिन्न दार्शनिक सिद्धान्तों का वर्णन करके अपने दर्शन सम्बन्धी पाण्डित्य को प्रदर्शित किया है। सांख्य शास्त्र के तो वे पण्डित थे। सांख्य शास्त्र के माध्यम से कवि का त्रिवेणी वर्णन बहुत ही स्वामाविक और कवि के दार्शनिक पाण्डित्य का परिचय देने वाला है।

"यह एक ओर संसार की प्रकृति जन्य मिनता ही यमुना है और दूसरी ओर उस परम पुरूष की इचेत विभूति ही गंगा है। इनके पदार बिन्द की प्रमिका यह सरस्वती नामक नदी इन दोनों को संहित कर रही है अर्थात प्रकृति पुरूष के संयोग को अनुराग भरी कवि सरस्वती जैसे बखान रही है।

काट्य के काठ तर्ग में दर्शनशास्त्र के विभिन्न मतों का निरूपण किया गया है। गुण, निंग आदि उपाधियों ते रहित शुद्ध ज्ञान रूप परम ईश्वर स्वरूपणी रू किमणी को कहा गया है। तांख्यमत वाले प्रकृति कहते है, वेदान्ती चिद्रब्रह्म्म बतनाते हैं, जो स्त्री पुरुष्ठ सामान्य का वाचक है वहीं माया भी कहकर प्रपंचित किया गया है। मीमांसक क्रिया कहते है। योगदर्शन वाले सिद्धि मानते है और तार्किक बुद्धि इच्छादि ईश्वर के गुणों में भिनकर गुणात्मकबुद्धि रूप में देखते है। पौराणिक परमेश महिष्ठी पराम्बा कहते हैं।

[।] पारिचातहरण महाकाट्य - पंचम सर्ग - 43

² पारिजातहरण महाकाच्य - घठ तर्ग - 41

संदेश में कहा जा सकता है कि महामारत के तमान इस काट्य का अंगीरस भावित अथका शान्त है। अन्य रस अंग रूप में यहाँ वहाँ निष्यन्न हुए हैं। गौडीय और वैदर्भी रीति का काट्य में दर्शन होता है। ओजस्वी शब्द विन्यास उदार अलंकार-योजना, सर्वथा अभिनवभाव, सर्वथा अनवा संवाद इस काट्य की, विशेष्ठाताएं है।

"गुण-दोष खंरीति"

गुग रवं रीति:-

काव्य की एक पहचान शब्दार्थ की समुणता को माना गया है। आदि किव बाल्मी कि की यह सूक्ति "शब्द और अर्थ की जिस उदारता और मनोरमता का संकेत करती है उसी को अलंकार शास्त्र ने औदार्थ और मार्थ्य मुणों की परिभाष्ट्रा में प्रकट किया है।

तंस्कृत के महाकवियों ने भी शब्द और अधि के गुण वैशिष्ठद्य का परिचय यत्र-तत्र दिया है। महाकवि भारवि की इस सूक्ति अर्थात-किरातार्जुनीयम में जिस अर्थसम्वत और उक्तिविशुद्धि का निर्देश है वह तो अनंकार शास्त्र में अनंकार अथवा सौन्दर्य की दिविध संभावनाओं के रूप में स्पष्टट प्रतिपादित है।

अलंकारबाद के प्रथमाचार्य "मामह ने मुणों का अनुशासन करते हुये जो यह कहा है "माधुर्ममिन्नाच्छन्तः प्रसादं च सुमेध्सः । समासवन्ति भूगांति न पदानि प्रयुक्ति ।।

[।] उदारवृत्तार्थमदैः मनोरमैस्ततस्त रामस्य चकार कीर्तिमान । समाक्षरैः इलोक्सतैर्यशस्विनो यशस्करं काट्यमुदारधीर्मुनि ।। -र्व -बाल्मीकि रामायणः बालकाण्ड 2.42

² किरातार्जुनीयम - 14,5

³ आचार्यभिम्ह का का व्यालंकार

उससे माधुर्म और प्रसाद के अतिरिक्त ओज की मुण्हिप में मान्यता का सम्प्रदाय चल निकलता है।

ध्विनवाद की काट्यदृष्टित से देखते हुये आचार्य मम्मद ने काट्य का यह स्वरूप देखा। "तददोषों शब्दा थाँ समुणावनन कुतीपुनः क्वा पि। वे शब्द और खर्य काट्य कहे जाते है। जो दोधरहित हो, गुण युक्त हो और यदि रसा मिट्यं क हो तो अनंकृत हो या नहीं। आचार्य मम्मद के अनुसार माधुर्य, अोज और प्रसाद मुण रसनिष्ठ है।

आचार्य मम्मद के अनुसार माधुर्य उसे कहते है । वह एक ऐसा आह्लाद अथवा आनन्द है जैसे कि श्रृंगार रस के आस्वाद का आनन्द । जिसमें सहृदय सामा जिक का मन पिध्नता सा प्रतीत हुआ करता है और ऐसा लगा करता है जैसे उसमें कोई अलौ किक को मलता व्याप्त हो गई हो । और ओज वह मुण है जिसे सामा जिक हृदय का प्रजंवलन ध्यक उठना कहा जा सकता है जो कि वीर रस में स्वभावतः हुआ करता है और जिसमें ऐसा लगा करता है जैसे चित्त की सारी शीतलता अकस्माद नष्ट हो गई और बदले में चित्त उद्दीप्त हो उठा । अतेर प्रसाद मुण उसे कहते हैं जो सभी रसों का एक ऐसा धर्म है जिससे सामा जिक हृदय इस प्रकार भर उठता है जिस प्रकार अपन के दारा सुवाई-धन अथवा जल के दारा के साफ कपड़ा ।

[।] मम्मट काकाच्यप्रकाश - प्रथम उल्लास - 4

² बाच्य प्रवाता - अष्टम उल्लास - 66

उ बाच्य प्रकाश - अष्टरम उल्लास - 68

⁴ काट्य प्रकाश - अब्टम उल्लास - 70

आचार्य वामन के अनुसार उक्ति वैधि इयं माधुर्मम् । अर्थस्य प्रौदिरोजः सर्वे अर्थनेमल्यं प्रसादः ।।

ध्विनवादी आयार्य के द्वारा माधुर्यगुण शृंगारादि रसास्वाद में सहृदय
हृदय की द्वित से सम्बद्ध है। ओव मुण रौद्रादि रसास्वाद में सामाजिक चित्त
की दीजित से सम्बद्ध है और प्रसाद गुण सर्वरस साधारण मुण है क्यों कि मन की
प्रसन्नता सभी रसों के आस्वाद में सिद्ध है। पदों के संघटन या मेल को रीति
कहते हैं जैसे मनुष्य के शरीर में विभिन्न अंगों का संस्थान या संघटन होता है वैसे
ही काच्य के शरीर मूत शब्द और अर्थ का भी संघटन होता है। यह रीति काच्य
के आत्म मूत तत्व रसादि का उत्कर्ष या उपकार कराती है।

संस्कृत काट्य शास्त्रियों ने मुख्य रूप से तीन रीतियों का विक्रलेब्झा किया है - ।- वैदर्भी रीति ﴿2﴿ गौडी रीति ﴿3﴾ पांचाली रीति

आचार्य वामन ने रीति को ही काट्य की आत्मा माना है -रीतिरात्माकाट्यस्य और रीति का नक्ष्ण है -

"विशिष्ट तापदरचना रीतिः।

यहाँ विशिष्ट का अर्थ है मुणों ते युक्त विशेष्णामुणात्मा"

वामन के पूर्वदण्डी ने भी रीति का निरूपण किया है। उन्होंने रीति
को मार्ग कहा है। और काट्य के वैदर्भ और गांड दो मार्ग बताए है।

[।] काट्यानंकार सूत्रवृत्ति - 3.2. 1-14

² ध्वन्यालोक लोचन - 2.7

उ काट्यानंकार सूत्र वृत्ति - 1/2/5

⁴ काट्यालंकार सूत्रवृति - 1/2/6

⁵ अस्त्यनेकों गिरा मार्गःसूक्ष्मभेदः परस्परम् ।
तत्र वदर्भगौडी यौ वण्येति प्रस्कुटान्तरो । –काट्यादर्भ = 1/40

पुनः दण्डी ने वैदर्भ मार्ग के प्राण 10 गुणों का ट्याख्यान किया है ये दस गुण है - "श्लेष्ड, प्रसाद, समता, माधुर्य, सुकुमारता, अर्थ-ट्यिक्त, उदारता, ओज, कान्ति और समाधि - ये दस गुण वैदर्भ मार्ग है काट्यह के प्राण है । गौडमार्ग के भी ये प्राण है किन्तु वहां इनका कुछ विपर्यय है लक्षण में उलट फेर है पायाजाता है । वामन के गुण भी यही है । वैदर्भी काट्य गौड़ और पांचाल मार्ग से भिन्न होता है । भामह ने वैदर्भ काट्य की निम्न विशेष्ट्रतार बताई है - प्रसन्न हृतुरन्त समझ में आने वालाह्य हुई जिसमें अर्थ सीधे कहा गया हो है कोमलह सुनने में मधुरहूं।

वैदर्भ काट्य को प्रसाद गुण युक्त काट्य भी कह सकते है यही वैदर्भी रीति का अपना विशिष्ट अभिकान है किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि उसमें अर्थ वक्रता और कथन की वक्रता नहीं होती ये भी उसमें रहते हैं पर प्रसन्न पदावली का प्रयोग उसकी सर्वोपरि विशेष्टता है।

आचार्य वामन के अनुसार "समग्रमुणो पेतावैदर्भी"

अर्थात मार्थ और प्रताद गुण से युक्त वैदर्भी रीति होती है।

वैदर्भी रीति की मुख्य विशेष्ट्याएं है - मधुर शब्द, ललित रचना, तमातीं का सर्वथा अभाव या थोड़े समात युक्त पदीं का होना तथा वर्ण माधुर्घगुण के ह्यंजक होते है।

अोज की कान्ति से युक्त गौडी नाम की रीति कही गई है-"ओज: कान्तिमती गौडीया ।

[।] काव्यादर्श - 1/41-42

² काव्यालंकार - 1/34

³ काव्यालंकार सुत्रवृत्ति - 1.2.11

⁴ बाव्यानंबार सूत्रवृत्ति - 1.2.12

गौडी रीति में प्रायः तमातों की सुदीर्घ परम्परा होती है। उद्भव रचना होती है और ओज प्रकाशक वर्ण होते है। वीर रत की रचना प्रायः इती रीति में होती है।

माधूर्य गुण ते युक्त पांचाली रीति कही गई है -

उक्त दोनों री तियों में प्रयुक्त वर्णों से अविधिष्ठ वर्णों द्वारा जो रचना की जाय और जिसमें पांच-छः पदों तक के समास हो उसे पांचाली रीति कहते है। इसमें शब्द और अर्थ का मंजूल गुम्फन होता है। महाकिष बाण इस री ति के सर्वाधिक सफल आचार्य माने जाते हैं।

किव उमापति दिवेदी विरिधित पारिजातहरण महाकाट्य में काट्य के मुणों का मिष्काचन प्रयोग हुआ है §उनकी रचनाओं में माधुर्य, प्रसाद ओज मुणों की अवतारणा का कोमल सामंजस्य हुआ है तथा वैदर्भी और गौडी रीति के समाहार का मनोहर प्रयोग हुआ है।

ताधारणतया इनकी भाषा में तर्वत्र प्रताद गुण प्राप्त होता है कवि उमापति की वैदर्भी रीति प्रताद गुण युक्त है। माधुर्य और ओज गुणों का भी तमावेश हुआ है। इतमें प्रतंग के अनुकूल गुणों का प्रयोग है। श्रृंगार वर्णन में माधुर्य का और वीर रस में ओज का समावेश है। प्रसाद गुण तो सभी जमह है।

[।] काव्यालंकार सूत्र वृत्ति - 1.2.13

काट्य के दशम सर्ग में नारद के द्वारा मगदान कृष्ण के प्रति कही गई यह युक्ति कि उमापति के काट्य में प्रयुक्त गुणों का प्रदर्शन करती है। आमो दिनी सुन्दर गन्ध वाली, सरस भावों के विकास से रमणीय अथवा सरस स्वभाव तथा विकास से मनोहर, सन्दर्भ शुद्धि, पद विन्यास की स्वच्छता पक्ष में सम्यक् मथन की सुरी ति तथा पूर्ण रूपेण पुष्ट श्वाष्ट्रमूपा दिश्व गुण सूत्र से युक्त, प्रसाद वाली, मनीमांति अलंकृत तथा संस्कार से शो मित माला के समान आपकी यह वाणी हृदय में रख लेने से किसकी श्री को नहीं बद्धा देगी।

पारिजातहरण महाकाट्य में श्रृंगार वर्णन में माधुर्य गुण का समावेश है — इच्छानुसार बहने वाली वायु के आधात से धुट्य हुए इन जलाशयों में जल की तरंगे उठती है - उन्हीं के ट्याज से मानों उन नायक और ना यिकाओं के अन्तः करण में बढ़े हुये काम विकार के कारण इसकी लहरे उठ रही है तथा रसमग्न प्रेमी एकान्त वार्तालाय कर रहे हैं।

पारिजातहरण महाकाट्य के युद्ध वर्णन में ओजगुण युक्त गौडी रीति का प्रयोग हुआ है -

"अपनी सपनता के लिए निश्चय मत करों हे वीर ! पराक्रम के बिना समृद्धियां नहीं होती मैं हैकूडण दूरहारे हैं इन्द्र के हैं बल को काट नहीं रहा हूँ। इसलिए गर्व से तुम मुझकों हैमेरी शक्ति को है नहीं समझ रहे हो ।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - दशम सर्ग - 56

² पारिजातहरण महाकाच्य - प्रथम सर्ग - 18

उ पारिजातहरण महाकाच्य - तय्तद्वा सर्ग - 6

काट्य के §20-248, §20-288, §17-38, §17-108, §17-188, §17-328, §17-528, §17-708 आदि श्लोकों में ओजगुण युक्त गौडी रीति का प्रयोग हुआ है।

प्रताद गुण युक्त प्रतन्न पदावली अर्थात वैदर्भी रीति का प्रयोग काट्य में सर्वत्र पाया जाता है। कानों से सुनते ही हम इस काट्य को स्पष्टतः ही समझ जाते है। वैसे दस गुणों का दण्डी ने वैदर्भ काट्य का प्राण कहा है पर उनमें भी प्रसाद गुण अर्थ ट्यक्ति तथा ओजगुण काट्य में सर्वत्र उपलब्धहोते है।

प्रताद गुण तो सर्वत्र है। काट्य के निम्नलिखित बलोकों में प्रताद गुण मुख्य रूप से है। इनको पढ़ते ही बलोक का भाव प्रकट हो जाता है। कवि का प्रताद गुण युक्त वैदर्भी का प्रयोग बड़ा ही मनोहारी है।

"प्रवृत्त तौ ख्ये युवरंजनै: कव चितका चित्यप्रगीते लहरी भिरम्बुधे: ।"

जिस दि रिकापुरी में कहीं तो युवक वृन्द का क्रीड़ा कौशनादि पूर्ण आनन्मय व्यवहार चल रहा है।

"रु दितग्ला पिताचराँ विचरं प्रतिसर्वेशनय न्ति मातरः।

दूध मुँहे बालकों को प्रत्येक गृह में मातार गोद में उठा रही हैं। इंदरसा शिरसा भक्तया तरंगानिलिंग सः।"

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - प्रथम सर्ग - 45

² पारिजातहरण महाकाच्य - द्वितीय सर्ग - 49

उ पारिजातहरण महाकाच्य - चतुर्थ सर्ग - ।।

उठी तरंगों का भक्ति पूर्वक हृदय तथा तिर ते भी आ लिंगन किया । अनुपात तथा शलेख ते मुक्त प्रताद गुण युक्त वैदर्भी का मनोरम चित्रण कवि ने अपने काट्य में किया है ।

"तंतार तंतारक । न त्वया त्वद्हृष्टया, समाज्ये मिय च प्रयोज्यम् ।"

हे तंतार के तारने वाले । आपके दर्शन मात्र से कृतार्थ होने वाले हमारे पृति आपके द्वारा यह प्रयोग योग्य नहीं है।

"पुत्रे बनीयति धिरादनुरकत मित्रे, देवे प्रभावधि नुरौ व रते कलन्ते युक्ता न रिकारोति - - - - - - ।"

छोटे पुत्र तथा घिरानुरागी िक्त और देवता प्रभु मुरू एवं अनुराणिणी अपनी स्त्री को छूछे हाथ देखना उचित नहीं।

बतनतवर्णन में तो प्रताद गुण युक्त वैदर्भी का प्रयोग काट्य की शोमा को बढ़ाने वाला है -

"अथ मनय समीर प्रैरिरत् प्राक्त वीरं "
"सुरकुसमतर्हतं पारिजातं च प्रष्टा,
मधुरपि भृति रन्तु साक मैधीन्मधुरना ।

[।] पारिजातहरण महाकाट्य - पंचम तर्ग - 3

² पारिजातहरण महाकाच्य - क्राठ सर्ग - 6

उस पारिजातहरण को देखकर बसन्त भी पृथ्वी में रमण करने के लिए भगवान विष्णु के साथ हो गया । इत्यादि । इस प्रकार इन शलोकों में प्रसाद गुण युक्त वैदर्भी रीति का प्रयोग मुख्य रूप से है क्यों कि इनको पढ़ते ही शलोक के भाव प्रकट हो जाते है ।

हरिवंश पुराण के दो अध्यायों में पारिजातहरण की कथा वर्णित है। कवि उमापति ने दूसरी कथा को आधार मानकर पारिजातहरण को महाकाट्य का रूप प्रदान किया। मूल झौत ते प्राप्त कथा में अपनी उर्वरा कल्पना आक्ति दारा नवीन उद्भावनाएं करके इक्कीस सर्गों में निबद्ध किया।

पारिजातहरण महाकाट्य तभी काट्य गुणों ते परिपूर्ण है। वस्तु तंघटन, तामा जिक चित्रण, नगर वर्णन, यात्रा वर्णन, प्रकृति चित्रण, पात्र चित्रण, मान, प्रकृति का तूक्ष्म विश्लेख, राजनीति के तत्वों का उद्घाटन, अलंकारों के उत्कृष्ट प्रयोग, पद लालित्य, भाव ट्यंजना तथा रसिम्ध्यक्ति, भाषा और शैली परपूर्ण अधिकार, विभिन्न दार्शनिक विद्यां का सरस विवेचन, ज्योतिद्य विद्यान, पाक विद्यान, नीतिशास्त्र ज्ञान, धर्मशास्त्र ज्ञान, पुराणशास्त्र ज्ञान, पिक्षिकान, काम शास्त्र ज्ञान आदि विविध विद्यां का अमाध पाण्डित्य आदि गुण कवि उमापति के पारिजातहरण महाकाट्य में प्रचुर मात्रा में विद्यमान है।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - एक विशेष सर्ग - 20

² हरिवंश पुराण - अध्याय 124 - 135

तंदेम में कहा जा तकता है कि कि कि तम्माष्ट्रणों में तरल एवं स्वष्ट है इनके वर्णन में लम्बे लम्बे तमातों के तथा लम्बे लम्बे वाक्य विन्यातों का प्रयोग नहीं हुआ है तथा इनके काट्य में वैदर्भी और गौडी रीति का अत्यन्त ही स्वामा विक तथा मनौरम चित्रण हुआ है ।

दोध तत्व की विवेचना :=

काट्य कल्पना में तर्वधा स्वतन्त्र होते हुये भी किव को कुछ नियमों अध्या बन्धनों के भीतर ही रहना पड़ता है। उत्तकी स्वच्छन्दता की कुछ नियत तीमार होती है। उनकी अपेक्षा करना उत्तका प्रमाद कहा जाता है और किव के उत्त प्रमाद के कारण काट्य तौन्दर्य में ही कुछ न्यूनता प्रतीत होने लगती है। अतस्व आचार्यों ने थोड़ी भी त्रुटि के लिए तर्वोच्च महाकवियों को भी क्षमा नहीं दी। दोषों का विवेचन करते तमय उन्होंने भारिव, माध्य तथा का लिदात तक की कृतियों ते अनेक उदाहरण दिए।

आचार्य भागह का अभिग्राय है एक भी दूषित पद काट्य के तौन्दर्य का विधातक है । न निगावमवयवत् । विनक्षमणा हि काट्येन दुःसुतेनेव निन्धते।"

आचार्य वामन का विचार है —
"गुण विपर्ययात्मानो दोष्णाः अर्थतस्तदवगमः । सौक्याय प्रपंगः ।

आचार्य आनन्दवर्धन और अभिनवगुप्त के अनुसार दोष्ठ को गुण का व्यतिरेक नहीं कहा जा सकता है - नाष्ट्र पिगुणेम्यो व्यतिरिक्तं दोष्यत्वम् " आचार्य मम्मट के अनुसार दोष्ठ वह है जिसे काव्य के मुख्य अर्थ का विधात अथवा

[।] काच्यालंकार - 1.11

² काट्यालंकार तूत्र 2.1-3

उ ध्वन्यालोक लोचन, पृष्ठ 83

अपकर्ष कहा जाता है। सरस काट्य में दोध के अपकर्ष होने का अभिप्राय है उसके द्वारा रस की अविलम्ब किंवा उत्कट प्रतीति में बाधा उपस्थित होना। सरस काट्य में यदि दोध होता है तो रस की प्रतीति नहीं होती।

कुछ दोष तो रेसे होते हैं जो साक्षात रस की प्रतिति में बाधा उत्पन्न किया करते है किन्तु वर्ण रचना शब्द और अर्थ के दोष रेसे हुआ करते हैं जो परम्परयारस की प्रतिति में बाधा उत्पन्न किया करते है।

इस प्रकार रस के अपकर्षक तत्त्व का नाम दोषा है। ये दोषा कई प्रकार के होते हैं - जैसे पददोष, वा क्यदोष, पदैकदोष, वा क्य-मात्रगामी दोष, अर्थ-दोषा तथा रसादि दोषा।

कवि उमापति विरचित पारिजातहरण महाकाट्य के कुछ दोष्ठ तत्वों का विवेचन निम्नलिखित है।

ख्याति विरुद्धता :-

जहां कवि ख्याति के विरुद्ध कोई योजना करता है। वहां ख्याति

विरुद्धता दोष्प्रमाना जाता है। देसन्त की परिचय्यों की पूर्ति के लिए सभी
लोकों में सहचरण के लिए वह कामदेव ट्याप्त हो रहा था। उसके विरुद्ध विरही
लागों में क्रुद्ध होकर विरहियों के हृदय को मेदकर खिले हुये पलाशों के हृदय की
पंखुडियों को मानों मेद्र दिया।

Year Till

मुख्या थेट तिर्दोषो रत्मच्य मुख्यस्तदाश्रयादाच्यः ।
 उभयोपयो मिनः स्युः शब्दाधास्तेन तेष्ट्रविप तः ।।
 -का व्यप्रकाश-सप्तम उल्लास -49

² काट्य प्रकाश - सप्तम उल्लास - 55-264

³ पारिजातहरण महाकाच्य - स्कविंश तर्ग - 30

इस इलोक में बसन्त अतु में पलाश पुरुप का खिलना बताया गया है। किन्तु यह लोक प्रतिद्धि के विरुद्ध है। लोक में ऐसा विश्वास है कि पलाश पुरुप बसन्त में नहीं खिलता।

निर्धक दोष :-

निरर्थक दोघ वह है जिसे किसी पद का जैसे कि च, हि आदि का, केवल पादपूर्ति मात्र के लिए प्रयुक्त होना कहा जाता है - "निरर्थक पादपूरणमात्र प्रयोजनं चादिपदम् ।"

पारिजातहरण महाकाच्य के कई श्लोक इस निरर्थक दौध के उदाहरण है :

तु-र्व।-19र्व, र्वन-५१, र्वननुर्व।-25र्वे, र्वा।-60र्वे हि-र्व।-43र्वे, र्वे।।-44र्वे।।-45र्वे स्वा ४-८। व र्वे४-83र्वे व-२र्वे आदि श्लोकों में निर्थंक दोबों का वर्णन मिलता है - "पदे पदेउत्यस्तु मिथो मनोहरा सदा रमेते -सरस्मिरोवरा ।

क्लिश्रं दोष :-

"क्लिंड व दों घं वह है जिसे किसी पद का विलम्ब से अपने अर्थ का प्रत्यायन करना कहा जाता है -

* विलब्द यतो प्रयमितियत्ति व्यविहिता ।

यथा - अधुनैव मुदा दिजावली श्रुतिसन्मंगलमंग गायति । अल्गांशुकरंजिता दिशः परिशंसन्ति महोत्सवक्षणम् ।

[।] काव्यप्रकाश -सप्तमउल्लास-147

² पारिजातहरण महाकाट्य - प्रथम सर्ग - 19

³ बाट्य प्रकाश - सम्तम उल्लास- 158

⁴ पारिजातहरण महाकाट्य - द्वितीय सर्ग - 24

यहाँ सत्य पित पद के द्वारा जो "सत्यभामा" अर्थ है वह विलम्ब से प्रतीत हो रहा है अतः यहाँ विलब्द दोड़ा है। इसके अतिरिक्त हूं।-5हूँ, हूँ।0-16हूँ आदि श्लोकों में भी विलब्द दोड़ा है।

प्रतिद्विहतत्वः-

प्रतिदिहतत्त्व का अर्थ है कित प्रतिदि अर्थात् मक्ज़ीरादि के वर्णन में रिणत, शिषित, गुण्जित आदि, पिक्षमों के वर्णन में कूजित, रव, वासित आदि रितिकीड़ा के वर्णन में स्तिनित मिणत, मिणत आदि और मेघ आदि के वर्णन में गर्जित रितत आदि का प्रयोग प्रतिदि के विपरीत हुँसेते प्रसंगों में हूं वाक्य की रचना किस जाने का ।

स्द्रट के काट्यालंकार में ग्राम्य दोख के निरूपण-प्रतंग में ये पंक्तियां आती हैं:-

"मंज्जीरा दिखु रणितप्रायान पक्षिष्ठु च कूजितप्रकृतीन् । मणितप्रायान सुरते मेधा दिखु गर्जित प्रायान् ।।"

दृष्ट्या प्रयुज्यमानानेवं प्रायांत्तथा प्रयुज्जीत । अन्यत्रैतेष्ठनुचिताः शब्दार्थत्वे समानेऽपि ।।"

जिन्हें आचार्य मम्मट ने कुछ पाठ मेद के ताथ कवि प्रतिद्धि के निदर्शन में उद्धृत किया है। यहाँ कवि प्रतिद्धि का अम्प्रिय है कविजन के प्रयोग नियम का और इस प्रयोग नियम का उल्लधन है। "प्रतिद्धिहतत्व"।

[।] काट्य प्रकाश - सम्तम उल्लास - 2, 242

² काव्यालंकार - 6. 25-26

पारिजातहरण महाकाट्य के कई श्लोकों में पूरित, कूजित, मुदित, अलीयव, खाँ आदि शब्दों का अनुधित प्रयोग मिलता है -

"इति स बहुशः श्रावं श्रावं विहडः मकूजित" । मुख्दोदडीयत खगावली र्ञाः

उपर्युक्त शलोकों में पिक्षणों के वर्णन में कूजित, ्क इत्यादि शब्दों का प्रयोग प्रसिद्धि के विपरीत किया गया है अतः यहाँ प्रसिद्धिहतत्त्व दोध है। इसके अतिरिक्त "ख" ११६-।१, १ "पूरित" १२-१८१, "अलीयत" १२-३५१, "मुदित" १६-२५१ आदि का प्रयोग भी, प्रसिद्धि के विपरीत हुआ है।

पुनरकतत्व दोघ -

"पुन्क कात्व" अथ्वा शब्दतः प्रतिपन्न अर्थ के ही पुनः शब्दतः प्रतिपादनकप दोघ्र को पुनक कात्व दोघ्र कहते हैं।

पारिजातहरण महाकाच्य में कई स्थानों पर पुनरू कात्व दोडा का विवेचन मिलता है।

"रात्रि भर सुरतक़ीड़ा में साक्षी बनकर जो दीपक युवक-युवतियों का लालन-पालन करता रहा, यह उद्याकाल में उन्हें निर्लज्ज सोर देख मानों लज्जित हो रहा है। उपर्युक्त अर्थ को पुनः कवि दूसरे श्लोक में कहते हैं -

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - द्वितीय सर्ग - 59

² पारिजातहरण महाकाच्य - द्वादश सर्ग - 32

उ बाट्य प्रवाश - सप्तम उल्लास - 55-258

⁴ पारिजातहरण महाकाच्य - द्वितीय सर्ग - 20

"एकान्त में निर्माता के साथ रहकर, रातमर चलने वाली लज्जा शून्य रतिकेलियों की साक्षिता निमाकर, अपने रहते हुए भी दम्पति वर्ग को अल्बा-रिमयों ते बाँध गए देख, दीपक मानों लिज्जित हो रहा है।"

यहाँ एक ही अर्थ को पुनः दूसरे श्लोक में कहा गया है अतः यहाँ पुनरू कतत्व दोडा है।

"तभी में तमान व्यवहार रखने वाली जो बुद्धिमानों में उदारता है, तदबुद्धि ते उतके भाव िष्पार रखने पर भी अन्यत्र विशेष्ठ स्थल पर हठात् अन्तरंग - बहिरंग भाव ते, तंबुचित ही हो जाती है। विधाता ने तथा को, पृथ्वी तथा स्वर्ग के तमान रूप ते भोगने योग्य बनाया ही नहीं।"

उपर्युक्त अर्थ को ही पुनः निम्न श्लोकों में किं वि कह रहे हैं --

"औदाय्यं आदि तद्गुणों की प्रवृति तमान रूप ते तर्वताधारण विध्य में तब तक ही रहती है, जब तक कोई अन्य विशेष अपवाद का स्थान उपविस्थत नहीं होता।"

दक्षिण स्वरूप होने के कारण पुरुष उदारता जो सबके प्रति समान रूप से दिखाई देती है, उसके विशेष रूप से विभाजन करने पर यदि सर्वधा सुन्दर में पक्ष्मात हो जाता तो उसमें कौन स्कावट है।

[।] पारिजातहरण महाकाट्य - द्वितीय सर्ग - 21

² पारिजातहरण महाकाच्य - नवम सर्ग - 9

उ पारिजातहरण महाकाच्य - नवम सर्ग - 10

⁴ पारिजातहरण महाकाच्य - नवम सर्ग - ।।

"पुरुष में तमझदारी रहे, मुरूत्व भी रहे, तमझदारी भी पूरी रहे, अभीषट वस्तुओं की प्राप्ति भी हो, सारी सम्मत्ति रहे, अच्छा विवेक भी हो, यह सभी रह सकता है किन्तु उसमें अनेक प्रिय वस्तुओं में एक रसता समान स्नेह म केसे रह सकता है। कदापि नहीं।"

उपर्युक्त इलोकों में एक ही अर्थ को पुनः कई इलोकों में कहा गया है अतः यहाँ पुनककतत्व - दोध है।

इस समय भौगातुर नामक शत्रु के साथ वैर हो जाने से विधाद में पड़ा मुझे सर्वथा असमर्थ मान, इसके अनुसार हठात मुझे परास्त कर स्वर्ग का परमधन पारिजात वृक्ष रूप रत्न को लूट लेना चाहते हैं।

उपर के शलोक का अर्थ निम्न शलोक में भी ट्यंजित है -

"मौमातुर के दुष्कर्म से विष्णाद में पड़ा मुझे जानकर ही वे नीति के अनुसार मेरे पर चढ़ाई कर देने के लिए वृक्ष की याचना रूप एक व्याज् क्ष्मट हैं रच रहे हैं।"

यहाँ एक ही अर्थ पुनः दूसरे शलोक में ट्यंजित है, अतः यहाँ पुनरूकतत्व दोष है।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - 12

² पारिजातहरण महाकाच्य - एकादश सर्ग - 58

उ पारिजातहरण महाकाट्य - एकादशं सर्ग - 59

छन्द योजना

छन्द की गणना वेद के छः अंगों में होती है। इसे वेद का चरण बताया गया है - "छन्दः पादौ तु वेदस्य। जैसे चरणविहीन ट्यक्ति चल फिर नहीं सकता, उसी प्रकार छन्द के बिना वेद अथवा कोई भी काट्य-ग्रन्थ गतिश्रील नहीं हो पाता है। शिक्षा, कल्प, निक्षकत ट्याकरण, ज्यौतिष्ठ तथा छन्द-वेद के इन घडंगों में परिगणित होने के कारण छन्द-शास्त्र तथा छन्द की प्राचीनता स्वतः सिद्ध है। वेदों में प्रायः सर्वत्र त्रिष्ट्रम्, जगती और विरादस्थाना आदि छन्दों का प्रयोग हुआ है। यजुर्वेद के गद्यस्थां को छोड़कर वेद संहिताओं का अधिकांश छन्दों में ही व्यवस्थित है।

जैसे व्याकरण शास्त्र के सूत्र पाणिनि ने शिक्षाशास्त्र-प्रतिशाख्य के सूत्र शाँनकादि ने कल्पशास्त्र के सूत्र आपस्तम्ब, पारस्कर तथा बोधायन आदि ने तथा का मशास्त्र के सूत्र वात्स्यायन ने लिखे ठीक उसी प्रकार छन्द-शास्त्र के भी सूत्र "महर्षि-पिंगल" ने लिखे। इसी लिए छन्द शास्त्र को कभी कभी लक्ष्म या पिंगल शास्त्र भी कहते हैं।

चूँ कि वेद मंत्रों की रचना छन्दों में हुई अतरव इसी अभिष्ठाय को लेकर छन्द शब्द की व्याख्या इस प्रकार की गई है। "छादयन्ति ह वास्वं पापात् कर्मण", अर्थात पापकर्म से जो इसको मन्त्र निवारित करते हैं, वे छन्द हैं।

फन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते । ज्यो तिष्पामयनं चक्षुर्निक क्तं श्रोत्र मुच्यते ।। विद्याप्रणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम् । तस्मात् सांगमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते ।।

⁻पा णिनीय - विक्षा

निरुक्त के दैवत काराठु में लिखा है - "अच्छादन अथवा नियमन के ही कारण छन्द को छन्द कहते हैं।" यह अच्छादन किसका होता है। उत्तर है - भाव अथवा रस का। कविता १ पद १ के चारों चरण का व्यरस की सीमा रेखा होते हैं।

विद्याह्लादने हुन्द्रादिगण धातु - 70 है ते भी छन्द शब्द निरुपन्न माना गया है। यन्द्रयति आह्लादयति इति छन्दः अर्थात जो पाठकों को आह्लादित कर दें। यहाँ चदेरादेशच छः हुउपादि सूत्र है नियम ते च का छ हो गया है असुन प्रत्यय जोड़ दिया गया है।

भरत के अनुसार काट्यबन्ध दो प्रकार का होता है। है। है नियताक्षर-बन्ध है2 है अनियताक्षर -बन्ध

नियताक्षर बन्ध का तात्पर्य है, ऐसी बन्ध या रचना जिसमें अक्षर नियत हो सुनिश्चित हा।

"नियता नि निविचता नि अक्षराणि यत्मिन् स बन्धः नियताक्षर बन्धः ।

इसी नियताक्षर बन्ध को पद्य-बन्ध भी कहते हैं अक्षरों को एक निविचत कुम तथा संख्या में व्यविस्था करने से रचना में हुक हूं संगीतात्मकता

^{। &}quot;छन्दां ति छादनात् ।" -देवत-कारा दु । अध्याय-७ तृतीया पद्

ईख्र नयवाहिता और ईग्र सहजप्रवाह आदि काट्यात्मक विशेष्ट्रतार स्वतः उत्पन्न हो जाती है। पनतः रस पिपासु पाठक की पद्य के प्रति रक नैसर्गिक अभिरुपि बन जाती है।

पद्य का व्युत्पत्ति परक अर्थ है -

पदम् चरणम् अर्हतीत पद्यम्" अर्थात जो चरणों में व्यवस्थित हो वही पद्य है चरणों की व्यवस्था मद्य में नहीं होती।

अनियताक्षर बन्ध १ गद्य में ये विशेष्ट्रतारं नहीं उत्पन्न हो पाती पनतः गद्य लिखकर सहृदय पाठकों को आकृष्ट कर पाना प्रायः असम्भव होता है ।

इस प्रकार नियताक्षर बन्धु अथवा पद की रचना के लिए ही छन्द शास्त्रीय ज्ञान की आवश्यकता होती है। छन्दों के ज्ञान के लिए वेदाध्ययन अथवा अध्यापन करने वाले व्यक्ति की गर्हणा करते हुए कहा गया है।

> " यो ह वा अविदितार्थेषच्छन्दो दैवत्-विनियोगेन ब्राह्मणेन मेंनेण याज्यति वाडध्यापयति वा त स्थाणुमच्छति गर्त वा पद्यते प्रमीयते वा पाणीयान् भन्नति । यातयामान्यस्यच्छन्दांति भन्नन्ति इति ।।"

छन्दों के प्रयोग में भी कवित्रमा पित अत्यन्त कुशन है। उनके सबसे प्रिय छन्द वंशस्य तथा वसन्त तिलका है। उन्होंने पारिजातहरण महाका व्य के कई समों में वंशस्य तथा बसन्त तिलका का प्रयोग किया है। काव्य के प्रथम, पंचम, पंचदश, सप्तदश अष्टादश और स्कोनविंश सर्ग में वंशस्य छन्द का प्रयोग तथा नवम, दशम, बोडश, विंश तथा एक विंश तर्ग में वसन्ततिलका छन्द का प्रयोग किया है। काट्य में मालिनी छन्द का तृतीय स्थान है काट्य के द्वादश, तथा एक विंश तर्ग में मालिनी छन्द का प्रयोग किया के वि किया है। इसके अतिरिक्त काट्य के द्वितीय तर्ग में गीति, तृतीय तर्ग में द्वत विलिध्वत, बक्ठ में पुष्टिपतामा, सप्तम में रथोद्धता, अकटम में इन्द्रवज़ा, एकादश में स्वामता तथा चतुर्दश में उपजाति छन्द का प्रयोग किया के वि विषा है। काट्य में लम्बे छन्दों का प्रयोग तीमत मात्रा में किया गया है। जैसे पुष्टिपतामा तथा मालिनी छन्द का प्रयोग तीन तर्गों में मिलता है।

इसके अतिरिक्त कवि ने हिन्दी के छन्दों का प्रयोग भी काट्य के पंचदश सर्ग में किया गया है। जैसे सवैया कवित्त तथा दोहा छन्द का प्रयोग दस शलोकों में किया गया है।

कवि उमापति के छन्दों में भी बड़ा लालित्य है उनमें एक समर्थ कवि की भांति भाषा का तहज व्यवस्थापन देखने को मिलता है। उनके द्वारा प्रयुक्त मुख्य छन्दों के लक्ष्म निम्न है।

वंशस्य छन्द

वंशस्थ छन्द का प्रयोग पारिजातहरण महाकाच्य के कई तर्गों में किया गया है। वंशस्थ छन्द कवि का प्रिय छन्द है।

जिसका लक्ष्मा है - जतौ तु वंशस्थमुदी रितं जरौ।

[।] वृतरत्नाकर - 3/46

वंत्रस्थ के प्रत्येक चरण में जगण हूं । ८। हूं जगण हूं ८८। हू जगण हूं ८। है तथा रगण हूं ८। ८ हूं होते हैं। उदाहरण के लिए पारिजातहरण महाकाट्य के प्रथम तर्ग का एक वलोक प्रस्तुत है।

जगत्कला कौशल सारशा निनीमणा व्रजावा सिततो रण्याम ।

इस इलोक के प्रत्येक चरण में । जगण, । तमण, । जगण तथा । रगण है ।

वसन्त तिलका

पारिजातहरण महाकाट्य के कई सर्गों में वसन्ततिलका छन्द का प्रयोग कवि ने किया है काट्य में इस छन्द का दितीय स्थान है। जिसका लक्षण है -

"उक्ता वसन्ततिलका तमजा जगौ गः।

वसन्ततिलका के प्रत्येक वरण में तगण १८८। १ मगण १८१। १ जगण ११८। १ जगण ११८। १ तथा दी मुरू १८८ १ होते हैं।

उदाहरण के लिए पारिजातहरण महाकाच्य के विंश तर्ग का एक श्लोक प्रस्तुत है --

"सर्वामरप्रतिनी सिवनी मुदा नं ।

[।] पारिजातहरण महाकाट्य - प्रथम तर्ग - 9

² वृतरत्नाकर - 3/79

उ पारिजातहरण महाकाच्य विशासर्ग – 8

इस शलोक प्रत्येक चरण में । तगण, । ममण, । जगण, । जगण तथा दो मुरू हैं।

मा तिनी

पारिजातहरण महाकाच्य में मानिनीछन्द का तृतीय स्थान है। मानिनीछन्द का प्रयोग काट्य के तीन सर्गों में हुआ है जिसका नक्षण है। "ननमयययुतेयं मानिनी मोगिनोंकै:

मा लिनी के प्रत्येक चरण में -

पारिजातहरणमहाकाच्य के त्रयोदश सर्ग से लिया गया इलोक उदाहरण के लिए प्रस्तुत है-

> " अभिनयति यरित्रं दैष्टिटकं चित्रीचित्रं गतदिनसमयो यं देवि । ते दृशयमानः ।।

प्रस्तुत इलोक के प्रत्येक चरण में 1, नगण 1, नगण, 1, मगण 1, यगण तथा 1, यगण है और अन्त में विराम है 1

[।] वृत्तरत्नाकर 3/87

² पारिजातहरण महाकाट्य - त्रयोदश सर्ग - 30

उदगाथा या गीति

पारिजातहरण महाकाच्य के दितीय तर्ग में गीति छन्द का प्रयोग हुआ है जितका लक्षण है -

आर्या प्रथमदलो का यदि कथमपिलक्षणं

ममेदुम्योः

वलयोः कृतय तिशोभां तां गीतिं गीतवान् मुजरेंश ।

उदाहरण के लिए -

" य उन्क्रमुखाः तुखान्यथा चक्नन्ताम तपक्ष

पातिनः।

अपितैरनुमूमते पुरा निजदुर्वृन्ति पननिदवानधता ।।

द्रत्विलिम्बत्

पारिजातहरण महाकाच्य का तृतीय सर्म द्रुत विलम्बित छन्दोबद है, जिसका लक्ष्ण है —

द्रतिवलिम्बतमाह नमौ मरौ।

द्वतिविवस्थित के प्रत्येक चरण में नगण है।। है मगण हैं ऽ।। है भगण हैं ऽ।। है तथा रमण हैं ऽ।ऽ हैं होते हैं।

[।] वृत्तरत्नाकर - 2/8

² थारिजातहरणमहाकाच्य - द्वितीय सर्ग - 53

³ वृत्तरत्नाकर - 3/49 छन्दोमंजरी - 3/10

उदाहरण --

*नमाति भूरि विमा तित भारतोऽ तित विभेऽनुचकार रूचे श्रयम् ।

प्रस्तुत इलोक के प्रत्येक चरण में । नगण, । भगण, । भगण तथा । रगण

पुष्टिपतागा

पारिजातहरणमहाकाच्य के घठ तर्ग में पुष्टिपताग्रा छन्द का प्रयोग किया गया है, जिसका लक्ष्मा निम्न है —

अञ्चलि नयुगरेएतो यकारो युजि च नजौ जरमञ्जल पुष्टिपतामा ।

जिस छन्द के विष्ण में नगण, नगण, रगण, यगण और समः में नगण, जमण, जमण, रगण, तथा एक मुरू होता है। उदाहरण के लिए --

> इतिहरिवचनं नित्राम्यं देवे -श्वरपरिवां छित कार्यं तिद्धिमूलम् । प्रमुदितमनता त तत्यभामा गृहगमने कृतनिश्चयः पुराऽगात् ।।

- 1 पारिजातहरण महाकाव्य तृतीय सर्ग 17
- 2 वृत्तरत्नाकर 4/10 छन्दोर्मंजरी - 3/12
- 3 पारिजातहरण महाकाट्य इक्ट तर्ग -5

इस श्लोक के विद्यम चरण में -

। नगण, । नगण, । रगण, । यगण तथा तम में । नगण, । जगण, । जगण, । । रगण तथा एक गुरू है ।

रथोद्धता

पारिजातहरण महाकाच्य के सप्तम सर्ग में रथोद्धता छन्द का प्रयोग मिलता है जिसका लक्षण है —

"रान्तराविह रथोद्रता तमौ।

रथोद्धता के प्रत्येक पाद में ।। वर्ण होते हैं --

। रमण, । नमण, । रमण, । लघुतथा । मुरू।

उदाहरण के लिए

काट्य के सातवें सर्ग का एक श्लोक प्रस्तुत है --

"तावदेव विवशाडन्तराङ्य तत्सित्त्र्यार्थमिति वृत्यधानिनी ॥

प्रस्तुत श्लोक के प्रत्येक पाद में ग्यारह वर्ण हैं - । रगण्, । नगण्, । रगण्, । लघुतथा । मुरु हैं।

इन्द्रवज़ा

पारिजातहरण महाकाच्य का अब्दम सर्ग इन्द्रवज्ञा छन्दोबद हैं।

[।] वृत्त रत्नाकर - 3/38

² पारिजातहरणबहाकाच्य - सम्तम्/सर्ग - 10

जिसका लक्ष्मा हैं ---

"स्यादिन्द्रवज़ा यदि तौ जगौ गः "

इसके प्रत्येक चरण में ग्यारह वर्ण होते हैं - दो तगण, । जगण तथा दो मुरू वर्ण।

उदाहरण के लिए --

विज्ञाय ता विज्ञतमाऽथ नाथं निजं तमायान्तमत किंतं प्राक्।

इत शलोक के प्रत्येक चरण में ग्यारह वर्ण हैं - । तमण , । तमण , । जमण तथा दो मुरू ।

स्वागता

पारिजातहरण महाकाच्य का स्कादश सर्ग स्वागता छन्दोब्द है, जिसका लक्ष्ण निम्न है —

"स्वागतेति (रनमाद्गुस्युग्मक्।"

इत छन्द ये प्रत्येक चरण में ग्यारह अक्षर होते हैं - । रमण, । नमण, । ममण तथा दो मुरू तथा चरणान्त में यति । उदाहरण के लिए -

"कत्रयपाय तपते मुखे ते केवलं हि कुशनं कथयित्वा ।

[।] वृत्तरत्नाकर - 3/28 छन्दोर्मेजरी - 211

² पारिजातहरण महाकाट्य - अष्ट्रमतर्ग - 29

³ वृत्तरत्नाकर - 3/39

तत्प्रवृतिमुप्ताौरि विवेध दारकात इह मेडधिंगमो हित ।।"
इस शलोक के प्रत्येक चरण में ग्यारह अक्षर हैं —
। रगण, । मनण तथा दो गुरू और चरणान्त में यिव ।

पारिजातहरण महाकाच्य के पंचदश तर्ग में हिन्दी छन्दों का भी प्रयोग मिलता है -

सवैया

यह अत्यन्त लोकप्रिय वर्णिक छन्द है। यह चार चरणों का तुकान्त छन्द होता है। इसके प्रत्येक चरण में 7 मणण और अन्त में दो गुरू होते हैं।

उदाहरण के लिए -

" तुन्दरमायतनं हि पुरन्दरदम्य तिरुवैर विलासरतीनाम् नन्दनमा करितं हरियन्दनमुख्यतुरद्व तुरव्रततीनाम्

इस शलीक के प्रत्येक चरण में 7 मनण (८१) ८११ ८११ ८११ ८११ ८११ ६११) हैं तथा अन्त में दो गुरू (८६) हैं। अतः यह सवैया छन्दोबद है।

[।] पारिजातहरण महाकाच्य - एकादश सर्ग - 34

² भाषा भूषेग - पृ0 230

उ पारिजातहरण महाकाच्य - पंचदश तर्ग - 49

कवित्त

इत छन्द के प्रत्येक चरण 33 वर्ण होते हैं। उदाहरण के लिए -"ऋतवोडमी धृतदिव्यशरीराः। प्रेरितपावनरम्यतमीराः।
देववनीमनिशं तेवन्ते। काव्यनुमृतिरभूदेवंते।।"

प्रस्तुत इलोक के प्रत्येक चरण में 33 वर्टी हैं। अतः यह कवित्त छन्दोबद्ध है।

दोहा

इस छन्द के पहले और तीसरे अर्थात् विद्यम चरणों में तेरह तथा दूसरे और चौथे अर्थात सम चरणों में ग्यारह मात्रार होती हैं। कुल मिलाकर 24-24 मात्रार होती हैं।

उदाहरण के लिए --

"रत्नमयी दिव्या धरायेयं पुरो विभाति वनाधारिता भूतभूताधर्म्यन दधाति ।।

इस श्लोक के उपर दोनों चरणों में कुल मिलाकर 24 मात्राएं हैं तथा नीचे दोनों चरणों में कुल मिलाकर 24 मात्राएं हैं अतः यह दोहा छन्दोबद्ध श्लोक है।

×××

[।] भाषा मूब्रा - पृ० 230

² पारिजातहरण महाकाच्य - पंचदश सर्ग - 57

उभाषा - भूष्मा - पूछ 227

इ पारिजातहरण महाकाच्य - पंचदश सर्ग - 51

" कूले कलिंदनन्दिन्याः मूलेवटतरोरयम् । भाति भारति तेडगम्यः कोडपि गोपीपतिः परः ॥"

- कवि उमाप तिदिवेदी

सहायक - ग्रन्थावली

- हरिवंश पुराण
- 2. महामारत महाकवि च्यास
- शतपथ ब्राह्मण
- 4. वासु पुराण
- 5. अग्निपुराण
- 6. विष्णु पुराण
- 7. कूर्म पुराण
- 8. ब्रह्म पुराण
- १ पद्म पुराण
- 10- गीता
- ।।. देवी भागवत
- 12. भागवत पुराण
- 13. पारिजातहरण नाटक
- 14. श्रीमद्भगवद्गीता
- 15 कठोप निषद
- । ६ मनुस्मृति
- 17. शुक्ल यजुर्वेद
- 18. शतपथ ब्राह्मण
- 19. व्यात भाष्य योगसूत्र
- 20- रवेता रवतरोप निषद
- 21. विद्वन्यमनोरंजनी
- 22. ग्रग्वेद संहिता
- 23- पंचदशी

- 24 रह्मंश
- 25. पाणिनीय विका
- 26 तांख्यतत्व कौ मुदी
- 27. तांख्य तूत्र
- 28. तांख्य का रिका
- 29. तांख्यदर्शन महर्षि कपिल
- 30. तांख्य तत्व तुबोधिनी
- 31. न्याय सूत्र
- 32. वैशेषिक सूत्र
- 33. तर्क माघा
- 34. तर्क संग्रह
- 35 वेदान्त सार
- 36. वाचस्पत्यम्
- 37. ब्रह्मसूत्र पर वेदान्त कल्पतक परिमल
- 38. ता हित्यदर्ण विश्वनांथ कविराज
- 39. ना त्यशास्त्र भरतमुनि
- 40. काट्यादर्श आचार्य दण्डी
- 41. काट्यालंकार आचार्य भागह
- 42. काट्यालंकार सूत्रवृति आचार्य वामन
- 43. ता हित्यवर्षण की शालगाम शास्त्रीकृत विमलानाम की हिन्दी टीका
- 44. ध्वन्यालोक आनन्दवर्धन
- 45. काट्यालंकार आचार्य रूद्रट
- 46. काट्यप्रकाश आचार्य मम्बट
- 47. बाट्यानुशासन

- 48. कविकण्ठामरण आचार्य देमेन्द्र
- 49. काट्यमीमांता राजीखर
- 50. हिन्दी ध्वन्यालोक
- 51. गुणालंकार विध्येव सरस्वती
- 52. अभिनव भारती हूँ नाट्यशास्त्र पर टीका हूँ
- 53. अभिनव गुप्त ध्वन्थालोक लोचन
- 54. चन्द्रालोक जयदेव
- 55. आचार्य दण्डी एवं संस्कृत काट्य शास्त्र का इतिहास दर्शन
- 56 भारतीय साहित्य शास्त्र
- 57- वक्रो क्तिजी वित कुन्तक
- 58. काट्य प्रकाश डा० सत्यवृत सिंह
- 59. चित्र मीमांता अप्यवदी दित
- 60. छन्दी मंजरी
- 61- वृतरत्नाकर
- 62. छन्दों ति छादनात् दैवत कारण्ठु
- 63. छान्दीग्य
- 64. बाट्यालंबार तार संग्रह
- 65. भाषा मूक्या